आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

राधा बाबा

ASTIKTA KI ADHAR-SILAE

BY

RADHA BABA

प्रकाशक

गीतावाटिका प्रकाशन

पो०– गीतावाटिका (गोरखपुर)

पिन–२७३००६

दूरभाष : (०५५१) ३१२४४२

E-Mail:- rasendu@vsnl.com

प्रथम संस्करण : श्रीराधाष्टमी सं० २०५७ वि०

मूल्य : पैंतिस रुपये

नम्र निवेदन

संतोंकी प्रत्येक चेष्टा जीवमात्रके कल्याणके लिये होती है। संतोंमें ऐसी शक्ति होती है कि उनके संस्पर्शमें जो भी आ जाता है, उसका कल्याण ही होता है। ऐसे संतोंका संस्पर्श भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। उनके मुखसे या लेखनीसे जो भी शब्द निकलते हैं, वे मानवमात्रको शान्ति प्रदायक एवं भगवान्‌की ओर उन्मुख करनेके लिये ही होते हैं क्योंकि संत भगवान्‌के संदेशवाहक होते हैं। उनकी वाणीका अनुसरण करना हमारे लिये परम कल्याणका साधन है। फिर परमार्थके पथिकोंको उनके शब्दोंसे विशेष प्रेरणा और सम्बल मिले इसमें तो कहना ही क्या है ?

प्रस्तुत पुस्तकमें हमारे परम श्रद्धेय श्रीराधाबाबा (स्वामी चक्रधरजी महाराज)की विशेष सामग्रीका संकलन है। यह सामग्री पूज्य श्रीभाईजीने अपने सामने ही 'कल्याण'में "आस्तिकताकी आधार–शिलाएँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया था। जिन लोगोंने पूज्यबाबाकी 'सत्संग सुधा' एवं 'प्रेम सत्संग सुधा माला' नामक पुस्तकें पढ़ी हैं वे उनके शब्दोंके ओजसे परिचित हैं। उनके शब्दोंमें एक शक्ति है जो हृदयको स्पर्श करती है। बहुत–से भाई–बहिनोंकी इच्छा थी कि यह सामग्री पुस्तकाकार प्रकाशित हो जाय तो अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होगी। भगवान्‌की कृपासे अब यह सुअवसर आया है। हमारा विश्वास है कि जो भाई–बहिन इन बातोंको ध्यानसे पढ़कर जीवनमें उतारनेका प्रयास करेंगे उन्हें परमार्थ पथपर अग्रसर होनेमें विशेष सहायता मिलेगी।

पूज्य बाबाकी एक और मधुर कृति 'व्रजलीलामें गाय' इस पुस्तकके परिशिष्टमें दी गयी है इससे यह पुस्तक मधुरतासे आते–प्रोत हो गयी है।

प्रकाशक

।। श्रीहरिः ।।

विषय–सूची

पृष्ठ

।। श्रीहरिः ।।

आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

जब सर्वत्र प्रभुका ही सच्चिदानन्दमय विलास निरन्तर चल रहा है, उनकी सच्चिन्मयी लीलाके अतिरिक्त यहाँ कुछ भी नहीं है, तब हमें प्रतिकूलताकी अनुभूति क्यों होनी चाहिये ? क्या अनन्त दयामय प्रभुमें इतना विवेक नहीं है कि वे हमारे लिये, अपने शिशुके लिये कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देंगे, जो परिणाममें सुखद न हो ? माँके द्वारा अपने बच्चोंके लिये कोई ऐसी चेष्टा होती है क्या जो उन्हें दुःखमें डालनेवाली हो ? माँ तो भूल कर भी सकती है; क्योंकि वह सर्वत्र अवस्थित नहीं है, वह सर्वशक्ति-समन्विता नहीं है, उसमें सम्पूर्ण सर्वज्ञताका विकास नहीं हुआ और अहैतुक सौहार्दमय, सम्पूर्ण विश्वके लिये निरन्तर लहरानेवाला सागर भी वह नहीं बन सकी है; किंतु प्रभुमें तो ये चारों बातें निरन्तर वर्तमान हैं। वे हमारे लिये प्रतिकूल परिस्थिति क्यों उत्पन्न करेंगे ? प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न करके हमें दुःखी क्यों करेंगे ? सचमुच, सचमुच—यह हमारा भ्रम ही है।

वास्तवमें कोई प्रतिकूल लगनेवाली परिस्थिति सचमुचमें हमारे लिये अनन्त अपरिसीम सुखका द्वार खोलनेके लिये निर्मित हुई है। उसके कण-कणमें ही आत्यन्तिक अनुकूलता है। आस्तिकताके अभावके कारण ही हम उस अनुकूलताको देख नहीं पाते हैं। परिस्थिति सृष्ट न हुई है और न अनन्तकालतक सृष्ट होगी। चाहे तो हम भी विश्वास करके सुखी हो सकते हैं।

भय मनकी कल्पना है

हम सोचकर देखें––हमें भय क्यों होना चाहिये ? जब सब जगह अनन्त शक्तिसम्पन्न, सब कुछ जाननेवाले, हमारे प्रति अनन्त सौहार्दमय प्रभु ही नित्य निरन्तर अवस्थित हैं, तो किस प्राणी–पदार्थसे हम भय करें ? खूब गहराईसे सोचें, भय एक झूठमूठ अनादिकालसे कल्पित मनकी कल्पना है। हमें मामूली–से–मामूली बातमें भय होने लगता है; न जाने कितने प्रकारके भय हमें घेरे हुए हैं। क्यों नहीं हम प्रत्येक प्रतिकूल लगनेवाली परिस्थितिमें अपनी आँख प्रभुकी ओर कर लेते और निरन्तर पासमें रहनेवाले, सर्वशक्तिमय, सब कुछ जाननेवाले, अनन्त, अपरिसीम सौहार्दमय प्रभुपर ही सब प्रकारके भयको पूजाके रूपमें सदाके लिये समर्पित कर देते ? हम सब स्थितियोंमें सोचने लग जाँय––'जैसी प्रभुकी इच्छा होगी, हो जायगा। इसमें डरनेकी क्या बात है ?' सच मानें, भयकी सम्पूर्ण स्थितियाँ बदलने लगेंगी और हमारा मन सच्चिन्मय आनन्दसे भरने लगेगा।

क्रोधसे अपना और दूसरोंका अनिष्ट ही होता है

क्रोधको भी हम जीतें। क्रोध अपनेसे कमजोरपर आता है। हमारा रोष निकलेगा बच्चोंपर, नौकरोंपर तथा जिनसे हमें हानिकी सम्भावना नहीं है, उनपर। किंतु जिसके निमित्तसे क्रोध निकला हो; उसकी उस बुराईको तो वह दूर करनेसे रहा, उलटे वह बुराई एक बार दबकर अन्तश्चेतनामें वापस जाकर गहरी बन जायगी। अतएव क्रोधसे अपना और दूसरेका अनिष्ट ही होता है।

सोचें, क्या हमने सबके मंगलका ठेका ले रक्खा है और हमारे क्रोध करनेसे ही उसका मंगल हो जायगा ? उसकी बुराई मिट जायगी ? किंतु यह भ्रम है कि मैं डाँट–डपटकर किसीको सुधार लूँगा। अपने बच्चोंपर हम प्यारभरा शासन कर सकते हैं, पर उसमें क्रोधकी गंध भी नहीं आनी चाहिये। हम जान भी नहीं पाते, उन–उन अवसरोंपर उन बच्चोंका, नौकरोंका सुधार तो होता नहीं, उलटे हमारी आस्तिकताकी नींव भूकम्पकी भाँति हिलने लगती है, जो अभी–अभी आगे आनेवाली विपत्तियोंमें हमें और भी खिन्न बना देती है। इस दोषको सर्वथा सर्वांशमें जितना शीघ्र–से–शीघ्र हम कुचल सकें, कुचल डालें। नहीं तो, उपासनाका प्रासाद इस वर्तमान नींवपर निर्मित नहीं हो सकेगा। क्रोधकी गंध भी उस उपासनाके महलकी

दीवालोंमे दरार डाल ही देती है। अतएव खूब सावधानीसे व्रत लेकर इस दोषपर हम काबू पावें।

भगवान्‌से एक बार जुड़ना ही जीवनका सारा इतिहास बदलजानेका शुभ शकुन है

बहुत पढ़े–लिखे होनेके कारण कोई विश्वास चाहे न करें, परंतु सत्य तो सत्य ही रहेगा। भगवान् हैं और रहेंगे। उनका अनन्त अपरिसीम आनन्दमय चिद्‌विलास अनादिकालसे चलता रहा है, अनन्तकालतक चलता रहेगा। उस चिद्‌विलासमें ही विश्वका प्रत्येक प्राणी जान या अनजानेमें सम्मिलित है। समुद्रकी लहरकी तरह बन–बनकर वह उठता है और उसीमें विलीन हो जाता है अर्थात् भगवान्‌के परम आनन्दमय अंकमें ही वह विराजित था, है और रहेगा। उस अंकमें ही उसकी सम्पूर्ण चेष्टा हो रही है। कल्पना करो, गर्भमें जब कोई बच्चा रहता है, तो पाँचवे–छठें महीनेके बाद उसके गर्भमें चलनेकी अनुभूति माँको होने लगती है। उसका हिलना–डुलना चाहे कैसा भी हो, माँमें आनन्दका संचार करता है। माँ उस गर्भस्थ संतानके सम्बन्धमें यह विचार नहीं करती कि यह तो हमारा तिरस्कार करता है। वैसे ही प्रत्येक भूत–प्राणी निरन्तर भगवान्‌के गर्भमें ही निवास कर रहा है। भगवान्‌के संकल्पमें ही उसकी सम्पूर्ण चेष्टाएँ हो रही हैं और उस प्राणीके अनजानमें ही भगवान्‌के चिद्‌विलासका प्रवाह बड़े व्यवस्थित ढंगसे निरन्तर चल रहा है और अनन्तकालतक चलता रहेगा; किंतु जो प्राणी इसको जान लेता है, उसे एक अनिर्वचनीय अचिन्त्य आनन्दका अनुभव होता है। वास्तवमें यह जानना और न जानना भी भगवान्‌के सच्चिदानन्दमय विलासका ही एक अंग है। सरल भाषामें इसे यों समझना चाहिये—जिस क्षण किसी भी प्राणीने एक बार भी किसी भी निमित्तसे झूठ–मूठ ही भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ लिया, उस क्षण ही सचमुच अनादि अनन्तकालीन जीवन–भूमिकाकी एक नयी रूपरेखा निर्मित हो गयी। अर्थात् अब आगे चलकर वह अवश्य–अवश्य उस प्राणीकी भाँति भगवान्‌के चिद्‌विलासके रहस्यको जान जायेगा, जो भगवान्‌के अंगमें नित्य विराजित रहकर, भगवान्‌के विलासका नित्य–निरन्तर अनुभव करता हुआ परमानन्दमें निमग्न रहता है। भगवान्‌से एक बार जुड़ना ही जीवनका सारा इतिहास बदल जानेका मानो सचमुच सत्य, परम मंगलमय शुभ शकुन है।

हर्षको हम आनन्दमें परिणत कर लें

अनुकूलतामें हमें हर्ष होता ही है, पर यह हर्ष एक विकार है; आनन्दमें सर्वथा भिन्न वस्तु है यह। हर्षको आनन्दमें परिणत कर लें, यही करना है। आनन्द तो प्रभुका स्वरूप है, प्रतिबिम्ब है, जो मन–बुद्धिरूपी दर्पणपर प्रतिबिम्बित होता है और तबतक स्थायीरूपसे बना ही रहता है, जबतक मन–बुद्धिका भी आत्यन्तिक विलय प्रभुमें नहीं हो जाता। किसी भी हर्षको हम आनन्दका रूप दे दें अर्थात् ऐसी भावना दृढ़ कर लें कि वह हर्ष हमें कभी छोड़े ही नहीं। फिर यह विकार वरदान बन जायगा और यही करना है।

वस्तुके परिवर्द्धनकी भावनाको भूलकर हम भगवान्‌की रट लगाना शुरू कर दें

किसी अनुकूल वस्तुकी सत्ताका अनुभव होकर उसमें परिवर्धन होनेकी इच्छाका नाम 'लोभ' है। यह भी एक बड़ा दोष है। हम विचार करें—क्या वह वस्तु सचमुच बिना कहे भगवान्‌की कृपासे बढ़ नहीं जाती, यदि वह हमारे लिये आवश्यक होती ? क्या भगवान्‌को यह ज्ञान नहीं है कि इतनेमें इसका काम नहीं चलेगा, इसे बढ़ा देना चाहिये। बच्चा जब बहुत छोटा होता है, तब उसे कितना दूध पिलाना चाहिये, कितने कपड़े चाहिये, इसका ध्यान बच्चा रखता है या उसकी माँ रखती है ? बच्चा तो भूख लगनेपर रोता ही है। रोनेके अतिरिक्त उसके पास और कोई साधन नही है। तो वस्तुतः हैं तो हम भगवान्‌की दृष्टिमें बच्चेके समान ही; किंतु भ्रमवश समझ रहे हैं अपनेको चतुर और निर्णय करने लग जाते हैं कि 'इस चीजकी तो त्रुटि है, यह तो पूरी होनी ही चाहिये'। ये सब विचार उपासनामें बाधक है। यदि हमारी परिवर्धनकी इच्छा हो, किसी वस्तुके परिवर्धनकी भावना हमारे मनमें उदय हो तो हम भगवान्‌को पुकारने लग जायँ और सचमुच भगवान्‌पर ही इसका भार छोड़ दें। हम परिवर्धनकी भावनाको भूलकर भगवान्‌की रट लगानी शुरू कर दें। हम देखेंगे कि दो बातोंमेंसे एक बात होकर रहेगी—

(क) या तो हमें विस्मृति हो जायगी उस परिवर्धनकी।

अथवा

(ख) रोनेपर माँ जैसे दूध पिला देती है, वैसे ही हमारी परिवर्धनकी चाह पूरी हो जायगी और साथ ही एक विश्वासका भाव इतना तीव्र हो उठेगा

कि क्रमशः आगे परिवर्धनकी चाहमें काफी शिथिलता आ जायगी और हम ऊपर उठ जायँगे।

जो परिस्थिति आवे, उसका हम स्वागत करें

हम यह अनुभव करनेकी चेष्टा करें, सारी शक्ति लगाकर विश्वास करें कि जो भी परिस्थिति भगवान्‌की ओरसे हमारे सामने रक्खी जा रही है, उसके कण–कणमें लौकिक–पारलौकिक हमारा मंगल–ही–मंगल भरा है। हमारे लिये जो अत्यन्त आवश्यक परिस्थिति है, भगवान्‌के द्वारा उसीका निर्माण किया गया है। भगवान् अपरिसीम करुणामय हैं। उन्हें ठीक पूरा पता है कि हमारे लिये कौन–कौन–सी परिस्थिति होनी चाहिये और यह सब सोच–समझकर ही सारी परिस्थितियोंका निर्माण भगवान्‌ने किया है। अबोध बच्चेको क्या चाहिये। इसका निर्णय ठीक–ठीक उसकी जननी ही करती है और तदनुरूप व्यवस्था भी करती है। इसलिये जो परिस्थिति आवे, उसका हम स्वागत करें। यही प्रत्येक परिस्थितिमें भगवान्‌के मंगलमय विध ानको देखना है।

भगवान्‌के सौहार्दपर विश्वास बढ़ाएँ

किसी वस्तुके अभावका अनुभव होनेपर ही कामना उत्पन्न होती है। लोभमें और काममें इतना ही अन्तर है कि लोभ उस वस्तुकी सत्ताका अनुभव कराता है और परिवर्धनकी माँग करता है और कामना वस्तुके अभावकी अनुभूति कराती है और उसकी पूर्तिकी अपेक्षा रखती है। यहाँ भी भगवान्‌के अनन्त सौहार्दपर यदि हमारा सचमुच विश्वास हो जाय, तो हमारे मनमें आयगा कि क्या भगवान्‌के पास किसी वस्तुका अभाव है, जो भगवान् हमें नहीं दे रहे हैं ? असलमें जो वस्तु हमारे पास नहीं है, उसकी सचमुच––सचमुच हमें आवश्यकता ही नहीं है। इसीलिये भगवान्‌ने हमें वह नहीं दी है। यहाँकी माँ भी––लौकिक ममतासे पूरित माँ भी अपने शिशुके लिये आवश्यक वस्तुकी व्यवस्था बिना ही माँगे करती है। अनन्त माताओंके हृदयका सम्पूर्ण स्नेह एकत्र कर लेनेपर भी भगवान्‌के स्नेह–सागरकी एक बूँदके बराबर भी नहीं होता। वे परम पिता परमात्मा क्या हमें आवश्यक वस्तु नहीं देते ? सारांश यह है कि भगवान्‌के सौहार्दपर विश्वास बढ़ावें तो स्पृहा–वासना, क्षीण–क्षीणतर होते–होते सब–की–सब सर्वथा विलुप्त हो जायँगी।

प्रत्येक विपत्तिमें प्रभुके परम मंगलमय कर–कमलोंका दर्शन, स्पर्श प्राप्त करें

होठोंपर स्मित और स्वर प्रभुके नामकी पुकार लिये हुए ही हमारी जीवनलीला समाप्त हो और जबतक व्यवहार–जगत्‌में रहें, तबतक सम्पूर्ण साहसके साथ प्रसन्न–चित्तसे प्रत्येक विपत्तिमें प्रभुके परम मंगलमय कर–कमलोंका दर्शन, स्पर्श प्राप्त करते हुए हँसते–हँसते उसको सिर चढ़ाते चले जायँ। अनजानमें भी प्रभुके प्रति विश्वासका ऊँचा–से–ऊँचा परमाणु भरते चले जाना भी कम नहीं है, पर जीवनके आदर्शके लिये क्षेत्र इतना विस्तृत है कि जिसकी सीमा आजतक किसी भी महात्माने नापी ही नहीं।

सच्चे सुखका दर्शन हम कैसे पा सकते हैं ?

वास्तवमें मानव–जीवनका उद्देश्य क्या है ? वह है—सुख। वेदान्तकी बड़ी–बड़ी पद्धतिके द्वारा लोग सचमुच यह निर्णय करते हैं कि मनुष्यके मनमें यह सुखकी वासना है क्यों ? और अन्तमें इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि आत्यन्तिक निरतिशय सुख उसका स्परूप है। उससे उसे विच्छिन्नताका भ्रम हो गया है और वह उसीसे तादात्म्य करना चाह रहा है। इसलिये उसके अदंर सुखकी अभिलाषा निरन्तर बनी हुयी है।

जिस क्षणसे सुख–दुःखका अनुभव करनेवाली हमारी बुद्धि जागरूक हुयी होगी, तबसे लेकर आजतक जितनी चेष्टाएँ हमने की है, उनके अन्तरालमें आत्यन्तिक निरतिशय स्वरूपभूत सच्चिदानन्दमय उस सुखके तादात्म्य–लाभ करनेकी अभिसंधि ही रही है, परंतु अनादि अज्ञानके कारण हमारे जीवनमें भी यही होता आया है कि जो सुखका मूल उद्‌गम है, सुखका मूल स्रोत है, जो हमारा वास्तवमें स्वरूप ही है, वह तो हमारा साधन बन जाता हैं और साध्य बन जाते हैं—जगत्‌के कोई–न–कोई अनित्य कल्पित सुख।

कदाचित् उस स्थितिसे हम ऊपर उठ सकते—अपना सारा विवेक बटोरकर श्रीकृष्णको साध्य–तत्त्व बना लेते और शेष जो कुछ भी उनके अतिरिक्त पदार्थ हमको दीखते हैं, उनको साधन बना लेते, तो आज हम सचमुच–सचमुच पृथ्वीके सर्वाधिक सुखी प्राणियोंमें होते। वास्तविक सुखकी उपलब्धि हो जाती हमें तथा सारे अभाव सर्वथा समाप्त हो जाते और जीवनमें कुछ भी शेष न रह जाता प्राप्त करनके लिये। देर–सबेर हमको इस धरातलपर आना ही पड़ेगा अर्थात् श्रीकृष्णको साध्य–तत्त्व

बनाना पड़ेगा और जो कुछ भी श्रीकृष्णके अतिरिक्त वस्तु प्रतीत होती है——धन, जन, परिवार आदि, उनको साधन बनाना पड़ेगा और तभी हम सचमुच सच्चे सुखके दर्शन पा सकेंगे।

श्रीकृष्णको जीवनका लक्ष्य बनावें

हम अपने जीवनका विश्लेषण करके देखें——आजतक सुख पानेका सतत प्रयास जानमें, अनजानमें हमने किया है, पर क्या हम सुखी हो गये ? आजीवन सुखके लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहनेपर भी, आजीवन सुखकी चाह पोषित रखकर भी, आज वर्षों–वर्षोंतक सत्संग–भजन करके भी हम सुखी नहीं हो सके हैं। ऐसा क्यों ?

सच्चे हृदयसे अगर हम पूछेंगे तो हमको यह स्पष्ट दीखेगा कि श्रीकृष्ण अभी हमारे लिये लक्ष्य बने ही नहीं। हमारी कल्पनासे प्रसूत जो सुखकी वृत्ति है, श्रीकृष्ण उसके साधनमात्र हैं। पर उनका एक चिन्मय विलास अनादिकालसे चल रहा है, अनन्तकालतक चलता रहेगा। वे इस बातको अच्छीतरह जानते हैं कि मेरे अमुक स्वजनको क्या चाहिये। उनके निर्णयमें कभी भ्रमका समावेश हो ही नहीं सकता। जैसे हम अपने बच्चोंके लिये निर्णय कर लेते हैं और तुरंत ही उसकी इच्छित वस्तु उसे देनेका संकल्प हमारे मनमें जगता है और व्यवस्था भी करनेका प्रयत्न करते हैं; क्योंकि हमारे मनमें प्रभुके अनन्त अपरिसीम निराविल प्यारका प्रतिबिम्ब ही आता है, जो बच्चोंको प्यार देनेके लिये उद्विग्न हो उठता है। प्यारका स्वरूप ही होता है——सर्वथा सर्वांशमें जिसको प्यार करे, उसको सर्वथा सर्वांशमें सुखी करनेका प्रयास करे, सुखी करता रहे। श्रीकृष्णके स्वरूपमें यह प्यार अनन्त अपरिसीम मात्रामें अनन्त सागरकी तरह लहरा रहा है। उसीका प्रतिबिम्ब हमारे मनमें जाग्रत होता है और हम अपने बच्चोंको सुख पहुँचानेकी चेष्टा करते हैं।

किंतु एक वस्तुकी चाह पूरी होते ही, बच्चा दूसरी वस्तुकी चाह करने लगा। ऐसा क्यों होता है ? ऐसा इसलिये होता है कि वास्तवमें जिसे वस्तुकी माँग उस बच्चेने की थी, उसमें पूर्ण सुखकी उपलब्धि उसे नहीं हुई। तुरंत ही उसके मनमें, अज्ञात मनमें नवीन सुखकी अभिलाषा जगी और उसके अनुसार उसकी माँग फिर हुई। अर्थात् एक नवीन सुखकी अभिलाषा, उसकी माँग, उसकी पूर्ति और फिर नवीन सुखकी अभिलाषा, उसकी माँग और पूर्ति——यह क्रम ही चलता रहा है।

श्रीकृष्णके प्रति भी हमारा सम्बन्ध ठीक इसी प्रकार बना हुआ है। सुखकी अभिलाषा, माँग, फिर उनके द्वारा उसकी पूर्ति। श्रीकृष्ण लक्ष्य ही नहीं बन सके अभीतक तो।

सच्ची चाह होते ही भगवान् मिल जायँगे

यदि हम किसी दूरस्थित मित्रको याद करें तो उसकी मानसिक मूर्ति तो सामने आ जायगी, पर उसका शरीर यहाँसे बहुत दूर किसी अन्य स्थानमें होनेके कारण नहीं दीखेगा; परंतु भगवान्में यह बात नहीं है। भगवान् और भगवान्का स्मरण दो वस्तु नहीं है। जिस समय हम भगवान्की मूर्ति अपने मानसपटलपर लाते हैं, उसी समय वहीं पूर्णरूपसे भगवान् हमारे मनमें आ जाते हैं। पर वे बोलते इसलिये नहीं हैं कि हम उन्हें भावनाका चित्र मान लेते हैं और थोड़ी देर बाद फिर दूसरे कामोंमें लग जाते हैं। यदि ठीकसे कोई एक भी लीलाका चित्र बाँधकर मनको उसमें डुबाये रखे तो उसी भगवान्की मूर्तिमें भगवान् प्रकट हो जायँगे; क्योंकि भगवान् वहाँ पहलेसे ही हैं। जबतक मन नहीं लगायेंगे, तबतक 'मैं भगवान्को जानता हूँ'––यह कहना बनता नहीं। जरा सोचें––धन चाहनेपर मन उसमें कैसे लगता है ? कौन–सी युक्ति मन लगानेकी हमने किसीसे पूछी थी ? नहीं पूछी थी; मनकी स्वाभाविक गति ध नकी ओर लग रही थी; क्योंकि धनकी चाह थी। इसी प्रकार जहाँ भगवान्की चाह है, वहाँ मनकी गति उसी ओर दौड़ेगी। धन तो चाहने मात्रसे नहीं मिलता, उसके लिये न जाने कितने उद्योग करने पड़ते हैं, फिर उद्योगके सफल होनेका भी निश्चय नहीं। पर इसमें तो केवल चाहकी जरूरत है। 'हे नाथ ! तुम मूझे मिल जाओ'––यह चाह होते ही वे मिल जायँगे। विचार करें––जब भगवान्का चिन्तन छोड़कर मन दूसरी चीजपर जाता है, तब उसके लिये भगवान्से अधिक मूल्य उस वस्तुका है या नहीं ? और जब उसकी कीमत हमारे मनमें ज्यादा है तो भगवान् क्यों आवें ! यह सर्वथा सत्य है कि सच्ची चाह उत्पन्न होते ही वे मिल जायँगे, चाह होते ही भगवान् उस चाहको पूर्ण कर देंगे।

तत्परतासे हम चेष्टा करें; फिर कभी तो भगवान्की कृपा पूर्ण कर ही देगी

भगवत्स्मरणकी चेष्टामें त्रुटि नहीं होनी चाहिये। वह निश्चित है कि त्रुटि इसीलिये होती है कि हम त्रुटि होने देते हैं। कम–से–कम प्रत्येक

पाँच मिनटपर भगवत्स्मरणका नियम अत्यन्त दृढ़तासे निभाना चाहिये। इसमें जरा भी कठिनाई नहीं है। केवल मनकी लगन होनेसे ही काम हो जायगा। मनका स्वभाव यों तो बहुत बदमाशी करनेका है, पर इसमें एक गुण भी बड़ा सुन्दर है। हम जिस चीजमें इसे लगा दें तथा एक बार अच्छी तरह उस वस्तुको पकड़ा दें, फिर वह जल्दी उस वस्तुको छोड़ना नहीं चाहेगा। अनादिकालसे हमने इसे संसार पकड़ा रक्खा है, इसीसे वह इसे छोड़ना नहीं चाहता। पर एक बार दृढ़तासे यदि हम इसे भगवान्‌का चिन्तन पकड़ा देंगे तो फिर यह भगवान्‌को भी दृढ़तासे ही पकड़ लेगा और छोड़ना नहीं चाहेगा। यह सर्वथा सत्य है कि हमारी इच्छाकी कमीके कारण पाँच–पाँच मिनटके भगवत्स्मरणमें भूल हुई है, होती है; नियम छूटता है। हम यदि चाहने लगें कि पाँच–पाँच मिनटपर तो भगवत्स्मरणमें भूल नहीं होने देंगे, तो हम देखेंगे कि प्रत्येक दिन भूलमें कमी होने लगेगी और कुछ ही दिनोंमें भूल होनी बंद हो जायगी। हाँ, हम करेंगे ही नहीं, तो फिर तो उसकी दवा ही नहीं है। तत्परतासे हम चेष्टा करें, फिर कभी तो भगवान्‌की कृपा पूर्ण कर ही देगी।

कोई कह सकते हैं, मन नहीं लगता, सो मन तो लगानेसे ही लगेगा। इसका एक उपाय है——२४ घंटेका हम नियमित कार्यक्रम बना लें——इतनी देर तक अमुक काम, फिर अमुक काम, फिर अमुक काम। इस प्रकार ठीक कार्यक्रम जँचाकर घड़ीसे सब काम करें तथा ध्यान रक्खें कि जो काम जिस समय करेंगे, उसमें मन लगाकर ही करेंगे। केवल भगवान्‌की स्मृतिके लिये छूट है; क्योंकि मुख्य वस्तु जीवनमें भगवत्स्मरण ही है; अन्यथा प्रत्येक काम मनुष्यको पूरे मनोयोगसे करना चाहिये। प्रत्येक कार्य हम पूरे मनोयोगसे करें। दो महीना यदि ठीक २४ घंटेका कार्यक्रम जँचाकर करें तो फिर हमको किसी प्रमाणकी जरूरत नहीं होगी, स्वय ही एक विलक्षण आनन्द मिलेगा।

सच्चे संतका स्पर्श करें, फिर हम उसी ढाँचेमें ढल जायँगे

विश्वास करें——'हम चाहे मलिन–से–मलिन प्राणी क्यों न हों, केवल मैलेकी तरह हममें दुर्गन्ध ही क्यों न भरी हो, बाहर–भीतर, नीचे–ऊपर, केवल

बदबू आ रही हो, पर 'संत' नामकी वस्तु इतनी पवित्र है, इतनी सरस है कि उसका स्पर्श होते ही हम बिल्कुल उसी ढाँचेमें ढल जायँगे। आग क्या यह देखती है कि यह मैला है ? मैला आगमें पड़ा कि सारा-का-सारा अंगारा बन जायगा। हम मिलें, उसमें मिलें; अपनी सारी मलिनता, सारी दुर्गन्ध लेकर मिलें। दिन-रात उसके इशारेपर चलनेकी चेष्टा करें, दिन-रात सोचें--'संत कितने कृपालु हैं।' दिन-रात यह विचार करें--'कृपामय ! तुम्हारी कृपा ही मुझे भले अपना ले, मुझमें तो बल नहीं।' दिन-रात नाम लें; चलते-फिरते नाम लें। इससे बड़ी सहायता मिलेगी। दिन-रात यही इच्छा करें कि संतका संग नहीं छूटे। दिन-रात यही सोचें कि संतके लिये परिवार, संतके लिये इज्जत यदि बाधक है तो संतके चरणोंमें इनको भी समर्पण कर देना है। इसका यह अर्थ नहीं कि संन्यासी बन जाना है। बाहर कपड़ा रँगकर भी क्या होगा ? परंतु यह नितान्त सत्य है कि सर्वस्यकी आहुति देनेके लिये तैयारी मनसे ही करनी पड़ेगी। बाहरका ढाँचा ज्यों-का-त्यों रहकर मन बिल्कुल खाली हो जायगा, तभी हमारी अभिलाषा पूर्ण होगी। यदि किसी संतकी दृष्टि--अमृतमयी दृष्टि, अमोघ दृष्टि पड़ चुकी है तो हमारे लिये परवाना काटा जा चुका, परंतु हम यदि अपनी ओरसे देनेके लिये--जिसकी चीज है, उसकी ही चीज उसको लौटानेके लिये तैयार हो जाँय, अर्थात् अपनी ममता उठाकर सबपर उसका अधिकार मान लें, तो फिर शीघ्र-से-शीघ्र कृपा प्रकाशित हो जायगी।

विवेकका आश्रय कर अपनी चेष्टाओंका नियन्त्रण करें

कभी शान्त चित्तसे हमने विचार किया होगा, तो हमें पता लग गया होगा कि हमारा मन सुखकी प्राप्तिके लिये प्रतिक्षण लालायित है। जीवनके कण-'च　ग्कणमें सुखकी वासना धँसी हुई है। जानमें, अनजानमें, हमारी जो कुछ भी चेष्टा होती है, वह होती है केवल सुखकी प्राप्तिके लिये। हमें यदि स्पप्नमें भी भान होने लगे कि हमारी अमुक चेष्टासे दुःखका कोई आसार नजर आ रहा है, तो तत्क्षण हम उस चेष्टासे विरत हो जायँगे। यह मानवमात्रके लिये ही नहीं, पशु-पक्षियोंतकके लिये लागू होता हैं। मानवमें और पशु-पक्षियोंमें इतना ही अन्तर है कि मानवको विवेक प्राप्त है और पशु-पक्षी भोग-योनि होनेके कारण अपनी सम्पूर्ण चेष्टाओंमें सर्वथा परतन्त्र हैं; परन्तु उन चेष्टाओंके

मूलमें हेतु सुखकी प्राप्ति ही है, भले ही परिणाममें दुःखकी उपलब्धि हो। मनुष्य ही एक ऐसी सृष्टि है, जिसमें प्रभुके परम मंगलमय विधानके अनुसार उसे 'विवेक' नामकी वस्तु प्राप्त है और उस विवेकका आश्रय करके वह अपनी चेष्टाओंका नियन्त्रयण कर सकता है।

पूरी सच्चाईके साथ हम भगवान्की ओर चल पड़ें, फिर अपनी अहैतुकी कृपाका प्रकाश वे स्वयं कर देंगे

सत्यका प्रकाश सत्य यह है कि यहाँ भगवान्के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है; जब आँखें खुल जाती हैं, तो केवल, केवल, केवल, 'एक ही बचा रह जाता है। वह 'एक' कैसा है, क्या है, कितना बड़ा है——यह भी वही अनुभव करता है जिसकी आँखें खुली हुई हैं अथवा जो स्वयं भगवान् हैं, वे ही, केवल वे ही जानते हैं कि वे क्या हैं, कैसे हैं।

उस एक नित्य सत्य स्थितिमें प्रतिष्ठित होनेसे पहले हमारी जो मान्यता, जो निश्चय उस सत्यके सम्बन्धमें है——उसे लेकर ही हम चल पड़े, पूरी सच्चाईके साथ चल पड़े। बिना पेंदीके लोटेकी तरह यदि कभी पूर्व, कभी पश्चिम, कभी दक्षिण, कभी उत्तरकी ओर मुड़ते रहेंगे, लुढ़कते रहेंगे, तो समझ लें, हमारे अंदर पूरी सच्चाई नहीं है; हम भगवान्की ओर पूरी सच्चाईके साथ चलना नहीं चाह रहे हैं। यह सच है कि कभी–कभी बड़े भीषण तूफानमें पेंदी लगा हुआ लोटा भी दस हाथ दूर खिसक जाता है, वैसे ही मायाके भीषण चपेटमें ऊँचे–से–ऊँचे साधक भी कभी क्षणभरके लिये डगमग–से हो जाते हैं। किंतु उनका डगमग–सा होना भी उनके सत्यमें, नित्य सत्य भगवान्में पूर्ण प्रतिष्ठित होनेके लिये ही होता है। जैसे खूँटेको जमीनमें गाड़नेवाला उसे बार–बार हिलाकर देखता है कि यह हिल तो नहीं रहा है——वैसे ही भगवान् स्वयं ही उसको——किसी ऊँचे साधकको हिलाकर उससे खेलते हैं। देखते हैं कि यह हिलता है या नहीं ? तथा फिर जैसे खूँटेको हिलते देखकर खूँटा गाड़नेवाला और भी वेगसे उसपर चोट मारता है, उसे अडिग, अचल गाड़कर ही छोड़ता है, वैसे ही भगवान् उस ऊँचे साधकको मायाके हाथसे हिलाकर, उसे हिलते देखकर उसपर अपनी अपरिसीम अहैतुकी कृपाका तत्क्षण प्रकाश कर देते हैं; उसे अपनेमें मिलाकर अचल पूर्ण प्रतिष्ठित करके ही छोड़ते हैं।

किंतु यदि हम अपनी ठीक–ठीक जाँच करें, तो हमें यही दीखेगा

कि ऊँचा साधक क्या, हम तो परमार्थ–साधक ही नहीं हैं। हम तो अभीतक विषय–साधक बन हुए है, जैसे बिना पेंदीका लोटा हो और बार–बार उसी दिशामें लुढ़क रहे हैं, जिधर हमें विषयरूप मैला अपने अंदर भरनेके लिये प्राप्त हो जाय। हम तो उससे भी गये–बीते हैं, जो एक छोटा शिशु है, खेलमें गिर पड़नेके कारण मैलेमें सन गया है और अपनी माँको पुकार रहा है––'अरी मैया ! तू दौड़कर आ जा री; मैं गिर पड़ा हूँ, मुझे मैलेमेंसे निकाल री।' हम तो उसी गड्ढेमें, उसी मैलेमें ही और भी सन जानेमें ही सुखका अनुभव कर रहे हैं और सोच रहे हैं––'माँ नहीं देख रही है, बड़ा अच्छा है।' परमार्थका साधक ऐसा नहीं होता। ऐसा साधक तो स्पष्ट ही विषयका साधक है और इसीलिये हमारी यह दुर्दशा है।

फिर भी घबरानेकी आवश्यकता नहीं है। यहँकी माँ भी देर हो जानेपर बच्चेको ढूँढ़ने बाहर निकल पड़ती है, फिर अनन्त––भूत, भविष्य, वर्तमानकी असंख्य माताओंका एकत्रित प्यार जिन भगवान्‌के अपरिसीम प्यारके महासमुद्रकी एक बूँदमें ही समा जाता है, वे भगवान् तो हमारे पास ही अवस्थित रहकर, हमें देखकर हँस रहे हैं। ऐसे वे भगवान् क्या हमारे सामने प्रकट नहीं होंगे ? अवश्य होंगे और हमारा सब मल धोकर हमें अपने अंकमें ले लेंगे, हमें अपनेमें मिला लेंगे।

प्रभुसे एक बार जुड़ना ही जीवनका सारा इतिहास बदल जानेका शुभ शकुन है

जिस क्षण किसी भी प्राणीने एक बार भी किसी भी निमित्तसे झूठ–मूठ ही प्रभुसे एक सम्बन्ध जोड़ लिया, उस क्षण ही सचमुच–सचमुच–सचमुच अनादि अनन्तकालीन जीवन–भूमिकाकी एक नयी रूपरेखा निर्मित हो गयी। अर्थात् अब वह आगे चलकर अवश्य, अवश्य, अवश्य उस शिशुकी भाँति प्रभुके चिद्‌विलासके रहस्यको जान जायगा, जो प्रभुके अंकमें नित्य विराजित रहकर, उनके चिद्‌विलासका नित्य–निरन्तर अनुभव करता हुआ परमानन्दमें निमग्न रहता है।

प्रभुसे एक बार जुड़ना ही जीवनका सारा इतिहास बदल जानेका मानो सचमुच सत्य परम मंगलमय शुभ शकुन है। अतएव हमने चाहे किसी भी निमित्तसे श्रीकृष्णको यदि एक बार पकड़ लिया है तो हमारे भावी जीवनकी योजना भी बन ही गयी। परिस्थितियोंमें उलट–फेर तो हमारे

विश्वासकी कमीके कारण होता रहता है। यदि विश्वास पूर्ण होता, तब तो दो बातमें एक बात होकर ही रहती या तो परिस्थितिका हमारे अभिलषित ढ़गसे समाधान हो जाता अथवा हमारे मनसे परिस्थितिकी वासना निकलकर हमें शान्ति मिल जाती। परंतु विश्वासकी कमी होनेके कारण उलट–फेरका सामना करना पड़ रहा है; किंतु यह होते हुए भी वह बात तो सर्वथा सर्वोशमें अक्षुण्ण रहेगी ही जो श्रीकृष्णसे जुड़नेका अवश्यम्भावी परिणाम है कि हम उनके चिद्विलासका अनुभव करके ही रहेंगे।

हमारे किसी आचरणसे विश्वरूप प्रभुको कोई बुरी चीज मिले ही नहीं

अन्तिम साँसतक शरीरमें, इन्द्रियोंमें अभिव्यक्ति उसीकी होती रहे कि जिस पथसे जानेके लिये भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन–स्वरूप ऋषि–मुनि निर्देश कर गये हैं। सीधी भाषामें हम ऐसे समझें कि महासिद्ध होनेसे पहलेतक आचरणमें ऊँचे–से–ऊँचा साधकके द्वारा भी वैसा ही आचरण–व्यवहार होना चाहिये कि जिस आचरणसे विश्वरूप प्रभुको कोई बुरी चीज मिले ही नहीं। उसके आचरण ऐसे ही हों कि जिसका अनुकरण करके कोई बहक ही न सके; उसकी ओटमें आत्मवञ्चना कर ही न सके।

कोई कहे—'मैं तो भगवान्‌की शरणमें ही निरन्तर पड़ा रहता हूँ। तो यह वाणीकी शरणागति भी बड़ी अच्छी चीज है। किंतु असली शरणागति होते ही क्या होता है ? बड़ी तेजीसे उसके अंदर, शरणागतके अंदर, कुप्रवृत्तिका नाश होने लगता है, उसे बुरी प्रवृत्तिकी ओरसे घृणा होने लगती है और क्षण–क्षणमें एक पवित्र पागलपनकी वृत्ति आरम्भ हो जाती है, चलती रहती है—'यह देखो, यह देखो, भगवान्‌की कृपा आ रही है; अरे, देखो, देखो, भगवान्‌की कृपा मेरे ऊपर बरस रही है.............' ऐसी शरणागतिकी धारामें यदि हम बह रहे हों, स्नान कर रहे हों, तब तो कोई बात नहीं, कोई भय नहीं; अन्यथा उपर्युक्त बातपर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

जो भी परिस्थिति उत्पन्न हो, उसमें हम श्रीकृष्णको लाकर बैठा दें

जो भी परिस्थिति उत्पन्न हो, उसमें हम श्रीकृष्णको लाकर बैठा दें और उनपर ही उस परिस्थितिका भार सौंप दें। तो परिणाम यह होगा कि

उस परिस्थितिमें यथोचित प्रकाश अवश्य–अवश्य–अवश्य मिल ही जायगा। अर्थात् श्रीकृष्णकी अनन्त अपरिसीम कृपा हमें अपनी ओर खींच रही है, इसका अनुभव भी हो जायगा और साथ ही उस परिस्थितिका भी एक सुन्दर समाधान अवश्य प्राप्त हो जायगा। नहीं होता है, तो उसका विनम्र उत्तर यही है कि हम श्रीकृष्णको बीचमें ले ही नहीं आते हैं।

कोई भी विषम परिस्थिति हमारे सामने उपस्थित हुई हो, यदि सचमुच–सचमुच हम श्रीकृष्णको बीचमें ला रहे हों, तो उसका परिणाम यह निश्चित होगा कि उस परिस्थितिकी तो हमें विस्मृति हो ही जायगी, साथ ही मन, बुद्धि, चित्तमें मात्र श्रीकृष्णका ही अस्तित्व छा जायगा और थोड़े देर बाद––हो सकता है एक दिन बाद, दो दिन बाद––हमारा जब उसकी ओरसे मन हटेगा तो हमें भान यह होगा कि उस परिस्थितिका समाधान बड़े सुन्दर ढंगसे हो गया है और तत्क्षण यह भी भान हो जायगा कि सचमुच–सचमुच श्रीकृष्ण हमें अपनी ओर खींच रहे हैं।

किंतु होता है सर्वथा इसके विपरीत। हम तो दिन–रात परिस्थितिके चिन्तनमें, तज्जनित व्याकुलतामें अपना समय बिता देते हैं कि 'अरे, अबतक नहीं हुआ। कैसे क्या होगा ?' मानो भगवान्‌को ज्ञान ही नहीं है कि कब, क्या, कैसे करना चाहिये ? यहाँ तो सरल विश्वासके साथ जब एक बार कह दिया तो दूसरी बार कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। हमारा मन केन्द्रित हो जाना चाहिये केवल उनकी ओर। जिसको भार सौंप दिया, वह जाने। हम क्यों चिन्ता करें ? बिगड़े या बने, हमें क्या मतलब ? यह नितान्त सत्य है कि आजतक जो अपना भार श्रीकृष्णपर छोड़ गया है, छोड़ चुका है, उसको उस दरबारसे कभी निराशा नहीं मिली है, नहीं मिली है, नहीं मिली है; नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी। निराशा तो उसे ही मिलती है, मिलती है और मिलेगी, मिलेगी, जो भगवान्‌पर न छोड़कर उस परिस्थितिपर अपना मन केन्द्रित किये हुए है और झूठ–मूठ कह रहा है कि 'मैंने अपना सब भार भगवान्‌पर छोड़ रक्खा है।'

विभिन्न परिस्थितियोंको उत्पन्नकर भगवान् हमें इस लायक बना रहे हैं कि हम धूल बन जायें

जीवनके विभिन्न स्तरोंपर हमने न जानें कितने–कितने अनुभव किये होंगे––किसी बार सुख, किसी बार दुःख, उनका परिणाम हुआ होगा।

पर वे स्थायी नहीं बन सके। जो दुःखद परिणाम हुए, वे विस्मृतिके गर्भमें चले गये और जो सुखद परिणाम हुये, वे दो-चार नये अभावोंकी सृष्टि कर नये दुःखके बीज बो गये और हम ज्यों-के-त्यों सुख-दुःखके झूलेमें आजतक झुलते रह गये। हमको इस झूलेपरसे उतरना पड़ेगा।

भगवान्‌की अनन्त अपरिसीम कृपाका समुद्र लहराकर अनेक बार हमें स्नान करा चुका और मानो कृपाने मुहर लगा दी कि अब हमें उसमें मिल ही जाना पड़ेगा। हम कितनी ही उछल-कूद मचायें, वह कृपाका सागर लहरा-लहराकर हमसे खेलता रहेगा और धीरे-धीरे तीन तरफसे बाड़ लगाता जायगा। मानो कृपा कहेगी कि पूर्वकी ओर बढ़े तो इतनी दूर बढ़ सकते हो, इतनी दूर भाग सकते हो; पश्चिमकी ओर इतनी दूर भाग सकते हो और दक्षिणकी ओर बचकर इतनी दूर भाग सकते हो। और उत्तरकी ओर तो मैं अनन्त सागरके रूपमें लहरा ही रही हूँ, जिधर तुम भागना चाह रहे हो। इस प्रकार धीर-धीरे तीन तरफके द्वार हमारे बंद कर देगी और हम नाचते-गाते, रोते-हँसते इधरसे उधर उस घेरेमें दौड़ते रहेंगे और सहसा यह होगा कि एक बड़ी उत्ताल तरंग उस कृपासागरसे उठेगी, जो सम्पूर्ण घेरेको ऊपर तक भर देगी। उसीके प्रवाहमें बहते हुए हम अनन्त अपरिसीम सागरमें सदाके लिये विलीन हो जायँगे अर्थात् भगवान्‌से हमारा आत्यन्तिक तादात्म्य होकर, हमारी अहंताका सर्वथा विलय होकर आत्यन्तिक सच्चिदानन्दमय सुखसे हम एकात्मकता लाभ कर लेंगे। इसीके लिये भगवान् हमसे निरन्तर खेल रहे हैं। विभिन्न परिस्थितियोंको उत्पन्न कर वे हमें इस लायक बना रहे हैं कि हम धूल बन जाँय, पत्थर जैसी अहंता अत्यन्त मृदुल रेणुका बन जाय, जिससे सागरमें मिलते ही वह सर्वथा सर्वांशमें सागरका स्वरूप ही बन जाय।

जो साधना हम करते हैं, उसे हम आदर-पूर्वक मनमें, बुद्धिमें उतारनेकी चेष्टा करें और भगवान्‌की ओर देखें

मनुष्यके मनमें विचारोंकी एक लहर चलती रहती है—एकके पीछे एक, बिल्कुल जुड़ी हुई। जो ऊँचे साधक होते हैं, उनका मन शान्त रहता है—स्फुरणासे रहित; किंतु साधारण मनुष्योंका मन तो किसी-न-किसी ऊहापोहमें लगा ही रहता है। जगनेसे सोनेतक वे विचारोंके भँवरमें पड़े रहकर नाचते रहते हैं। उन्हें शान्तिकी नींद भी नहीं आती। वैसे ही विचारोंसे परिभावित स्पप्नके जालमें छटपट करते हुए उनकी रात कट

जाती है। बड़ी दयनीय दशा होती है उनकी।

प्रारब्धवश जब सफलताके दिन रहते हैं तो उस समय अहंकार बड़ा सुन्दर रूप धारणकर पनपने लगता है, नयी–नयी सफलता प्राप्त करनेकी नयी–नयी योजना बनने लगती है और जब प्रारब्ध दुःख–विपत्तिका सृजन करने लगता है, तब वह बढ़ा हुआ अहंकार अथवा पहलेके साँचेका ही अहंकार हायतोबा मचाने लगता है, ठेस–पर–ठेस लगकर ऐसा व्याकुल हो जाता है कि पूछो मत।

बीचके कुछ परमार्थ–साधक ऐसे होते हैं, जो तोतेकी तरह साधनाका पाठ रटते हैं। बड़ा अच्छा है तोतेकी तरह भी भगवान्‌की ओर बढ़नेका पाठ रटना; किंतु होना चाहिये यह कि जीवनमें श्वास समाप्त होनेसे बहुत पहले ही हम सत्यका साक्षात्कार कर लें। उसके लिये बहुत परिश्रमकी आवश्यकता नहीं है। फिर भी तोतेकी तरह पाठ रटनेसे काम नहीं चलता। जो साधना हम करते हैं, उसे हम मनमें, बुद्धिमें उतारनेकी चेष्टा करें आदरपूर्वक। यदि अपनी साधनामें हमारी आदरबुद्धि होगी तो वह अपने–आप चलते–फिरते, खाते–पीते सब समय ही प्रधान बनने लग जायगी, मन–ही–मन उसी प्रकारके विचारोंकी लहरोंका प्रवाह प्रबल होने लग जायगा। बाहरकी चेष्टा भी अभ्यासवश, जैसी होनी चाहिये, होती रहेगी और भीतर भगवान्‌के विराजनेका सुन्दर स्थान निर्मित होता रहेगा। पर यदि साधनामें आदरबुद्धि नहीं रहेगी तो फिर वह साधना तोतेका पाठ ही रहेगी।

जहाँ हमने निश्चय कर लिया कि हमें तो अपनी परमार्थ–साधनाको सबसे अधिक आदरका स्थान देना है कि बस, भगवान्‌की कृपा ही——भगवान्‌की अनन्त अपरिसीम कृपा ही——अहैतुकी कृपा ही शेष सब काम कर देगी। विश्वास करें, हमको फिर आगे कुछ भी नहीं करना पड़ेगा, भगवान्‌की कृपासे ही सब कुछ अपने–आप होकर ही रहेगा। हमने अभी अनुभव ही नहीं किया कि भगवान्‌की कृपा कैसी अदभुत वस्तु होती है। इसीलिये हमारी आँखोंमें कभी–कभी दुःखके आँसू आ ही जाते हैं।

हमें चाहिये यह कि हम यह निश्चय कर लें कि जो भी साधना हम करेंगे, उसे मन लगाकर करेंगे, सबसे अधिक आदर उसीको देंगे और भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेकर भारी–से–भारी दुःखके अवसरपर आँसू न बहाकर भगवान्‌की ओर देखेंगे। फिर हम देखें कि क्या होता है। जिस क्षण इस निश्चयके साथ हम साधनाके पथपर, भगवत्कृपाके भरोसे पूरे उत्साहमें भरकर पहला कदम

बढ़ाया कि भगवत्कृपाका परिचय हमें मिलकर ही रहेगा। ऐसा इसलिये कि करुणावरुणालय भगवान् हमारे साथ ही हैं, अनन्त अपरिसीम शक्ति लिये हुए हमारी सहायताके लिये तैयार खड़े हैं, उन्हें पूरा-पूरा पता है सभी बातोंका और वे हमारे अपने-से-अपने हैं। वे खुशामदके टट्टू नहीं हैं, जो प्रतीक्षा करें कि 'यह मेरी खुशामद करे, तभी मैं इसकी सहायता करूँगा।' वे तो हमें अपनेमें मिला लेना चाह रहे हैं, अपनी परम सुख-शान्तिमयी गोदमें बैठा लेना चाह रहे हैं। हमने साधनामें मन लगाया इसका अर्थ हुआ कि हमने उनकी ओर चलना आरम्भ कर दिया है और उनकी कृपाकी ओर उन्मुख हुए, इसका अर्थ हुआ कि हमने निरालम्ब होकर उनकी सहायता प्राप्त करनेके लिये अपनी भुजा फैला दी। बस, यही तो अपेक्षित है। यह हुआ कि भगवान् सामने आये। यह केवल भावुकताकी बात नहीं है, यह सत्यका सत्य है। कोई भी यह करके इस सत्यको प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है।

यह नियम ले लें कि विश्वरूप भगवान्‌की, अपने प्रभुकी,अपने आपकी वञ्चना नहीं करेंगे

असली साधककी स्थिति बड़ी ही विचित्र होती है। सच्चाई उसके कण-कणमें भरी होती है। वह महासिद्धोंकी नकल नहीं करता—न वाणीमें, न मनमें। वह तो अपने लक्ष्यकी ओर सम्पूर्ण शक्ति बटोरकर, प्राणोंका सम्पूर्ण उत्साह लेकर, अपने जीवनकी साधना-प्रणालीके पथपर निरन्तर दौड़ता रहता है। उसे अवकाश कहाँ कि वह दूसरोंका गुण-दोष देखता फिरे।

सच्चे परमार्थिक साधककी अपने पार्थिव शरीरसे, अपनी उस मल-मूत्रकी थैलीसे विरक्ति बढ़ती चली जा रही है; क्योंकि असली साधक—परमार्थ-साधकको चाहे वह ज्ञानकी साधना करता हो अथवा भक्तिकी साधना करता हो, दोनों ही स्थितियोंमें उसे यह दीखने लग ही जाता है कि यह पार्थिव देह, यह मल-मूत्रकी थैली तो मैं नहीं हूँ, इससे मैं कोइ भिन्न वस्तु हूँ। किसी भी सम्प्रदायके सिद्धान्त माननेवाला वह क्यों न हो, उसे अपने पार्थिव शरीरसे कम या अधिक मात्रामें विरक्ति होने ही लगेगी। ऐसा इसलिये होता है कि सभी सम्प्रदायके सिद्धान्त संकेत करते हैं एक ही सत्यकी ओर, एक भगवान्‌की ओर। सभी साधनाएँ—यदि वे शास्त्रसम्मत हों अथवा किसी भी महासिद्धके द्वारा परिचालित हों अथवा

मूलतः किसी महासिद्ध संतसे परिचालित हुई हों तो वे आपको पहुँचा देंगी वहीं, एक ही भगवान्‌के पास और भगवान्‌की दिशामें सच्चाईसे साथ चलनेका पहला कदम बढ़ाते ही सत्यकी यह किरण हमपर पड़ने ही लगेगी कि हम वास्तवमें है कौन ?

आँख बंद रहनेके कारण हम उस किरणकी अनुभूति तुरंत न कर सकें, यह बात हो सकती है; किंतु जैसे–जैसे कदम भगवान्‌की ओर बढ़ता जायगा, वैसे–वैसे यह प्रतीति अवश्य–अवश्य होने लगेगी ही कि हम इस देहसे भिन्न वस्तु हैं।

कोई कहे कि मैं तो वर्षोंसे साधना कर रहा हूँ, मुझे फिर जीवनमें ऐसा अनुभव क्यों नहीं होता ? इसका उत्तर यह है कि 'आपके द्वारा तोतेकी रटन्त–विद्याकी साधना हो रही है; किंतु आप घबराइये मत, तर्क मत कीजिये, इस रटन्त–विद्याकी ही साधना करते चले जाइये, लकीर ही पीटते चले जाइये। एक–न–एक दिन यह रटन्त–विद्याकी साधना भी––परमार्थकी लकीर पीटनेकी साधना भी, सच्ची होकर रहेगी––सर्वथा सर्वांशमें और आपको भगवान्‌से मिलाकर ही छोड़ेगी। हाँ, यदि हम यह नियम ले लें कि विश्वरूप भगवान्‌को, अपने प्रभुको, अपने आपको ही बिल्कुल नहीं ठगेंगे, उनकी वञ्चना नहीं करेंगे तो यह पूर्ण निश्चित है कि हम अत्यधिक शीघ्रतासे कृतार्थ हो जायँगे, कृतकृत्य हो जायँगे।

किसी भी काममें हाथ डालनेसे पहले मन–ही–मन भगवान्‌की ओर देखनेकी आदत डालें––

यदि कोई कहे कि कल सूर्य नहीं उदय होगा, परसोंकी बात भी पक्की नहीं कही जा सकती तो हमें उसकी बात सच्ची लगेगी क्या ? हम तो हँसेंगे और यह सोचने लगेंगे इसका माथा फिरा हुआ दीखता है, यह पागल हो गया है। एक अंधेको भी––जिसने कभी सूर्य नामकी वस्तु नहीं देखी जो कभी यह नहीं जान सका कि प्रकाश क्या वस्तु है––ऐसे जन्मसे ही अंधेको भी यह बात कही जानेपर वह हँसेगा ही; क्योंकि उसने सुन–सुनकर यह विश्वास कर लिया है कि सूर्य तो रोज उगता ही है और उसके उगनेपर प्रकाश फैल जाता है। वैसे ही भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होनेपर भी, भगवान्‌का साक्षात्कार नहीं होनेपर भी भगवान्‌के अस्तित्वमें, भगवान्‌की अहैतुकी कृपामें सच्चा विश्वास हो जानेपर उस विश्वासको हिला देना––डिगा देना असम्भव

है। भगवान्‌के अस्तित्वमें, भगवान्‌के अहैतुकी कृपामें विश्वास होते ही मन अपने–आप पाप–कर्मोंसे हट जाता है। मनमें सत्त्वगुणका प्रकाश बढ़ने लगता है। मनमें कामनाओंकी जो निरन्तर भट्ठी जलती रहती है, उसके बुझते देर नहीं लगती। पद–पदपर जो प्रतिकूलताका अनुभव होकर, छोटी–बड़ी कामनाकी पूर्तिमें ठेस लगकर क्रोधकी आग जल उठती है, धधकने लगती है, वह आग शान्त होने लगती है, वह शान्त होकर ही रहेगी। प्रत्येक बातमें ही हमें असंतोषका भान होकर हमारी साँस आज जो तेजीसे चलती रहती है, वह स्थिति मिटकर प्रत्येक हालतमें ही हमें संतोषका वह सुख अनुभूत होने लगेगा, वह शान्ति मनको परिपूरित किये रहेगी—जिसकी कल्पनातक हमें अभीतक स्वप्नमें भी नहीं हो सकी है। ऐसा होता है—भगवान्‌के अस्तित्वमें विश्वासका फल। भगवान्‌की अहैतुकी कृपामें सच्चा विश्वास हो जानेका परिणाम ऐसा ही होता है।

हम कह सकते हैं कि 'क्या हमारे मनमें भगवान्‌का सच्चा विश्वास नहीं है ? भगवान्‌की अहैतुकी कृपाको क्या हम नहीं मानते ? इसका उत्तर यह है कि वाणीसे अवश्य मानते हैं, किंतु यह मानना बुद्धिके दृढ़ निश्चयमें नहीं मिल सका, मनके अणु–अणुमें, परमाणु–परमाणुमें समा नहीं सका, इन्द्रियोंमें निर्झरकी कलकल धाराकी तरह प्रकट नहीं हो सका। यदि ऐसा हो गया होता तो हमारी उपर्युक्त स्थिति हो ही जाती।

हमारा पुनः प्रश्न हो सकता है कि 'फिर इस अवस्थामें क्या किया जाय ?' इसका उत्तर यह है कि आँख खुलनेसे लेकर रातमें फिर नींद आनेतक हम जो भी करते हैं, उसे करनेसे पहले, किसी भी काममें हाथ डालनेसे पहले मन–ही–मन भगवान्‌की ओर इस भावनासे देख लेनेकी आदत डाल लें—'हे नाथ ! मुझे आपमें, आपकी अहैतुकी कृपामें दृढ़ विश्वास हो जाय।' नहाने चले, नहानेसे पहले; कपड़ा पहनने चले, पहननेसे पहले; कोई पूजा–पाठ करने चले, उसे करनेसे पहले; कलेवा करने चले, कलेवासे पहले; कलेवाके समय किसीको उत्तर देना हो; उत्तर देनेसे पहले; बच्चोंसे खेलना हो, खेलनेसे पहले; आफिस जाना हो, आफिस जानेसे पहले मोटरमें चढ़ने चले, चढ़नेसे पहले; और पैदल जाना है, उसमें पहला कदम उठानेसे पहले—सारांश यह है कि यह भावना प्रत्येक क्रियामें एक बार जाग्रत होकर ही रहे, ऐसी आदत डालें। थोड़े ही दिनोंमें—यदि हमने ऐसी आदत डाल ली तो स्वयं हम देख लेंगे कि हमारा जीवन कैसा

पवित्र बन गया है, कितनी तेजीसे हम परमार्थके पथपर आगे–से–आगे अपने–आप बढ़ते चले जा रहे हैं।

जगत्‌के भोगोंको बटोरना छोड़कर अपना मुँह भगवान्‌की ओर कर लें

सोना जितना तपाया जाता है, उतनी ही अधिक उसकी उज्ज्वलता बढ़ती चली जाती है, उसकी शोभा निखरती चली जाती है। वैसे ही हम विपत्ति आनेकी आगमें जितना अधिक तपते चले जायँगे, उतना ही अधिक हमारे भीतर जो भगवान्‌का दिया हुआ तेज है, वह प्रकट होता जायगा, हमारी निर्मलताका सौन्दर्य सबकी आँखोंको आकर्षित करने लगेगा। किंतु हमें घबराहट होती है। विपत्तिकी आशंकासे हमारी नींद उड़ जाती है। विपत्ति तो आयेगी पीछे और आयेगी कि नहीं तथा आयेगी तो किस रूपमें––भारी या हल्की बनकर आयेगी––ये सब तो पीछेकी बातें हैं। हम तो विपत्तिकी आशंकामात्रसे अधमरे–से हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है ? इसलिये कि जगत्‌के रचे–पचे रहकर, यहीं इसी जगत्‌के भोगोंमें ही हम निरन्तर सुख ढूँढ़ रहे हैं। पर यदि हम असली दृष्टिको अपना सकते–'हमको किधर जाना है', उसको याद कर सकते तो प्रत्येक विपत्ति––भारी–से–भारी विपत्ति––हमारे लिये स्वागतकी वस्तु बन जाती; विपत्तिकी आशंका हमारे मनमें उल्लासका, नवीन साहसका संचार कर देती।

किंतु अभी कुछ भी बिगड़ा नहीं है। सुबहका भूला हुआ यदि शामको भी घर पहुँच जाय, अथवा शामको भी घरकी ओर जानेवाली सड़कपर घरकी ओर मुँह करके दौड़ चले तो, बस, काम हो गया। वह तो घर पहुँच ही गया। और यदि सूर्य छिप गया है तो भी एक घड़ी रात जाते–न–जाते वह घर पहुँच ही जायगा; क्योंकि एक रक्षक उसके साथ छिपा हुआ निरन्तर चल रहा था, चल रहा है। जहाँ आवश्यकता होगी, वहीं वह उसे रोशनी दिखा देगा, अब आगे गड्ढेमें गिरनेसे बचा लेगा, जंगली जानवरोंको उसपर हमला नहीं करने देगा, दौड़नेके कारण जब उसे प्यास लगेगी तो उसे बड़ा ही सुखद ठंढा पानी पिला देगा और थकान बढ़ जानेपर जरा–सा उसे छू देगा तथा इतनेमें ही उसकी सारी थकावट दूर होकर उसमें नवीन स्फूर्ति, नया बल आ जायगा।

ठीक ऐसे ही, अभी हमारे पास थोड़ा समय बच गया है। हम

जगत्‌के भोगोंको बटोरना छोड़कर अपना मुँह भगवान्‌की ओर कर लें, जो साधना संत–शास्त्र बताते हैं, उस पथपर चल पड़े; तेजीसे दौड़ पड़े तो सूर्य छिप भी गया तो अँधेरा होते–न–होते भगवान् हमें मिल जायँगे—जरूरत होते ही आवश्यकताभर प्रकाश हमें मिल जायगा; किसी भी पापके गर्तमें गिरनेसे बचा लिये जायँगे। हमें हानि पहुँचानेवाले हमारे पास फटकतक नहीं सकेंगे। कोई–सा दुःख—साधनके सम्बन्धको लेकर—होते ही हमें एक अद्‌भुत शान्तिका अनुभव करा दिया जायगा। और जब साधन–पथपर आगे बढ़नेमें असमर्थताका अनुभव करने लगेंगे तो उसी क्षण—एक प्रेमिल स्पर्शकी अनुभूति करा दी जायगी और हममें नया ओज, नयी ताकत आ जायगी।

दोषदर्शनकी वृत्तिको पूर्ण शक्ति लगाकर दबानेकी चेष्टा करें

जिस समय हम दूसरेका दोष देखने चलते हैं, उस समय हमें यह सोच लेना चाहिये कि हम अपने–आपको उसकी अपेक्षा बहुत अधिक ऊँचा और उस दोषसे शून्य अनुभव कर रहे हैं। यह ऐसी भ्रान्ति है, जो ऊँचे–से–ऊँचे साधकोंतकका पिण्ड नहीं छोड़ती। असली महासिद्धमें इस दोष–दर्शनकी वृत्तिका अत्यन्त अभाव होता है। और वह वृत्ति है इतनी गंदी कि साधकको परमार्थके साधनपथसे घसीटकर पीछेकी ओर नरकके गर्तमें प्रायः डाल ही देती है।

यह भी एक बड़े विचारनेकी बात है कि हम जिस दोषका दर्शन दूसरेमें कर रहे हैं, वह दोष यदि हममें नहीं होता, तो हमें वह दोष दूसरेमें दीखता ही नहीं, यह ऐसा सत्य है कि जिसका खण्डन हो ही नहीं सकता। यद्यपि बुद्धिवाद तो परमार्थ–सत्यको छू ही नहीं सकता, किंतु बुद्धिवादके तर्कोंको भी आगे चलकर इस प्रश्नपर स्वीकार कर ही लेना पड़ेगा कि हम जिस कूड़ेका अनुभव अन्यत्र कर रहे हैं, वह कूड़ा वस्तुतः हमारे ही अंदर है और उसीका प्रतिबिम्ब हम दूसरेपर डाल रहे हैं।

सामने एक व्यक्ति हमें दम्भी–पाखण्डीके रूपमें दीख रहा है। वहाँ सत्य तो यह है कि भगवान् विराजित है; किंतु उसके स्थानपर हमें अपने अंदर संचित कूड़ेका दर्शन हो रहा है। इतना ही नहीं, इस प्रकारके दर्शनकी प्रत्येक चेष्टा हमारे अंदर संचित कूड़ेके ढेरको निकालकर हमारे चारों ओर इकट्ठा कर देती है और इतनी दुर्गन्ध फैला देती है कि हम उस

ओरसे आनेवाले भगवान्‌के सौरभको ग्रहण कर ही नहीं सकते। अपनी ही दुर्गन्धि हमें सत्यकी अनुभूतिसे दूर ले जाकर तरह–तरहका पाठ पढ़ा देती है और हम यह फतवा दे बैठते हैं कि 'अमुक तो ऐसा गंदा है, अमुक ऐसी गंदी है।' जिन्हें सत्यका अनुभव होता है, वे इस प्रकारका निर्णय कभी दे ही नहीं सकते; क्योंकि उनकी आँखमें बुरी–भली नामकी कोई भी वस्तु न रहकर एक भगवान्‌की सत्ता ही बच रहती है।

सच्चे संतके प्रति अपनी आसक्तिकी धारा मोड़ दें

असली संतकी कोई बाहरी पहचान नहीं होती, किंतु जो सच्ची अभिलाषा लेकर भगवान्‌की ओर बढ़ना चाहता है, उसे भगवान् असली संतके पास पहुँचा ही देते हैं। स्वयं भगवान् ही संत बनकर उसके जीवनकी नाव पार लगाने आ जाते हैं। धोखा मनुष्यको वहीं होता है और इस कारणसे ही होता है, जहाँ अपना अंहकार लेकर मनुष्य चलता है और उनसे अपने मनकी इच्छाओंकी पूर्ति कराना चाहता है। इसका सीधा अर्थ यह है कि उसमें भगवान्‌की प्राप्तिकी सच्ची अभिलाषा नहीं है; क्योंकि भगवान्‌को प्राप्त करनेकी अनन्य तथा सच्ची लालसाका उदय होते ही तत्क्षण—अन्य कोई भी कामना, जागतिक पदार्थकी उपलब्धिकी रञ्चमात्र भी इच्छा रह ही नहीं जायगी और न अपनी विद्या–बुद्धिपर तथा अपने अंदर अच्छेपनका गर्व ही रहेगा। जहाँ ये दोनों चीजें है, वहाँ भगवान् तमाशा देखते हैं। अन्यथा, प्रथम तो उसे लें ही नहीं जायँगे, जहाँ वह मायाके प्रवाहमें फिर पड़ सकता है। और तो क्या, इसके लिये नवीन प्रारब्ध का निर्माणतक हो जाता है। इसे भगवत्कृपाजनित प्रारब्ध कहते हैं और यह भगवत्कृपाजनित प्रारब्ध बीचमें ही, कर्मजनित प्रारब्धको स्थगित करके फलोन्मुख होकर असली संतके सम्पर्कमें ला ही देता है, जहाँ उनसे कभी धोखा होगा ही नहीं; और यदि कोई बुरे प्रारब्धवश ऐसे संयोगमें आ गया है तो उसकी अवश्य–अवश्य रक्षा कर ही लेंगे वे; किंतु करेंगे उसीकी, जिसमें एकनिष्ठ भगवत्प्राप्तिकी लालसा है और जो सच्ची–सच्ची दीनता लेकर चला है, चल रहा है।

ऐसा भी देखा जाता है कि असली संतके सम्पर्कमें आनेपर भी उनके निमित्तसे तो नहीं, अन्य निमित्तसे पतन हो जाता है। ऐसा क्यों होता है ? इसके तीन–चार कारण हैं। पहला यह है कि उस मनुष्यकी भगवत्प्राप्तिकी

लालसा वैसी ही है, जैसे हम प्रदर्शनीमें गये और वहाँ चीजें खरीदने लगे—एक बढ़िया साड़ी खरीदी, दूसरी हाथी–दाँतकी एक चीज खरीदी, तीसरी अमुक, चौथी अमुक चीजें—इस प्रकार सत्तानबे चीजें तो खरीदीं भोग–विलासकी और अट्ठानबे, निन्यानबे और सौवीं वस्तु खरीदीं—एक तुलसीकी माला और भजनकी पोथी और भगवान्‌का कोई चित्र, सो भी मनमें यह सोचकर कि हम अमुक संतके पास रहने लगें हैं, यदि यह तीन चीजें नहीं रखेंगे तो नक्कू बनेंगे; क्या कहेंगे वे लोग, जो उन संतके पास रहते हैं ? और जीवनमें अपना उद्धार कर लेना भी तो आवश्यक चीज है ही, इस दृष्टिमें भी एक सौमें तीन ऐसी चीज तो अपने पास जरूरी हैं ही। ठीक उसी प्रकार संतके, असली संतके पास रहकर भी हमारे मनमें भगवत्प्राप्तिकी लालसा इसी औसतकी प्रायः रहती है। दूसरा कारण है, मनमानी करनेकी प्रवृत्ति, संतकी आज्ञाओंका पूरा–पूरा निरादर करना और तीसरा कारण है, उनसे भी कपट करने लग जाना, उन्हें भी ठगनेकी–सी वृत्तिको अपना लेना। यदि ये तीनों कारण हमारे अंदर, हमारे लिये बिल्कुल ही लागू नहीं पड़ते तो किसी भी असली संतके सम्पर्कमें जानेके अनन्तर, अन्य किसीके निमित्तसे हमारा पतन नहीं होगा।

इसपर प्रश्न हो सकता है तो फिर क्या किया जाय ? तो इसका उत्तर है कि संतका ही संग करें, बस, सच्चे अर्थमें संतका ही अवश्य–अवश्य संग करें। संगका अर्थ होता है—आसक्ति। हम किसी सच्चे संतके प्रति आसक्ति कर लें। असली संत किसे माना जाय ? संसारमें जिस व्यक्तिमें हमें दैवी सम्पदाके अधिक–से–अधिक गुण अभिव्यक्त दीखें, विकसित दीखें तथा जिनके संगसे हमारे अंदर दैवी सम्पदाके गुण विशेषरूपसे बढ़ने लगें—उन्हींको हम असली संत मान लें और उनकी शरणमें जाकर उनके प्रति ही अपनी आसक्तिकी धाराको मोड़ दें। किंतु मोड़ सकेंगे तभी—जब हम अपने जीवनको इस साँचेमें ढालनेके लिये प्रस्तुत होंगे—

१–अपनी जानमें भगवत्प्राप्तिकी लालसाके अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण सांसारिक कामनाओंको सर्वथा विसर्जित करनेकी पूरी–पूरी चेष्टा करें।

२–इस प्रयासमें असफल होनपर उनसे—चाहे, वह कामना कैसी भी हो—उनसे ही, लाज–संकोच छोड़कर बता दें। किंतु उन्हें बाध्य करनेकी भूल न करें। उनपर ही छोड़ दें; वे पूरी करें तो ठीक, नहीं तो ठीक। पर फिर उसके लिये दूसरेके आगे हाथ न पसारें।

३–उनकी प्रत्येक आज्ञाके पीछे, प्रत्येकके पालनमें पूरी–पूरी तत्परतासे काम लें। किंतु यह ध्यान रखना चाहिये कि असली संत कभी भी असद्–रूपात्मक आज्ञा देते ही नहीं। कभी हमें यह दीखें कि यह आज्ञा तो असत्–प्रेरणात्मक है तो उसका पालन कदापि न करें। वे उसके न पालनसे ही वस्तुतः प्रसन्न होंगे––यदि वे असली संत हैं तो।

४–मनमानी चेष्टा––साधनात्मक या व्यावहारिक––बिल्कुल न करें; उनसे पूछकर करें।

५–उनसे कभी भी––स्वप्नमें भी, जाग्रतकी तो बात ही क्या है––कोई–सा, तनिक भी कपट न करें, न करें।

एक बात और याद रखनी चाहिये––असली संत पागल कुत्तेकी तरह होते हैं। पागल कुत्तेके काटनेपर उसके विषका असर तुरंत नहीं होता––उसके लिये कुछ समय अपेक्षित होता है। वैसे ही यदि तनिक–सी भी श्रद्धा लेकर, कभी भी, एक बार भी हम उनके दृष्टि–पथमें आ गये हैं तो उन्होंने भी अपनी अहैतुकी कृपासे परिपूर्ण आँख रूपी दाँतोंको हमारे तनमें, इन्द्रियोंमें, मनमें, बुद्धिमें, अहंतामें गड़ा ही दिया है। पागल कुत्तेका काटा हुआ व्यक्ति कालान्तरमें कुत्तेकी भाँति 'हू–हू' करने लगता है––यहाँ तो इसका इलाज भी सम्भव होता है। किंतु असली संतकी आँखोंसे निकलकर कृपाभरे दाँत उसे छू गये हैं––वह देर–सबेर––संत बनकर ही रहेगा।

संतकी सात्त्विक आज्ञाओंके पीछे प्राणतक विसर्जन करनेके लिये प्रस्तुत रहें

जिसपर भगवान्‌की कृपाका प्रकाश हो जाता है, उसीको विशुद्ध सच्चे संतके दर्शन होते हैं, उसीको वे मिलते हैं। किंतु कभी–कभी ऐसा भी हो ही जाता है, नहीं–नहीं, प्रायः ऐसा ही हो जाता है कि जैसे किसी साग बेचनेवालीको हठात् कोई अनमोल हीरा मिल जाय, वैसे कोई हठात्––बिना किसी प्रयासके, किसी परम विशुद्ध सच्चे संतके सम्पर्कमें आ जाय।

हम शायद सोच सकते हों कि 'मुझे तो परम विशुद्ध संत अवश्य मिल गये हैं और मैं––मैं तो साग बचनेवालीकी श्रेणीमें कदापि नहीं हूँ, जो अनमोल, कभी नहीं देखे हीरेकी कीमत नहीं जानती; मैं तो संत–महिमाको जानता हूँ, उसका उपभोग करता हूँ, संतका आदर करता हूँ; मेरा जीवन तो उनके लिये ही, उनपर ही न्योछावर हो चुका है।' बस यहीं––यदि हमारे

मनमें, स्वप्नमें भी ऐसी विचारधारा चल पड़ती है तो यह हमारा नितान्त भ्रम है। इस भ्रमको हम जितना शीघ्र सर्वथा परित्याग करे देंगे——उतनी ही शीघ्रतासे हमारे श्रेयका मार्ग प्रशस्त होकर भगवान्के सच्चे प्रकाशका हमें अवश्य–अवश्य शीघ्र–से–शीघ्र साक्षात्कार होकर ही रहेगा।

सच तो यह है कि जिसे सचमुच परम विशुद्ध संत मिल जाते हैं, जो तनिक भी उनकी महिमाका ज्ञान रखता है, उनकी महिमाका तनिक भी उपयोग अपने जीवनमें करता है——चाहे लचड़–पचड़ विश्वासके साथ ही, तनिक भी, किंतु सच्चे अर्थमें, उनपर न्योछावर हो जानेकी लालसा जिसमें जाग उठी है——उसे संत भगवान्से भी अधिक प्रिय लगने लगते हैं। यदि ऐसा नहीं हुआ है, उसके जीवनमें तो या तो उसे असली परम विशुद्ध संत मिले ही नहीं हैं या वह है उस श्रेणीमें——बस, उस साग बेचनेवालीकी श्रेणीमें ही, जिसने प्रकाश देनेवाला एक पत्थरका टुकड़ा समझकर हीरेको लेकर——उसी अनमोल हीरेको अपने घर लाकर ताखेमें रख दिया है। उसने भी संतको एक बड़ा ही सज्जन व्यक्ति समझकर अपने मनरूपी घरके किसी कोनेमें स्थान दे रक्खा है——संत–मिलनका अर्थ उसके जीवनमें इतना ही है।

परम विशुद्ध संतकी महिमा अपार है; हम अपनी कुतर्ककी बुद्धि लेकर उसको समझ ही नहीं सकते। उसके लिये आवश्यकता होती है——एक बार विश्वासका पथ अपनाकर चलनेकी, उनके पीछे–पीछे कदम बढ़ानेकी। पीछे–पीछेका अर्थ है——उनकी रुचिकी दिशामें, उनकी रुचिको देखकर, उसे ही अपनाकर चलना। यहाँ तो हमारी दशा है उस राहगीरसे भी गयी–बीती, जो जिस–किसीसे भी राह पूछ लेता है और विश्वास करके, निश्चिन्त होकर उस राहपर बढ़ता ही चला जाता है। उसके मनमें यह संशय नहीं जागता कि राह बतानेवाला मुझे धोखा दे रहा है। वह राहगीर ठीक–ठीक——रास्तेका मोड़ आनेपर पूछ ही लेगा किसीसे और सीधे जाना है कि बायें कि दाहिने मुड़ना है——यह पता लेकर बतानेवालेकी आज्ञाका अनुसरण करता है। हम तो पद–पदपर अपनी मनमानी करते हैं। संतके बार–बार मना करनेपर भी पापके गर्तमें गिरानेकी दिशामें ही पैर बढ़ाते हैं और कहीं गिर भी चुके हैं, तो भी संतके अतिशय प्यारसे मना करनेपर भी, उनकी छोटी–से–छोटी, सुगम–से–सुगम आज्ञाका निरादर करके मुँह किये रहते हैं पतनके गड्ढेकी ओर ही। तनिक भी पश्चाताप नहीं अपनी

भूलपर, और तुर्रा यह कि संतमें ही दोष दीखता है हमें। परम विशुद्ध संतसे मिलनेका प्रायः इतना ही अर्थ है जन–साधारणके जीवनमें आज।

किंतु इससे परम विशुद्ध संत बिल्कुल भी नाराज नहीं होते। उनकी कृपाका प्रवाह वैसे ही चलता ही रहता है पीछे–पीछे और एक क्षण जीवनमें ऐसा आयेगा ही––हो सकता है, वह क्षण आये ठीक मृत्युके बिन्दुपर ही––जिस क्षण हमारे जीवनकी धारा मुड़ेगी ही प्रभुकी ओर––संत मिलन, विशुद्ध संत–मिलनकी अमोघता, उनकी कृपाके प्रवाहकी अव्यर्थता व्यक्त होकर ही रहेगी––*'मोर मन प्रभू अस बिसवासा। राम तें अधिक राम कर दासा।।'*––यह सत्य होकर ही रहेगा। भले ही जगत् इसे, इस अद्‌भुत चमत्कारको, पारमार्थिक सत्यको न जान पाये, बुद्धिवादीके लिये यह हास्यास्पद ही बना रहे, किंतु सत्य तो सत्य ही रहता है। सत्य किसीकी मान्यताकी अपेक्षा नहीं रखता।

अतएव हम जिसे संत मान चुके हैं, उनकी सात्त्विक आज्ञाओंके पीछे अपने प्राणतक भी विसर्जित करना पड़े, इसके लिये भी सच्चा साहस बटोरकर अपने जीवनकी गाड़ीको आगे बढ़ाते चले जायँ। हमें भगवान्‌का प्रकाश मिलेगा ही।

भगवान्‌की रुचि जैसी प्रतीत हो उसका हम आन्तरिक उल्लाससे स्वागत करें

संतोंकी बाहरी चेष्टाको, चेष्टाके सच्चे अर्थको समझ लेना आसान काम नहीं है। मन शुद्ध हुए बिना अटकल–पच्चूपनेका निर्णय प्रायः गलत ही होता है और कहीं हम उसकी नकल करने चलें—तो सब समय नकल करना प्रथम तो सम्भव नहीं है और यदि आगे–पीछे सोचे बिना कभी साहस बटोरकर बैठें—तब आगे चलकर, अथवा तुरंत ही प्रायः पछताना पड़ता है। इसलिये सावधान रहना चाहिये।

एक संत थे। नदी पार कर रहे थे, नावसे। नदीका प्रवाह बहुत चौड़ा था। जब नाव ठीक बीचमें आयी तो मल्लाह चिल्ला उठा—'राम ही बचावें, बहुत जोरका तूफान आ रहा है!' धारा बड़ी तेज थी, अपनी पूरी शक्ति लगाकर मल्लाह डाँड़ खे रहा था। थोड़ी ही देरमें तूफान आ गया, अभी सैकड़ों गज दूर थी नाव किनारेसे। संतके अतिरिक्त पंद्रह–बीस यात्री और थे उस नावपर। तूफानका वेग बढ़ता ही गया; मल्लाहकी शक्ति समाप्त–सी होने लगी डाँड़ खेते–खेते। पुकार उठा मल्लाह—'नाव डूबती दीखती है, भगवान्‌को याद कीजिये आपलोग; अब वे

ही बचा सकते हैं।' डरके मारे सभी पुकारने लगे भगवान्‌को, किंतु वे संत तो बड़े ही विचित्र निकले। उन्होंने क्या किया कि अपना कमण्डलु उठाया और नदीमेंसे जल भर–भरकर नावमें डालने लगे—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः बस, डालते ही जा रहे थे। सबको अपनी जान की पड़ी थी। 'त्राहि, त्राहि, नाथ !' सभी पुकार रहे थे। संतकी ओर देखकर भी यात्री उन्हें इस चेष्टासे रोकनेसे रहे। मल्लाहसे नहीं रहा गया। संतोका भक्त होनेपर भी वह बोल ही उठा—'महाराज ! नावमें पानी डाल–डालकर और जल्दी इसे क्यों डुबोना चाह रहे हो ? पर कौन सुने, संतने तो और भी शीघ्रतासे पानी डालना जारी रक्खा। दो–तीन मिनट बीतते–न–बीतते मल्लाह चिल्ला उठा—'महाराजजी ! अब भगवान्‌की कृपा तो ऐसी दीखने लगी है कि नाव किनारे लग सकती है' किंतु आप तो इसमें पानी भरकर डुबानेपर ही तुले हुए हो।' 'हैं, ऐसी बात है'—कहकर संतने अब नावके भीतर जो पानी डाल चुके थे, उसे बाहर कमण्डलुमें भर–भरकर फेंकने लगे। पसीनेसे वे लथपथ हो रहे थे, पर भीतरका पानी अब बाहर फेंकते ही जा रहे थे। लोगोंने समझा—'संत पागल है।'

आखिर नाव किनारे लग ही गयी। यात्री भी उतरे। मल्लाह श्रद्धालु था। किसी भी संत–महात्मासे उसने उतराई ली ही नहीं थी। गरीबोंको वह यों ही पार कर देता था। याचनातक उसने नहीं की थी किसीसे भी उतराई की उसने अपने जीवन भर। लोग जो देते थे, उसीसे उसका जीवन चलता था। अस्तु ! उसके मनमें आया संत पागल होंगे, किंतु नाव तो पार लगी है इनकी उपस्थितिके कारण। उसने डाँड़ फेककर संतके चरण पकड़ लिये और पूछ बैठा—'महाराज ! आपने ऐसा क्यों किया ? पहले तो पानी भीतर डाल रहे थे, फिर बाहर डालने लगे।' संत हँसे और बोले—"देखो, मेरी नकल तो मत करना और मैं जो कह रहा हूँ, उसे समझनेकी चेष्टा करना। तुमने कहा—'नाव डूबने जा रही है।' तुम्हारी बात सुनकर मेरे मनमें आया कि 'प्रभुकी इच्छा है कि नाव डूब जाय, फिर मेरे लिये क्या कर्तव्य है ? नाव डूबे या बचे, इससे मेरे लिये कुछ बनता–बिगड़ता नहीं, किंतु मेरा तो कर्तव्य यही है कि उनके—प्रभुके परम मंगलमय विधानमें मेरे द्वारा सहयोगका दान हो जाय। बस, मैंने कमण्डलु उठाया और पानी डालने लगा—दूसरे शब्दोंमें मेरा प्रयास नावको डुबानेकी दिशामें रहा, या हुआ, या दीखा। और फिर जैसे ही तुमने यह बात कही कि 'नावके बचनेकी आशा है' बस, उसी क्षण मेरा प्रयास नावको बचानेकी दिशामें

चल पड़ा——यह जानकर कि 'प्रभु नावको बचाना चाह रहे हैं।' बस, प्रभुकी मंगलमयी इच्छामें अपनी इच्छा मिला दिया करो। इसका अर्थ तुम मत मान लेना कि कोई मरता हुआ दीखे तो किसी वैद्यके घरसे लाकर उसे जहर खिला दो। इसका अर्थ इतना ही है कि 'भगवान्‌की रुचि तुम्हें जैसी प्रतीत हो, उसका तुम आन्तरिक उल्लाससे स्वागत करो।' तुम जिस दिन सच्चे संत बन जाओगे, उस दिन तो तुम्हारे अंदर कोई संकल्प ही नहीं रहेगा, कोई कामना ही नहीं रहेगी; तुम्हारे द्वारा स्वाभाविक परम मंगलमयी चेष्टा ही निरन्तर होती रहेगी। उससे पहले तुम्हें चाहिये कि जो भी फलरूप तुम्हें प्राप्त हो, उसका आन्तरिक उल्लाससे स्वागत करो। प्राणोंका उल्लास लेकर मन–ही–मन पुकार उठो——'प्रभो ! तुम्हारी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो।' सारांश यह है कि तुम छोटी बातोंके लिये तो कहना ही क्या है, अपनी, अपने साथियोंकी मृत्युकी सम्भावना दीखनेपर भी व्यावहारिक जगत्‌में उससे बचने–बचानेके लिये सात्त्विक उपायोंका आश्रय तो ले लो, पर भयभीत मत होओ; अपितु परम उल्लासके साथ मृत्युका स्वागत करना सीखो——'मृत्युके रूपमें भगवान् ही आ रहे हैं, तुम्हारा मंगल करनेके लिये'——इसे इतने उल्लाससे अपने जीवनमें मूर्त्त कर लो मानो मृत्युको तुम नियन्त्रित कर रहे हो, मेरी तरह डूबती हुई नावमें पानी डालनेकी भाँति।"

इतना कहकर संत चले गये। इस कथासे हमें यह भी सीखना चाहिये कि हम जिन्हें संत मानते हों, उनकी चेष्टामें गुण–दोष न देखकर, भूलकर भी उनकी नकल न करके उनकी सात्त्विक आज्ञाओंके पालनमें जुटे रहें, तभी संतका असली संग हमारे द्वारा होगा।

भगवान्‌की यश–कथाके श्रवणका अद्भुत प्रभाव हमारे जीवनमें क्यों नहीं व्यक्त होता——विश्लेषण और निदान

असली संतकी कोई–सी बात किसी दिन किसी क्षण मनमें उतर जाती है, उसपर पर्वतकी तरह अचल विश्वास हो जाता है और जीवनके उस साँचेमें ढलते देर नहीं लगती। और यह हुआ कि भगवान् तो उसका स्वागत करनेके लिये पहलेसे ही तैयार खड़े रहते हैं, यह व्यक्ति देखते–देखते ही निहाल हो जाता है, कृतार्थ हो जाता है।

पढ़ना–लिखना बुरा नहीं है, पढ़–लिखकर विवेकका उपयोग करना ही चाहिये, सत्साहित्यका अनुशीलन करके जीवनको आगे बढ़ानेमें,

भगवान्‌की ओर मोड़नेमें जागरूक होना चाहिये, किंतु जो पढ़ाई–लिखाई, जो विवेक, जो साहित्य हमारी सरलताका हनन करके पद–पदपर हमें संशयालु बना देता है, संत–जगत्‌के प्रति अनास्था उत्पन्न करा देता है——सम्पूर्ण संत–जगत्‌को हमें ढोंगियोंसे ही भरा दिखालाने लग जाता है——वैसी पढ़ाई–लिखाई, वैसा विवेक, वैसा सत्साहित्य तो जनसाधरणका कल्याण करनेसे रहा। मस्तिष्क–प्रधान और हृदय–प्रधान——बस, ये ही तो दो वर्ग जनसाधारणके बनते हैं। इन्हींको परमार्थमें हम बुद्धिमार्गका साधक और विश्वासमार्गका साधक कहकर पुकारते हैं।

बहुधा प्रश्न होते हैं——'असली संतके मुँहसे निकली हुई भगवत्कृपाको सुननेपर उसका क्या प्रभाव पड़ता है ? उसका कैसा अद्भुत प्रभाव पड़ना चाहिये ? और जैसा प्रभाव पड़ना चाहिये, वैसा श्रोताओंपर क्यों नहीं पड़ता ? और यदि पड़ता भी है तो वह स्थायी क्यों नहीं होता ?' इन प्रश्नोंका सीधा उत्तर यह है कि भगवान्‌की कथा सुननेका प्रभाव तो व्यक्त होकर ही रहेगा, संतके मुँहसे निकली हुई भगवद्–यश कथा अपना जादू दिखलाकर ही रहेगी। भगवत्कथा सुननेका प्रभाव, एक बार ही सुननेका प्रभाव यह होता है कि फिर संसार इस रूपमें नहीं रह जायगा। 'घर–द्वार सब छूट जायगा, हमारे सम्बन्धीजन रोते–बिलखते रह जायँगे और फिर हम उन्हें नहीं मिलेंगे, हम कपड़ा रँगकर साधु–सन्यासी ही बन जायँगे।' यह मतलब नहीं है; किंतु यह अवश्य है कि यह संसार मनसे तो सचमुच–सचमुच निकल ही जायगा। फिर हमपर असर ही नहीं पड़ेगा इस संसारके किसी चढ़ाव–उतारका। अभी तो हमारी यह दशा है कि क्षुद्र–से कारण भी क्षण–क्षणमें हमारे मनका नक्शा पलटते रहते हैं और फिर भी हम कहते हैं कि हमें रामायणकी कथा, भागवतकी कथासे बढ़कर अधिक प्रिय कोई वस्तु है ही नहीं। यह 'आत्मवञ्चना' है। यदि हम आत्मशोधन करें तो स्वयं पता लग जायगा कि इसे 'आत्मवञ्चना' कहना सोलह आना ठीक है कि नहीं।

भगवत्कथाके इस माहात्म्यको ध्यानमें रखकर इसपर ध्यान देते हुए यदि हम कहीं कथा सुनने जायँगे तो एक–दो बार ही जानेकी जरूरत होगी। फिर तो जीवन भगवान्‌की ओर ऐसा मुड़ेगा कि हम स्वयं ही दंग रह जायँगे। अतिशयोक्ति नहीं है, कोई करके देखना चाहे तो साहस बटोरकर देख ले सकते हैं। किंतु सोडावाटरके जोशकी तरह साहस न बटोरें,

लहराते हुए समुद्रकी तरह साहस लेकर आगे कदम बढ़ायें। समुद्र वहीं रहता है, लहरा उठता है बड़े वेगसे; किनारा ऊँचा रहनेपर टकराता है, उससे बार–बार घंटोंतक और फिर मानो थककर पीछेकी ओर हट जाता है। किंतु कुछ ही घंटोंके लिये ही पीछे हटता है। 'वह तो आयेगा ही, उसी दिन ही एक सुनिश्चित अवधिके अन्तरमें अवश्य आयेगा——किनारेको मानो डुबा देनेके लिये।' ऐसा साहस लेकर जायँ——पीछे पछतानेकी मनोवृत्तिको सर्वदा सदाके लिये जलाञ्जलि देकर, ठंढे पड़ जानेकी आदतको आगमें जलाकर।

* *

अच्छी बात कहना–सुनना, भगवान्‌की कथा सुनना——बिल्कुल ही प्रिय न लगनेपर भी बहुत–बहुत मंगलकारी है। 'आत्मवञ्चना'की बात तो ऊपर लिखी हुयी है, उसका अर्थ इतना ही है कि यदि सचमुच भगवान्‌की कथा हमें सबसे अधिक प्रिय लगती होती तो हमें यह पद भी अपने अंदर चरितार्थ होते अवश्य दीखता——

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यौ।
ज्यौं छल छाँडि सुभाव निरंतर रहत विषय–अनुराग्यौ।।
ज्यौं चितई पर नारि, सुने पातक प्रपंच घर–घर के।
त्यौं न साधु सुरसरितरंग निरमल गुन–गन रघुबर के।।

'हाय रे ! मेरा मन तुममें नहीं लगा। प्रभो ! जैसे यह कपट छोड़कर विषयोंमें निरन्तर रचा–पचा रहता है, वैसे नहीं लगा। नाथ ! परस्त्रीकी ओर जैसे आँखें बराबर चली जाती हैं, गाँवकी मलिन–चर्चा सुननेमें इतना रस आता है कि छोड़नेका मन ही नहीं करता——वैसे कभी भी महात्माओंके दर्शनके लिये मेरी आँखें नहीं ललचायीं, कभी भी भगवान्‌की गुणावली——गंगाकी धाराकी तरह, गंगाकी निर्मल लहरों की भाँति निर्मल करनेवाले भगवान्‌के यश, भगवान्‌की कथाकी ओर कानोंमें उन्माद पैदा करनेवाली उत्कण्ठा नहीं जागी।'

यह पद गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजकी रचना है, जिन्होंने रामचरितमानस–जैसे अद्वितीय सुन्दर महान् कल्याणकारी ग्रन्थकी रचना अवधी भाषामें की है। तो क्या महासिद्ध, भगवत्प्राप्त संत नहीं थे वे जो ऐसा कह गये हैं अपने लिये ? वे परमसिद्ध, भगवत्प्राप्त संत अवश्य अवश्य अवश्य थे; किंतु भगवत्प्राप्त संत——जिन्होंने भक्तिमार्गकी साधनासे महासिद्धकी स्थितिमें अवस्थिति प्राप्तकी है, भगवद्–भक्तिसे सिद्ध हुए हैं; उनकी स्थिति, अनुभूति,

उनके अन्तःकरणकी कथनमात्रके लिये बची हुई बुद्धि–मन–इन्द्रियोंकी अवस्था कैसी होती है—इसे वे ही जानते हैं। तो क्या ज्ञानमार्गकी साधनासे महासिद्ध हुए संतकी स्थिति कुछ भिन्न होती है ? नहीं, ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। किंतु यह ऐसी पहेली है, जिसे हम सुलझा सकेंगे सचमुच महासिद्धि प्राप्त कर लेनेपर ही। एक महात्मासे किसीने इसी प्रकारका प्रश्न किया था। उसके उत्तरमें उन्होंने कहा था—'महात्माओंका गज अपने दोषोंको नापनेका—जनसाधारणकी अपेक्षा दूसरा होता है'। अपने अंदर किसी भी दोषकी छायाकी छाया भी उन्हें स्वयंको कभी कहीं दीख जाय तो वह इतना विशाल—बड़ा दीखने लगता है कि बस, उसकी कोई इयत्ता नहीं। असली महात्मामें कोई दोष न होनेपर भी उन्हें क्यों दोष दीखता है। अपने अंदर—महात्मा बने बिना हम उसकी कल्पनातक कभी नहीं कर सकते। अतएव हमें तो इसीसे प्रयोजन रखना चाहिये कि खूब कथा सुनें भगवान्‌की, खूब सत्संगकी बातें सुनें, पर साथ ही आत्मशोधन भी करते रहें।

* *

भगवान्‌की कृपा चाह करनेपर ही प्रकाशित होती है

सोचें—एक–न–एक दिन इस शरीरसे हमारा सम्बन्ध छूट ही जायगा, फिर भी इतनी मूर्खता क्यों होती है कि इसके पीछे भगवान् ही हमसे छूट जाते हैं। यहाँ कोई भी ऐसी चीज नहीं, जिससे हमारा कुछ भी सम्बन्ध रहे; फिर भगवान्‌को छोड़ना तो महान् मूर्खता है।

भक्तलोग एक काम किया करते हैं—वे भगवान्‌से अपना कोई सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। अर्थात् 'भगवान् मेरे स्वामी हैं, मैं उनका दास हूँ', 'भगवान् मेरे सखा हैं, मैं उनका मित्र हूँ', 'भगवान् मेर पुत्र हैं, मैं उनका पिता या उनकी माता हूँ', 'भगवान् मेरे पति हैं, मैं उनकी पत्नी हूँ', 'भगवान् मेरे प्रेमास्पद हैं, मैं उनकी प्रेयसी हूँ।' कहनेका मतलब यह है कि जो सम्बन्ध बहुत प्यारा लगे, उसे मानकर ठीक उसीके अनुसार चौबीसों घंटे व्यवहार करना शुरू करे दें; फिर भगवान् जल्दी या देरसे उसके इसी सम्बन्धको मानकर उसे प्रकट कर देते हैं, अर्थात् ठीक–ठीक उसे यह अनुभव होने लगता है कि 'भगवान् मेरे यही हैं'।

यही बात संत लोग कहते हैं और यही सभी वैष्णव–शास्त्रोंका निचोड़ है। ऐसा करनेसे होता यह है कि फिर मनको जबर्दस्ती चौबीस

घंटेमें बार–बार सेवाके लिये भगवान्‌के सामने जाना पड़ता है और फिर धीरे–धीरे वह बिल्कुल तन्मय हो जाता है। जैसे कोई भगवान्‌का सखा है तो वह सुबह उठनेसे लेकर रातमें सोनेतक श्रीश्यामसुन्दरके साथ अथवा भगवान् श्रीरामके साथ रहेगा। भगवान् खायेंगे, तब वह खायेगा, नहायेंगे, तब नहायेगा; खेलेंगे, तब खेलेगा; सोयेंगे, तब सोयेगा। कभी वनमें घूमेगा, कभी घरमें रहेगा, कभी कुछ खेल, कभी कुछ खेल——इस प्रकार दिन–रात मनसे तो वहाँ लगा रहेगा तथा बाहरी रूपसे निरन्तर नाम लेता रहेगा, गुण–लीला आदि सुनता–पढ़ता रहेगा। जब इस प्रकारकी साधना तत्परतासे चलती है, तब भगवान्‌की कृपासे मन लगना कोई बड़ी बात नहीं है।

पर जब हम स्वयं——'हुआ तो हुआ, नहीं हुआ तो परवा नहीं'——इस प्रकारकी मुद्रा रखते हैं तो भगवान्‌को गरज तो है नहीं कि वे हमारे पीछे पागल होकर घूमते रहें। यद्यपि भगवान् किसी साधनके द्वारा नहीं मिलते, वे जब भी मिलते हैं तो अपनी कृपासे ही मिलते हैं, मन भी उनमें लगता है तो उनकी कृपासे ही लग सकता है, पर चाह तो हमको करनी पड़ेगी। यदि हम नहीं चाहे और बिना चाहे हमारा मन लग जाय तो बेचारे एक मिलमें काम करनेवाले मजदूरने क्या अपराध किया है कि उसका मन न लगे ? क्योंकि भगवान्‌के लिये तो सब समान हैं। इसलिये शास्त्रोंमें यह बात कही जाती है कि 'भगवान्‌की पूर्ण कृपा सबपर सर्वथा समान रहती है, पर वह चाह करनेपर ही प्रकाशित होती है।'

यह ठीक है कि जिसे सत्संग——सच्चे महापुरुषका संग——मिल गया है, उसे श्रीभगवान्‌की कृपाका दर्शन होनेकी बात निश्चित हो गयी है; पर यदि हम कुछ तत्परता दिखायें तो इससे भी जल्दी हो जाय।

श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं——"सनातन ! बिना महापुरुषोंकी कृपा हुए किसीको भक्ति मिल ही नहीं सकती। श्रीकृष्ण–भक्तिकी प्राप्ति तो ऊँची बात है, बहुत दूरकी बात है, भवबन्धका नाश भी बिना महापुरुषकी कृपा हुए हो ही नहीं सकता। सभी शास्त्रोंमें 'साधुसंग–साधुसंग' बस, यही बार–बार कहा गया है। यदि लवमात्रके लिये भी साधुसंग प्राप्त हुआ तो फिर तो सभी काम निश्चिय सिद्ध हो जाते हैं।"

फिर आगे चलकर कहते हैं——"जब मनुष्यका कोई अत्यन्त सुन्दर भाग्य जाग उठता है, तब उसमें पहले भगवान्‌के प्रति टान होती है और तब वह महापुरुषोंके संगमें जा पहुँचता है। महापुरुषका संग होते ही उसके द्वारा

भजनकी क्रिया—अर्थात् श्रवण-कीर्तन आदि होने लगते हैं। श्रवण-कीर्तन होते-होते सभी दोष दूर हो जाते हैं और सभी दोष दूर होनेपर भक्तिमें निष्ठा उत्पन्न होती है। निष्ठा होनेपर तब भगवान्‌के गुण-लीला आदिके श्रवण-कीर्तनमें रुचि उत्पन्न होती है। रुचि होनेके बाद उसमें अत्यन्त आसक्ति हो जाती है। आसक्ति होनेपर फिर मनमें भगवान्‌के प्रति प्रीतिका अंकुर उत्पन्न होता है। यही प्रीतिका अंकुर जब गाढ़ हो जाता है तो इसे 'प्रेम' कहते हैं और यही सभी आनन्दको देनेवाली वस्तु है।"

पापोंको यथाशक्ति छोड़ते हुए तत्परतासे भजनमें लगें

हमारे मनमें जो प्रभुको पानेकी अभिलाषा उठती है, वह बड़ी सुन्दर है, पर इसको बड़ी सावधानीसे—जैसे पेड़में धीरे-धीरे जल देकर उसे पाला जाता है, उसी प्रकार इस अभिलाषाको भी पुष्ट करना पड़ेगा। इसकी सबसे पहली सीढ़ी है—भगवान्‌की कृपाका भरोसा करके सब प्रकारके पापोंका सर्वथा त्याग कर देना। पाप करनेसे केवल हमारा ही सर्वनाश होगा; इतना ही नहीं, उस पापमें जो-जो सहायक होगें, उन सबका सर्वनाश होगा। मूर्खतावश लोग इसको समझते नहीं। पिता, भाई, माँ—किसीके भी कहनेसे पाप किया जाय, उनके सहित पाप करनेवालेका सर्वनाश हो ही जायगा। इसलिये शास्त्रमें यह बात आती है कि 'यदि माता-पिता भी पापकी आज्ञा दें तो उसका पालन न करें।' अतः यदि सचमुच प्रभुको पाकर करके कृतार्थ होना चाहते हैं तो सबसे पहले मनको कड़ा करके सब प्रकारके असत्य, झूठ, चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि पापोंका सर्वथा त्याग कर दें। यह पहली सीढ़ी है। इसके बिना ऊपर चढ़ना बड़ा कठिन है। हम निश्चयपूर्वक छोड़ना चाहेंगे तो स्वयं प्रभु हमारी सहायता करेंगे, पूर्ण सहायता करेंगे। हमारा यह निश्चय होना ही चाहिये कि 'प्राण भले ही चले जायँ, पर पाप नहीं करूँगा।' इसी निश्चयके साथ जोरसे भजन शुरू कर देना चाहिये—यह दूसरी सीढ़ी है। निश्चय पूरा नहीं होता इसलिये भूलसे पाप फिर भी हो जा सकते हैं, पर भजन यदि चलता रहा तो अपने-आप आत्म-बल आयेगा और प्रभुकी कृपासे सभी पाप छूट जायँगे। पर मनमें यह निश्चय होना चाहिये कि 'मुझे पाप नहीं ही करना है।'

इस प्रकार पापोंको छोड़कर भजन करनेपर जिस दिन भजनमें मन लगने लगेगा, उसी दिनसे अपने-आप भगवान्‌की एवं महापुरुषोंकी महिमा

समझमें आने लगेगी। उसके पहले सुनी-सुनायी बातको ही हम अपना आधार मानकर चलें। वास्तविक भगवान् क्या हैं और महापुरुष क्या हैं—यह बात अन्तःकरण सर्वथा पवित्र होकर जब निरन्तर सहज प्रेमपूर्वक भजन होने लगता है, तभी समझमें आती है। इसके पहले हमारी जो कल्पना है, वह उनके बाहरके रूपकी है। असली बात न कोई बता सकता है और न सुनकर समझमें आ सकती है।

किसी भी सच्चे संतके विषयमें हमने जो कुछ भी सुना है और जो कुछ भी कल्पना करते हैं, वह उनके बाहरके रूपकी बात है। उनका वास्तविक स्वरूप बिना भजन किये न तो हम समझ सकेंगे और न उनसे पूर्ण लाभ ही उठा सकेंगे। भगवान्‌की कृपा, भक्तकी कृपा एवं भजन—इन तीनों बातोंके सिवा और किसी प्रकारसे भगवान्‌को तथा भक्तको समझना असम्भव है। पर भगवान् और भक्तकी पूर्ण दया है—हम बिल्कुल ठीक मानें। इस दयाका अनुभव केवल भजनके द्वारा हो सकता है; इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है। सच्चे संतके विषयमें किसीसे भी बहुत ऊँची-ऊँची बातें सुन सकते हैं, पर उनको समझना अथवा उनसे लाभ उठाना केवल भजनके द्वारा ही हो सकता है। संतके विषयमें आपको जो कुछ भी कोई कहते हैं, वह सब-का-सब उनके बहुत तुच्छ स्वरूपका वर्णन है, वे इन सबकी अपेक्षा बहुत ऊँचे हैं। फिर स्वयं भगवान् या संत बिना संकोच समझायेंगें। जो बात सुननेको मिले—कोई भी कहें, सुन लें, पर असलमें लाभ उठानेकी इच्छा हो तो पापोंको यथाशक्ति सर्वथा छोड़ते हुए तत्परतासे निरन्तर भजनमें लगें। फिर बिना किसीके बताये, बिना किसीके सुनाये, सब बात हम समझ जायँगे। स्वयं भगवान् गरज करके हमको समझायँगे। सच्चे संतके सम्बन्धकी बातें समझानेकी नहीं हैं। यदि कोई किसीको समझाने चले तो कभी-कभी लाभके बदले हानि हो सकती है। घी बहुत अच्छी चीज है, पर संग्रहणीकी बीमारीमें अवगुण करता है। इसलिये जबतक मनमें पाप हैं, तबतक प्रेमकी ऊँची-ऊँची बातोंको सावधानीसे सुनना चाहिये। संतके सम्बन्धकी बातोंका भी फल उल्टा हो सकता है।

नाम लेनेसे ही भगवान् एवं महात्मा—दोनों प्राणोंसे बढ़कर प्यारे लगने लग जायँगे

निरन्तर भगवान्‌का जप लीजिये। कोई भी आवे, कम-से-कम बोलकर उसका सत्कार कर दीजिये, फिर कंजूसके धनकी तरह एक-एक

क्षण नाममें लगाइये। इसके बिना महात्माओंका सच्चा रूप समझमें आना कठिन है। जितना अधिक भजन कीजियेगा, उतना ही अन्तःकरणमें भगवान् एवं महापुरुषोंका सच्चा रूप चमकेगा। एक ही दवा है—निरन्तर नाम–जप। जहाँतक हो, कानसे नाम सुनिये।

सत्संगका फल है—भजन, भजनका फल है—सत्संग। ये दोनों क्षण–क्षणमें बढ़ते रहने चाहिये। सारी कमी भजनकी है। यों तो भगवान् एवं महापुरुष जब चाहें, उसी क्षण वे आपको अपने समान बना ले सकते हैं, पर यदि आपको बना लें, तब फिर भजन करनेवालेके प्रति अन्याय होगा; जो दिन–रात भगवान्‌का नाम लेकर, उन्हें याद करके आँसू बहाता है, उसका सम्मान कम हो जायगा।

संतकी कृपा पूर्ण है। अन्तःकरण मलिन होनेके कारण ही हमलोग उसे समझ नहीं पाते। नाम लेनेसे जैसे–जैसे अन्तःकरण शुद्ध होगा, वैसे–वैसे भगवान् एवं महात्मा—दोनों प्राणोंसे बढ़कर प्यारे लगने लग जायँगे, फिर संतका संग इतना अधिक प्यारा लगेगा कि वियोगकी सम्भावनासे प्राण सूख जायँगे। अभी अमुक–अमुक स्थान प्यारे लगते हैं, फिर दिन–रात वही स्थान प्यारा होगा, जहाँ महापुरुषोंका चरण टिकता है।

आपमें जितनी शक्ति हो, उतनी–की–उतनी पूरी शक्ति लगाकर निरन्तर भगवान्‌का नाम लेनेकी चेष्टा कीजिये; पूरा तो उनकी कृपासे ही होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—

श्रद्धया हेलया नाम रटन्ति मम जन्तवः।
तेषां नाम सदा पार्थ वर्तते हृदये मम।।

'हे अर्जुन ! चाहे श्रद्धासे या बिना श्रद्धाके ही—उपेक्षामें मेरे नामकी रट लगानेवालेका नाम मेरे हृदयमें सदा वर्तमान रहता है।'

भागवतमें आया है—'जिसके मुँहमें, हे भगवन् ! तुम्हारा नाम है, उसने सब तपस्या कर ली, सब यज्ञ कर लिये, तीर्थ–स्नान कर लिया, सब गुणोंका संयम कर लिया, यहाँतक कि वेदपारायण भी उसने कर लिया।'

दुनियामें भगवान्‌के नामको लेनेसे बड़ा कोई काम नहीं है

यों तो प्रभु निरन्तर आपको याद रखते ही हैं, (वे किसीको भी नहीं

भूलते) पर नाम रटनेसे विशेषरूपसे उनकी कृपा आपको दीखने लग जायगी। कृपा तो अभी भी पूर्ण है, पर वह आपको दीख नहीं रही है। भजन करनेसे ही वह दिखायी देगी।

जीभसे निरन्तर नाम लीजिये, मनसे निरन्तर उन्हें ही याद कीजिये और पापसे मृत्युकी तरह डरिये।

छोटी-मोटी टान (आकर्षण), सत्संग, भजन, दोषकी निवृत्ति, निष्ठा, रूचि, आसक्ति, प्रीतिका अंकुर एवं प्रेम--ये नौ सीढ़ियाँ हैं। इसमें हमलोग तीसरी सीढ़ीपर ही हैं और उसपर भी अपना पाँव ठीक ढंगसे नहीं जमाते। इसीलिये हमलोग चौथी सीढ़ी अर्थात् 'सब दोषोंसे मुक्ति' प्राप्त नहीं कर पाते। अतएव भजन करना है। खूब ठीकसे मन लगाकर श्रवण-कीर्तन, स्मरण-जपका तार निरन्तर चले। फिर आगेका काम तो अपने-आप सब हो जायगा।

खूब भजन कीजिये, यही मृत्युसे बचनेका उपाय है। नहीं तो मृत्यु तो एक दिन आयेगी ही। वह मृत्यु ही अन्तिम मृत्यु हो--उसके बाद फिर मरना ही न पड़े--ऐसा उपाय बुद्धिमानको करना चाहिये। इसमें कोई परिश्रम नहीं है। भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु है; उनसे जो चाहिये, वही वे देंगे। सामने मृत्यु खड़ी हो, ऊपरसे बमके गोले पड़ते हों, पर, सच मानिये, यदि आप उन्हें हृदयसे पुकारें कि 'प्रभो ! मुझे बचा लो' तो फिर बमके गोले व्यर्थ हो जायँगे--उसी क्षण, जब कि कलकत्ता जलता रह सकता है। आपकी देहको एक चिनगारी भी स्पर्श नहीं करेगी। बिल्कुल ऐसा हो सकता है। पर होगा विश्वास करके, उनके चरणोंमें अपनेको सौंपकर, उनका ही एकमात्र भरोसा करके, उनको याद करनेसे।

वे चाहते हैं एक बात--देखते हैं केवल यही कि सच्चा विश्वास है कि नहीं। विश्वास होनेपर वे सब कर देते हैं। इसी प्रकार धन चाहिये तो एक क्षणमें आपको करोड़पति, अरबपति, असंख्यपति बना सकते हैं। पर यहाँ भी वे देखेंगे कि 'इसका विश्वास हमपर है कि नहीं। "न चाहता है कोई बात नहीं; पर यह हमसे चाहता है कि नहीं'--ठीक मानिये केवल उनके चाहनेपर अर्थात् 'प्रभु ! मैं तो आपसे लूँगा' यह ठीक चाहनेपर वे परीक्षा करके देखेंगे। यदि आप डिगते हैं तो नहीं देंगे; पर यदि पास हो जायँगे तो उसी क्षण सुदामाकी तरह धन देकर, असीम ऐश्वर्य देकर

आपको कृतार्थ कर देंगे। इसी प्रकार ज्ञान चाहिये, ज्ञान देंगे; मोक्ष चाहिये तो मोक्ष देंगे और भगवत्प्रेम चाहिये तो भगवत्प्रेम देंगे। मतलब यह है कि किसी भी प्रकारसे एक बार उनका पल्ला पकड़ लीजिये तो फिर सारी कामना मिटाकर सबसे ऊँची चीज—अपना प्रेम ही आपको देंगे। इसलिये किसी भी प्रकारसे हो—सकाम–निष्काम, जीभसे निरन्तर नाम लीजिये, मनसे निरन्तर उन्हें याद कीजिये और पापसे मृत्युकी तरह डरिये, बचनेकी पूरी चेष्टा कीजिये। ये ही तीन काम करने चाहिये।

* *

कलियुगका समय ही कुछ ऐसा है कि भजनकी प्रवृत्ति घटती जा रही है और बिना नियम काम होता नहीं। जो भी कहता है कि 'हमसे भजन होता नहीं' उसे चाहिये कि वह नियमित संख्यामें जप हुए बिना भोजन न करनेका नियम दृढ़तासे पकड़ ले; फिर भजन होने लग जायगा। अर्थात् अपने काम–काजका हिसाब देखकर यह निश्चय कर ले कि हमें इतनी माला फेरनी है। अब किसीका मुलाहिजा न रखकर यह नियम बना लेना चाहिये कि 'प्रातःकाल भोजन करनेके पहले इतनी माला जपकर ही करूँगा, चाहे कुछ हो जाय। फिर रातमें भोजन इतनी माला और जपकर ही भोजन करूँगा तथा सोनेसे पहले फिर इतनी माला जप करके ही सोऊँगा।' अब जहाँ रोटीकी अड़चन लगी—दो–तीन बार भूल हुई और उपवास हुआ कि मन बदमाशी छोड़ देगा। दस मालाएँ सुबहके भोजनके पहले, दस शामके भोजनके पहले और दस सोनेके पहले—इस प्रकार तीस मालाएँ आसानीसे हो सकती हैं। इतना न हो पावे तो आठ–आठका नियम रखकर चौबीस माला प्रतिदिनका नियम ले लें। कुछ नियमकी पाबंदी बिना आरम्भमें भजनमें अड़चन लग ही जाया करती है। कुछ कड़ाईसे नियम बना लें, फिर भजन होने लग जायगा। मान लें प्रतिदिन यदि २० मालाका ही नियम आप बना लें तो बीस तो हो ही जायँगी और बिना नियम कभी ६४ मालाका भी जप लेंगे और कभी दो–चार भी नहीं होंगी।

प्रभुकी कृपापर विश्वास होनेसे तो भजन अपने–आप होने लग जायगा। पर जबतक विश्वास नहीं, तबतक मनके साथ जबर्दस्ती करनी ही पड़ेगी; नहीं तो मनकी मलिनता मिटेगी नहीं और मलिनता मिटे बिना विश्वास भी नहीं होगा। वृत्ति न लगनेपर भी जीभ यदि नाम–उच्चारण करेगी तो भजन हो जायगा।

संतका विश्वासपूर्वक संग करें और उनकी इच्छाके अनुसार अपना जीवन बितायें।

मनुष्यको अपना मन ही धोखा देता है। अनादिकालसे इस धोखेको मनुष्य जानता हुआ भी अनजान बना रहता है। अपनी त्रुटि, अपना दोष वह भगवान्पर तथा संतपर लादना चाहता है। भगवान् एवं संतका द्वार सदा–सर्वदा–सर्वथा सबके लिये उन्मुक्त है। कुछ भी नहीं चाहिये, बस, उस द्वारमें प्रवेशकी इच्छा होनी चाहिये। पर हम भीतरसे तो संसारसे चिपके रहना चाहते हैं, ऊपरसे भगवान्के, संतके द्वारमें प्रवेश करनेकी इच्छा प्रकट करते हैं। बस, यही भूल है और इसी भूलको मन ऐसे सुन्दर ढंगसे सामने रखता है कि मनुष्य भूल ही जाता है। तरह–तरहकी युक्तियोंके फेरमें पड़कर यह उद्गार प्रकट करता है—'क्या करूँ, मेरी परिस्थिति ही ऐसी है कि मैं सत्संगसे वञ्चित हो रहा हूँ।' वह यह कभी नहीं विचार पाता कि 'अरे मन ! तू मुझे व्यर्थ क्यों ठगता है ? तू चाहता तो है नहीं और बातें बनाता है।' हमलोगोंके साथ यही बात है। हमारा मन हमको धोखा दे रहा है। हमारा मन तरह–तरहके कर्तव्य सामने रक्खेगा और संतके संगसे आपको वञ्चित रखनेकी चेष्टा करेगा। इसका इलाज या तो हम कर सकते हैं अथवा भगवान्। भगवान्की अहैतुकी कृपासे जब किसी दिन संसारका मोह भंग होगा, तब दीखेगा कि मनुष्यका एक ही कर्तव्य है—भगवान्से प्रेम करना अथवा संतसे प्रेम करना। बस, इस प्रेममें साधक बनकर संसार रहे तब तो ठीक; नहीं तो अपने हाथसे इसमें आग लगा देना है। इसके पहले बिना पेंदीके लोटेकी तरह कभी इधर, कभी उधर लुढ़कना है।

भगवान्की कृपाका आश्रय लेकर हम संतका विश्वासपूर्वक संग करें और उनकी इच्छाके अनुसार अपना जीवन बितायें। पर यह होगा हमारे किये। हम अपनी इच्छा छोड़कर प्रभु–इच्छाके आगे सिर नवायें। इसीके लिये संतकी शुद्ध सहायताकी आशा रखें। संतको अपनी इच्छाके अनुसार चलानेकी इच्छा सर्वथा भीतरी तहसे मिटाकर उनकी इच्छाके अनुसार चलनेकी चेष्टा करें। देखें, एक लौकिक साधारण माँ भी अपने छोटे बच्चेको उस कामके लिये आज्ञा नहीं देती, जिसे बच्चा कर नहीं सकता। फिर भगवान् या संतके द्वारा तो यह असम्भव है। आप ऐसी कल्पना ही करना ही छोड़ दें कि 'वे मुझे वह काम करनेको कहेंगे, जो मैं कर नहीं सकता।' निश्चय मानिये, वे वही करनेको कहते हैं, कहेंगे, जो आपके शक्तिके

अंदर——आपके द्वारा सम्भव है। यह नहीं करके यदि आप हठ करेंगे कि 'मैं तो यही करूँगा, मुझसे यही काम होगा, दूसरा नहीं होगा, मुझे यही करने दीजिये'——तो अशान्ति मिलनी कठिन है।

*   *

संत हमारे हाथके यन्त्र तो हैं नहीं कि हम जैसे घुमायें वैसे–वैसे वे घूम जायँ। सतं तो श्रीकृष्णके हाथोंके यन्त्र हैं। सर्वथा श्रीकृष्णकी प्रेरणासे ही वे कुछ भी करेंगे ! दुनिया राजी या नाराज हो, इससे उनको मतलब नहीं; इस बातको श्रीकृष्ण समझें। तथा श्रीकृष्णकी इच्छा परम मंगलमयी है; उनके यहाँ भूल भी नहीं, पक्षपात भी नहीं। अतः यदि हम संतसे उत्तर चाहते हैं, तो इसके लिये श्रीकृष्णके प्रति आन्तरिक, सच्ची एवं व्याकुलता भरी प्रार्थना ही अचूक साधन है। वे सच्ची प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। यदि नहीं सुनते तो हमारी प्रार्थनामें निष्कपटभावकी कमी कहीं–न–कहीं अवश्य है। अर्थात् हम जिसके लिये प्रार्थना करते हैं, उसके अन्तरालमें कोई दूसरी बात छिपी हुई है, अथवा हमारी प्रार्थनाकी अपूर्तिमें ही श्रीकृष्णने विशेष मंगल रच रक्खा है।

*   *

संतके पास आनेमें हमारा मन ही हमको बाधा दे रहा है। जबतक मलिन स्वार्थको हम नहीं छोड़ेगे, तबतक शान्त मनसे संतके पास रह भी नहीं सकगें। संत किसीको न निकालते हैं न बुलाते हैं। वे तो जो आता है——वह चाहे कोई हो——उसे अपना हृदयका आसन देते हैं। जो उस आसनको छोड़कर अन्यत्र सुख खोजने जाता है, उसे रोकते भी नहीं। वे हृदयका द्वारा खोले हुए रहते हैं——जो चाहे आ जाय, जो चाहे चला जाय।

दृढ़ विश्वासके साथ भगवान्‌को पुकारिये, नामका जप कीजिये और कभी झूठ न बोलिये।

भगवान्‌का जो सम्बन्ध एक बहुत बड़े संतसे है, वही सम्बन्ध उनका हमसे भी है। यदि हम प्रेमसे, दृढ़ विश्वासके साथ उन्हें पुकारेंगे तो वे लोक एवं परलोक——दोनों जगह ही वे बिल्कुल खुले हाथसे हमारी सहायता कर सकते हैं और एक बार भी यदि हमारी उनसे ठीक–ठीक जान–पहचान हो गयी तो सदाके लिये हमारे सभी दुःख सर्वथा मिट जायँगे। अतः दृढ़ विश्वासके साथ उन्हें पुकारिये। जब समय मिले, तभी मन–ही–मन उन्हें पुकारिये।

(२) अन्तःकरण मलिन होनेके कारण भगवान्‌की पूर्ण कृपा हमपर होनेपर भी हम उस कृपाको अनुभव नहीं कर रहे हैं। अतः एक काम अवश्य करना चाहिये। कामभर बोलनेके बाद जीभसे निरन्तर भगवान्‌का जो नाम प्यारा लगे, उसे उच्चारण करते रहना चाहिये। इसमें पहले नियमकी आवश्यकता होती है। इसलिये हम अपने पास एक माला रक्खें और फिर यह नियम करे लें कि 'सोनेसे पहले–पहले एक लाख नामका जप अवश्य कर लूँगा।' एक लाख नियम लेनेमें यदि कुछ अड़चन प्रतीत हो तो पचास हजारका नियम ले लें।

(३) खूब सावधानीसे यह चेष्टा करें कि मजाकमें भी कभी झूठ बात नहीं बोली जाय।

संतके पास उनकी इच्छाके अनुसार चलनेकी इच्छा एवं चेष्टा लेकर रहें।

सच्चे मनसे पवित्र एवं श्रद्धापूर्ण चेष्टा करनी चाहिये कि संतका संग अधिक–से–अधिक मिलता रहे। हाँ, उनके पास हम उनके होकर रहें, अपनी इच्छाके अनुसार उनको चलानेकी हास्यापद चेष्टा छोड़कर उनकी इच्छाके अनुसार स्वयं चलनेकी इच्छा एवं चेष्टा लेकर रहें। हम अपनी इच्छाके अनुसार चलनेके लिये संतको तंग करने लगते हैं, तभी श्रीकृष्णकी माया हमपर फिरती है और हमारे लिये ऐसा संयोग बन जाता है कि बाध्य होकर हमको संतके पाससे हटना पड़ता है। यदि वास्तवमें हम अपने जीवनको भगवन्मुखी बनानेकी इच्छा लेकर, पर्याप्तमात्रामें विनयका भाव लेकर, सांसारिक स्वार्थको जलाञ्जलि देकर संतके पास रहनेकी इच्छा करें, रहने लगें तो फिर हमारा प्रारब्ध बाधा नहीं दे सकता; श्रीकृष्णकी कृपा हमारी इस इच्छाको निमित्त बनाकर हमारे लिये तुरंत फलोन्मुख नवीन प्रारब्ध बना देगी तथा हमको संतके पवित्र संगसे वञ्चित नहीं होना पड़ेगा।

इसपर हम एक दलील दे सकते हैं कि 'क्या संतकी इच्छाके विपरीत चलनेकी हमारी शक्ति है ? हमतो सर्वथा उनकी रुचिके अनुसार ही चलते हैं।' पर यह दलील मनका भ्रम है। अतएव इसे दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

किसी भी निमित्तसे पाप न हो——यह सावधानी रखते हुए निरन्तर नाम–जप कीजिये।

सार बात इतनी है कि हम अपनी जानमें बेईमानी नहीं करें। अर्थात्

अपनी पूरी शक्ति लगाकर यह चेष्टा करें कि मनमें निरन्तर भगवान्‌का स्मरण एवं वाणीसे आवश्यकताभर बोलनेके बाद निरन्तर नाम–जप हो। यदि अपनी ओरसे हम चेष्टामें त्रुटि नहीं करेंगे तो फिर भगवान्‌की कृपाके दर्शन हो जानेमें विलम्ब नहीं होगा और उनकी कृपाके एक कणका अनुभव होते ही सारी उधेड़–बुन मिट जायगी, सारा कष्ट मिट जायगा तथा जीवन अपने–आप प्रभुके चरणोंमें समर्पित हो जायगा।

पापोंका फल नरक है। अतः किसी भी निमित्तसे पाप नहीं हों। वहाँ यह बहाना नहीं चलता कि 'मैंने अपने लिये पाप नहीं किया।' पाप करनेवालेको ही पापका दण्ड भोगना पड़ता है। अतः किसीके मुलाहिजेसे व्यापार आदिमें झूठ–कपट आदि नहीं करना चाहिये। सर्वथा झूठ–कपटसे हम बचें। इसके लिये यदि स्वजनोंका त्याग करना पड़े तो वह भी करनेके लिये तैयार रहना चाहिये। नहीं तो स्वजनके साथ ही हमें डूबना पड़ेगा।

अपनी सारी शक्ति लगाकर मनको भगवान्‌से तथा संत पुरुषोंसे जोड़ दें

अपनी सारी शक्ति लगाकर मनको भगवान्‌से तथा संत पुरुषोंसे जोड़ दें। उदाहरणके लिये खूब तेज आग जल रही है। उसमें हम कोई भी चीज डाल दें, वह चीज भले ही गंदी–से–गंदी क्यों न हो—यहाँतक कि वह विष्ठा ही क्यों न हो, आगमें पड़ते ही आग उसे अपना गुण दे ही देगी। आगमें पड़नी चाहिये, फिर आगका स्वाभाविक गुण ही है—अपने समान कर लेना। आगमें यह गुण कहाँसे आया ? श्रुतियाँ कहती हैं—'भगवान्‌से ही यह गुण आगमें आया।' फिर अनन्त–शक्ति–सामर्थ्यसम्पन्न भगवान्‌से मन जुड़ते ही भगवान्‌का गुण हममें आ जाय, इसमें तनिक भी आश्चर्यकी गुँजाइश नहीं है। यही बात संत–पुरुषोंकी भी है; क्योंकि शास्त्र यह बात स्पष्टरूपसे कहते हैं कि 'संत और भगवान्‌में बिल्कुल भेद नहीं है।'

'संतमें या भगवान्‌में प्रेम कैसे हो ?'—इस प्रश्नके उत्तरमें यही समझमें आता है कि संत एवं भगवान् दोनों ही प्रेमके समुद्र हैं; असीम प्रेम वहाँ निरन्तर लहरा रहा है। कोई भी—चाहे उसका मन कितना भी गंदा क्यों न हो, उसी गंदे–से–गंदे मनको लेकर यदि भगवान्‌से या संतसे उसे जोड़ दें तो निश्चित समझिये, गंदगी तो आप ही मिट जायगी और स्वयं मन ही प्रेमरूप हो जायगा, प्रेम–ही–प्रेम रह जायगा।

संतकी बात छोड़ दें, हम जिस किसी चीजसे मनको जोड़ दें, उसी चीजका गुण मनमें आ जायगा। अतएव हमारी दृष्टिमें जो सबसे ऊँचा पुरुष है, उसके साथ मनको जोड़ दें, उसके गुण हममें आ जायँगे।

अहंकार है तो उसे रहने दें, पर भगवान् या संतसे मन जुड़ना चाहिये। फिर अंहकारको जलते देर नहीं लगती। पर वास्तवमें मन जुड़नेकी चाह नहीं है। 'किस प्रकार मन जुड़े'——यह चाह भी हो तो काम बन जाय।

श्रद्धा करनेकी इच्छा तो हमको करनी पड़ेगी और उस श्रद्धाको अचल करनेका काम भगवान् करेंगे।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है——

यो यो यां यां तुनं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।।

(७। २१)

अर्थात् 'जो मनुष्य जहाँ, जिस देवतामें श्रद्धा करना चाहता है, मैं उसकी श्रद्धाको उसीमें अचल कर देता हूँ।' भगवान्‌के कथनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रद्धा करनेकी इच्छा तो मनुष्यको करनी पड़ेगी और उसकी उस श्रद्धाको अचल करनेका काम भगवान् करेंगे। जब श्रद्धा अचल नहीं होती, तब यह निश्चयपूर्वक समझ लेना चाहिये कि श्रद्धाकी इच्छा ही नहीं हुई। यदि इच्छा हुई तो भगवान्‌की बात क्या कभी झूठ हो सकती थी ?

भगवान् बिल्कुल भीतरकी बात जानते हैं, उनके सामने कोई पोल चल ही नहीं सकती। हमारी इच्छाके तहमें——बिल्कुल भीतरी तहमें क्या वासना है, किस बातसे प्ररित होकर हम कौन-सी इच्छा करते हैं, इसका जितना पता भगवान्‌को है, उतना हमको भी नहीं है। हमने इच्छा की कि हमारी किसी संत पुरुषमें श्रद्धा हो जाय तो निश्चय समझिये——यदि यह सच्ची इच्छा है तो——अवश्य-अवश्य हमारी श्रद्धा उस संत पुरुषमें भगवान् कर ही देंगे। ठगपर श्रद्धा करना हम चाहेंगे ही क्यों, यदि भूलसे हम किसी ठगको महात्मा मान लें तो फिर यदि हमारे मनकी सच्ची इच्छा महात्मापर श्रद्धा करनेकी है तो भगवान् निश्चय हमको बतला देंगे। इतना ही नहीं, हमको सच्चे संतसे मिलाकर हमारी श्रद्धा भी उनमें करा देंगे।

दो ही उपाय

दो ही उपाय हैं——(१)–जिस प्रकार मशीन चलती है, उसी तरह यदि जीभसे जागनेसे लेकर सोनेतक नामका निरन्तर उच्चारण हो तो इतनी शीघ्रतासे भगवान्‌के अस्तित्वमें विश्वास होगा कि स्वयं चकित हो जाइयेगा। मन लगे तब तो और भी जल्दी होगा, नहीं लगनेपर भी सब उपायोंकी अपेक्षा इससे अत्यन्त शीघ्र यह बात हो जायगी।

(२)–कोई महापुरुष सच्चा संत हो और उससे हृदयसे प्रार्थना की जाय अथवा भगवान्‌के सामने हृदयसे रोवें——'नाथ! मेरे मनमें आपके अस्तित्वपर अखण्ड–अटूट विश्वास हो जाय', तो एक क्षणमें मनकी वृत्ति ऐसी आस्तिक बन जायगी कि हमारे पास रहनेवाले भी आस्तिक बनने लग जायँ।

असलमें उत्कट इच्छासे प्रार्थना ही नहीं होती। नहीं तो यह बिल्कुल ठीक है कि और प्रार्थनाकी सुनायीमें देर भी हो, किंतु यह प्रार्थना तो भगवान् या संत अवश्य–अवश्य सुन लेते हैं। अतएव हम प्रार्थना करते चलें।

'भगवान् हैं, सर्वत्र हैं'——इस बातपर विश्वास करें।

'भगवान् हैं, सर्वत्र हैं'——इस बातपर केवल विश्वास हो जाय। फिर यह अमुक व्यक्ति हैं', यह नहीं दिखायी देगा। दिखायी देगा——'यह साक्षात् भगवान् हैं।' कुछ करना थोड़े ही है, केवल विश्वास हो जाय कि यह ठीक बात है। फिर कलममें, कागजमें, संसारके अणु–अणुमें भगवान् दिखायी देंगे——*'यो मां पश्यति सर्वत्र'*। पर 'भगवान् हैं——इस बातको हृदयसे माननेवाले बहुत थोड़े हैं। वास्तवमें कमी इसी बातकी तो है। हम किसी स्वजनके पास बैठे हैं। अब हमारे मनमें यह शंका नहीं है कि वह स्वजन हमें नहीं देख रहा है। ठीक इसी तरह भगवान्‌के अस्तित्वमें श्रद्धा हो जानेपर निरन्तर दिखायी देगा——भगवान् मझे देख रहे हैं। फिर पाप होना असम्भव है।

भगवान् भक्तवाञ्छा–कल्पतरु हैं

एक बात गिरह बाँधकर रखिये——'भगवान् भक्तवाञ्छा कल्पतरु हैं' अर्थात् उनसे कोई भी कुछ भी चाहे, वे वही चीज उसे उसी क्षण देते हैं और आप यदि कोई ऐसी चीज माँग बैठें कि उसके मिलनेसे आपकी हानि होगी तो दो बातोंमेंसे एक बात करते हैं——या तो उसके मनसे उस चीजकी इच्छा मिटाकर उसके मनको ही शान्त बना देते हैं अथवा वह चीज देकर साथ ही

उससे होनेवाली हानिसे बचनेका उपाय भी कर देते हैं। अर्थात् जिस चीजसे उसकी हानि होगी, उसके लिये यदि वह जिद कर बैठा कि 'हमें तो वह दे ही दें'—बिल्कुल बालककी तरह अड़ गया—तो फिर भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं। वे चीज भी अवश्य दे देते हैं और उससे जो हानि हो सकती है, उससे बचनेका उपाय भी कर देते हैं। यही बात सब चीजोंके विषयमें समझनी चाहिये। भगवान्के लिये लाख, करोड़, अरब रूपया देना अथवा मोक्ष देना—दोनों समान हैं; न तो उनके लिये मोक्षकी कोई कीमत है न ध्यानकी। इसी प्रकार श्रद्धा चाहते ही वे श्रद्धा निश्चय करा ही देंगे। पर ये सब बातें उसीके लिये होंगी, जिसका सचमुच भगवान्पर एकनिष्ठ भरोसा है।

जिस मनकी बात आप कह रहे हैं, वहीं, उसी मनमें भगवान् हैं और वे जानते हैं कि यह क्या चाहता है। वे बिल्कुल—रत्ती-रत्ती जानते हैं कि आपके मनमें क्या है। आप भी या संसारमें कोई भी नहीं जानता कि असलमें आपके मनमें क्या है; पर वे ठीक-ठीक जानते हैं। और यदि आपकी चाह सच्ची है और किसी ऐसी चीजकी नहीं है जिससे हानि होनेकी सम्भावना हो तो उस चाहकी पूर्ति वे अभी, इसी क्षण करे दें या चाह ही मिटाकर शान्ति दे दें।

आप कह सकते हैं कि 'जब वे रत्ती-रत्ती बात सुन रहे हैं, जान रहे हैं, तब फिर वे क्यों नहीं करते ?' इसका उत्तर यही है कि 'वे ही जानें'। सोचनेसे दो ही बातें समझमें आती हैं—(१) सच्ची चाह नहीं है, (२) या ऐसी चाह है, जिसकी पूर्तिमें आपको हानि हो। तीसरी कोई बात समझमें नहीं आती। सच्ची चाहकी यही पहचान है कि बस, केवल वही चाह रहेगी, और सब स्वाहा।

संत भगवान्के प्रतिनिधि हैं

देवताओंके विषयमें तो आप यह समझें कि जैसे मजिस्ट्रेट है, कलक्टर है, कमिश्नर है, वैसे ही वे हैं। मजिस्ट्रेट आदिका अधिकार बँधा हुआ है; इतना-इतना काम वे कर सकते हैं, उससे अधिक नहीं। उस अधिकारके अंदर किसीके लिये वे जो चाहें, कर सकते हैं; पर अधिकारके बाहर मजाल नहीं है कि वे कलक्टर, कमिश्नर किसीको कुछ दे सकें या किसीका कुछ बिगाड़ कर सकें। वैसे ही देवताओंकी शक्ति सीमित, बँधी हुई है अर्थात् उनके अंदर यह शक्ति भगवान्की ओरसे दी हुई है कि 'तुमलोग इतना-इतना काम

कर सकते हो।' इन्द्र, अग्नि, वरुण—सब देवता हैं। मान लीजिये, इनका यज्ञ कोई करता है; यदि यज्ञ ठीक-ठीक विधि-विधानसे पूरा हुआ तो इनकी जितनी शक्ति है, उसके अनुसार वे उस यज्ञका पूरा-पूरा फल दे देंगे। पर सभी चीज वे नहीं दे सकते। संत-महापुरुष तो भगवान्‌के प्रतिनिधि हैं। बादशाहके प्रतिनिधिको यह पूरा-पूरा अधिकार रहता है कि वह राज्यमें जो चाहे, वही कर सकता है। बादशाहके तरह ही उसकी शक्ति होती है तथा उसकी आज्ञाका पालन राज्यके समस्त बड़े-से-बड़े कर्मचारियोंको करना पड़ता है; नहीं करेंगे तो वे हटा दिये जायँगे। संत भगवान्‌का प्रतिनिधि होता है, वह चाहे जो कर सकता है। उसका प्रत्येक वचन भगवान्‌का वचन है, उसकी कही हुई प्रत्येक आज्ञा भगवान्‌की आज्ञा है।

संतकी पहचान असम्भव है; पर दो कसौटियाँ हैं, जिनपर कसकर चलनेसे पछताना नहीं पड़ेगा— १-जिस पुरुषके संगसे आपमें भगवान्‌के प्रति बढ़नेकी रूचि उत्पन्न हो तथा २-जिसके संगसे आपमें गीताके १६वें अध्यायमें कही हुई दैवीसम्पदाके छब्बीस गुण आयें, वह आपके लिये 'संत' है।

साधककी इच्छापर ही व्रजवासकी अखण्डता निर्भर है।

श्रीराधा-गोविन्दके चरण-कमलोंको न भूलें, यही सावधान रहनेकी बात है। श्रीराधारानीने अत्यन्त दया करके जिन्हें वृन्दावनवास दे दिया है, उनके लिये यह निश्चित है कि जो खुशीसे वृन्दावन छोड़कर नहीं जाना चाहता, उसे वे अपने महलसे कभी बाहर निकालती भी नहीं। वे उसे ही बाहर जाने देती हैं, जो स्वयं जाना चाहता है। अतः जबतक कोई जाना नहीं चाहता, तबतक श्रीराधारानी उसे नहीं निकालेंगी—यह परम सत्य है। हाँ, कहीं वह अन्य स्थानका आनन्द लेना चाहने लग जाय तो श्रीराधारानी ऐसी सरल स्वभावकी हैं कि वे किसीकी भी इच्छामें बाधा नहीं देतीं। जहाँ उन्होंने देखा कि वह अन्य स्थान देखना चाहता है, बस, तुरंत वे भी श्रीकृष्णसे कह देंगी—'प्यारे! इसे वहाँ पहुँचा दो।' साधककी इच्छापर ही व्रजवासकी अखण्डता निर्भर है। यदि साधक वहाँसे नहीं जाना चाहता, तो निश्चित है कि श्रीराधारानी उसे कभी नहीं निकालेंगी।

एक कविने गाया है—

काहे कौं रे नाना मत सुनै तूँ पुरानन के,
तैं ही कहा तेरी मूढ़, गूढ़ मति पंग की।

बेद के बिबादन कौ पावैगो न पार कहूँ
छाँड़ि देहु आसा सब दान, न्हान गंग की।।
और सिधि सोधै अब नागर न सिद्ध कछू
मानि लेहु मेरी कही बार्ता सुढंग की।
जाहु ब्रज, भोरे ! कोरे मन कौ रँगाई लै रे,
बृन्दाबन–रैन रची गौर–स्याम रंग की।।

——जिन्होंने ब्रजवास अपना लिया है, उन्हें चाहिये कि ब्रजवासका आनन्द लेते हुए जीवनके शेष दिन बिता दें तथा श्रीराधारानीकी कृपाके भरोसे निश्चिन्त रहें। मनमें निश्चय कर लें कि अन्त समय तो श्रीभानुकिशोरी श्रीकृष्णचन्द्रके साथ मुझे लेने अवश्य पधारेंगी। भला, कोई उनके निवासस्थानपर आकर इतने दिनोंतक बसा रहे और वे एक बार भी दर्शन देने न पधारें——यह भी कभी हो सकता है ? 'वे तो आयेंगी ही'——यह दृढ़ विश्वास करके परम उल्लाससे ब्रजवासका सुख लूटें। सर्वथा सत्य सिद्धान्त है——यदि हमलोग श्रीभानुकिशोरीकी कृपाके बलपर ऐसी आशा लगाये रहेंगे तो कभी निराशा नहीं होगी। वास्तवमें श्रीभानुकिशोरी कितनी कोमलहृदया हैं, कैसी करुणामयी हैं, इसकी कल्पना ही अभी हमलोगोंको नहीं हुई। यदि कल्पना हो गयी होती तो हमलोग आनन्दसे पागल–जैसे हो गये होते। जो हो, खूब मौजसे व्रजमें बस रहना चाहिये; भले ही घरपर वज्रपात होता रहे, व्रज छोड़कर टस–से–मस न हुआ जाय। बस, निश्चिन्त चित्तसे श्रीराधारानीके धाममें निवास कीजिये। सदा याद रक्खें——भगवान् और भगवान्के धाममें किंचित् भी अन्तर नहीं है। श्रीधामके सम्पर्कमें आना सर्वथा श्रीकृष्णके सम्पर्कमें आना है।

उत्साह कभी मत तोड़िये और लेते जाइये श्रीकृष्णका नाम

जीवनको सर्वथा प्रभुके चरणोंमें समर्पित करके निश्चिन्त हो जाइये। सब चिन्ता छोड़कर प्रियतम श्रीकृष्णकी चिन्ता कीजिये। कुछ भी बदलना नहीं है। वे जहाँ, जिस रूपमें रखना चाहें, वहीं, उसी रूपमें रहिये; केवल मनकी गति बदल दीजिये। इस मनने न जाने कितनी जगह ममत्व कर रक्खा है। इस ममत्वरूपी बिखरे हुए कच्चे धागेको बटोर लीजिये और उनकी मोटी रस्सी बँट लीजिये तथा उसी मोटी रस्सीसे अपने मनको प्रभुके चरणोंमें

बाँध दीजिये। इतना ही करना है। भगवान् श्रीराम यही कहते हैं—

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।
सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।

* *

अस सज्जन मम उर बस कैसें।
लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें।।

—मनमें बार-बार सोचिये, दृढ़ धारणा कीजिये—'प्रभुकी हमपर बड़ी कृपा है'। यह बात केवल किसीके कहनेसे मान लें, यह नहीं; यह तो वस्तुस्थिति है। प्रभुने अपनी कृपाका द्वार खोल रक्खा है। उन्हींकी कृपाका आश्रय करके उनकी कृपाको अधिक-से-अधिक मात्रामें ग्रहण कीजिये और उनपर न्योछावर हो जाइये।

सच मानिये, श्रीकृष्णसे अधिक प्यार करनेवाला, निरन्तर आपकी सँभाल करनेवाला आपको कोई नहीं मिलेगा। परम श्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ने सत्संगमें एक बार एक कथा सुनायी थी—"एक योगभ्रष्ट महात्मा कहीं पैदा हुए थे। एक दिन वे धूलिपर खेल रहे थे। राजाकी सवारी निकली। राजाने पूछा—'धूलिसे क्यों खेलते हो ?' महात्माने कहा—'धूलिसे शरीर पैदा हुआ, धूलिमें मिल जायगा; इसलिये धूलिसे खेलते हैं।' राजाने कहा—'मेरे साथ चलोगे ?' महात्माने कहा—'चल सकता हूँ, पर मेरी चार शर्तें हैं।' राजाने शर्तें पूछीं। महात्माने कहा—'पहली शर्त है—हम खूब सोयें, पर तुम कभी मत सोओ और मेरी सँभाल करो। दूसरी शर्त है—तुम खुद मत खाओ और हमें खूब खिलाओ। तीसरी शर्त है—तुम कोई भी कपड़ा मत पहनो और मुझे पहननेके लिये खूब कपड़ा दो एवं चौथी शर्त है—तुम बराबर मुझे साथ रक्खो।' राजाने कहा—'ये भी कहीं माननेकी शर्तें हैं। आपके सोनेपर सो सकता हूँ; जैसा खाता हूँ, वैसा खिला सकता हूँ; जैसे कपड़े पहनता हूँ, वैसे पहननेको दे सकता हूँ और जब कहीं जाऊँ तो साथ ले चल सकता हूँ। इतनी बातें हो सकती हैं।' महात्माने कहा—'तब तुम्हारे-जैसे दीनके पास जाकर क्या करूँगा। मेरा मालिक ऐसा है कि जो कभी स्वयं तो सोता नहीं, मैं खूब सोता हूँ और वह बराबर जागते रहकर मेरी सँभाल करता है। स्वयं कुछ भी खाता नहीं और

मुझे खिलाता है। स्वयं कपड़े नहीं पहनता और मुझे बढ़िया–बढ़िया कपड़े पहननेको देता है और मेरे साथ ही निरन्तर रहता है, एक क्षणके लिये भी मुझे छोड़कर कहीं भी नहीं जाता।"

ठीक ऐसे ही प्रियतम श्रीकृष्णको छोड़कर इस संसारमें भोगोंके पीछे क्यों भटक रहे हैं ? भोग छोड़ दीजिये, यह नहीं कहता पर भोग भोगिये श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये। देहकी सँभाल कीजिये––पर यह समझकर, भीतरी मनसे यह दृढ़रूपसे मानकर कि देह उनकी ही सम्पत्ति है। उनके कृपाका आश्रय करके बढ़नेकी चेष्टा कीजियेगा तो कुछ भी असम्भव नहीं है। मनमें दोष भरे हैं, माना; पर यदि आप उत्साह तोड़ेंगे तो ये और भी तंग करेंगे। उनके चरणोंका आश्रय करके दोषोंको निकाल डालिये, एक क्षणके लिये भी निराश मत होइये। हतोत्साह होना क्षीण हुए दोषोंको बल देना है। दोषोंको निकालनेकी चेष्टा करनेपर ये मनमें छिप जाते हैं और जिस क्षण मनुष्य उत्साहभंग करता है, उस समय दोष जोर मारने लगते हैं। इसलिये उत्साह कभी मत तोड़िये और लेते जाइये श्रीकृष्णका नाम !

भगवान्‌के नामका आश्रय दृढ़तासे पकड़ लीजिये

..................................भगवान्‌के नामका आश्रय दृढतासे पकड़ लीजिये। अन्य साधनोंका विरोध नहीं है। सब करें, अच्छी तरह करें; पर आश्रय 'नाम'का पकड़ें। जैसे छोटा बच्चा माँका आँञ्चल पकड़े रहता है, इसके बाद––'हमें यह चाहिये, वह चाहिये'––सब चीजें खोजता है;––बाप–भाई–बहिन सबको चाहता है, परंतु माँको आञ्चल नहीं छोड़ता। वह ऐसा इसलिये करता है कि उसे इस बातका भरोसा है कि माँ उसकी अहैतुक स्नेहसे सदैव रक्षा करेगी। वैसे ही नामका आश्रय पकड़ लें और फिर इसके बाद सब करें। ऐसा करनेपर 'नाम' हमें तार देगा। सभी (साधन) अच्छे हैं, सदाचार अच्छा है; पर अन्तिम समय तक सदाचार सिद्ध नहीं हुआ तो ? सब चाहते हैं, मन वशमें हो, बहुत ठीक; परंतु अन्ततक मन वशमें नहीं हुआ तो ? दैवी–सम्पदाके गुण होने आवश्यक हैं, बहुत ठीक; पर यदि मरते समयतक वे नहीं आ सके तो ? ध्यान होना उत्तम बात है, पर यदि अन्ततक नहीं हुआ तो ? ऐसे ही सब साधनोंकी बात है। परंतु यदि 'नाम'का आश्रय पकड़े रहेंगे तो यह 'नाम' हमें तार देगा। और सब साध नोंमें भावकी जरूरत है। भाव होगा तो काम होगा। पर 'नाम' बिना भावके

ही हमारा काम कर देगा।

हमलोग कलयुगी प्राणी हैं। हमारी बच्चेकी–सी हालत है। दिन–रात मैलेमें लिपटे हुए हैं। यदि बच्चा अपना मैला धोता रहे तो वह धोते–धोते मर जायगा। उसक मैला तो माँ धोयेगी। इसी तरह 'नाम' हमारा निस्तार करेगा और सब साधनोंमे तो हमें उठना है, पर 'नाम' तो स्वयं अपनी शक्तिसे उठानेवाला हैं। यह कितना अन्तर है ! दूसरे साधनोंमें तो हमें शक्ति लगानी पड़ेगी, पर 'नाम' स्वयं अपनी शक्तिसे काम कर देगा। मनसे न हो, भावसे न हो––कोई बात नहीं; केवल जीभसे 'नाम' लें; सकाम, निष्काम––कैसे भी करें, आदत डाल लें। जँभाई लेते, चलते–फिरते, छींकते आदि हर क्रियामें––जिस प्रकार हो, 'जीभसे' नाम लेते रहना चाहिये। माता देवहूतिने कहा है––

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते।।

(श्रीमद्भा० ३। ३३। ७)

यहाँपर 'श्वपच'का अर्थ मामूली चण्डाल नहीं––'कुत्तेका मांस खानेवाला चण्डाल' है। उसकी जीभपर ही नाम रहनेकी बात है, मनसे लेनेकी नहीं; इस प्रकार जीभसे 'नाम' लेनेवाला भी श्रेष्ठ माना गया है। तुलसीदासजी महाराज कहते हैं––

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मेरे तो माय–बाप दोउ आखर.......।।

शास्त्राध्ययन और संत–महात्माओंके सत्संगसे यही निष्कर्ष समझमें आता है कि एक ही बात है और वह है––'नामका आश्रय'। ऋषि–मुनि––सभी एक मतसे निश्चय करके कह गये हैं कि इस कलियुगमें और कोई सहारा नहीं है। बड़े–बड़े साधनोंकी बात भले ही कर लें। सचमुच जो 'नाम'का आश्रय छोड़कर दूसरे साधनोंमें लगते हैं, वे प्रायः दोनों तरफसे जाते हैं। 'नाम' तो छोड़ दिया और दूसरा साधन सधा नहीं।

*   *

नामजपके नियमके सम्बन्धमें एकमात्र हमारे हृदयकी उत्कण्ठा ही मुख्य वस्तु है। लगन रहनेपर भगवान् उसे अवश्य निभायेंगे। यदि जपकी संख्या पूरी न हो पाये तो इसके लिये मनमें सचमुच दुःखका अनुभव होना

और भविष्यमें प्रभुसे प्रार्थना करते हुए 'अब फिर कभी भूल नहीं होगी।' ऐसा संकल्प करना यह सबसे उत्तम प्रायश्चित है।

* *

चिन्ता करना छोड़ दें। मन नहीं लगता, यह नहीं होता, वह नहीं होता––यों कहना 'नाम'पर अविश्वास करना है। 'नाम' होता है न ? बस, सब ठीक है। दिनभरमें एक बार भी तो 'नाम' निकल जाता ही है। फिर विश्वास कर लें, हमारा उद्धार यही 'नाम' कर देगा।

महात्माका संग करनेवालेके मनमें न कोई शंका होती है न कोई प्रश्न उठता है

लोग प्रश्न पूछते हैं––'महापुरुषोंके पास जानेपर प्रश्न याद नहीं आते और उनसे वियोग होते ही वे प्रश्न फिर उठ खड़े होते हैं, क्या करना चाहिये ?' इसका उत्तर यही है कि महापुरुषोंकी यही महिमा है। प्रश्न, उधेड़–बुन—सब–के–सब अन्धकारमें ही होते हैं। महापुरुषोंके सामने जानेपर अन्धकार मिट जाता है, फिर प्रकाश–ही–प्रकाश बच जाता है। निरन्तर सूर्यके पास रहनेवालोंको अन्धकारका दर्शन ही नहीं होता, उसी प्रकार निरन्तर महात्माका संग करनेवालेके मनमें न कोई शंका होती, न कोई प्रश्न उठता है। वहाँ केवल प्रेमकी धारा ही नित्य–निरन्तर बहती रहती है। श्रीनारायणस्वामीजी वृन्दावनके एक बड़े ऊँचे महात्मा हो गये हैं। लोग देखते कि वे प्रतिदिन कुसुम–सरोवरसे दौड़ते हुए एक–दो मील जाते, फिर वहाँ कुछ ही क्षण ठहरकर पीछेकी ओर दौड़ते हुए कुसुम–सरोवर पहुँच जाते। प्रतिदिन उन्हें ऐसा करते देखकर लोगोंने पूछा––'बाबा ! ऐसा क्यों करते हैं ?' स्वामीजीने बहुत आग्रह करनेपर बताया––'क्या बताऊँ ? मैं देखता हूँ कि श्रीकृष्ण सामने खड़े हैं; मुझसे रहा नहीं जाता, मैं पकड़नेके लिये दौड़ पड़ता हूँ; वे भागते हैं, मैं भी भागता हूँ। जब दौड़ते–दौड़ते थक जाता हूँ तो देखता हूँ कि अब वे मेरे पीछेकी ओर खड़े हैं। मैं भी पीछे मुड़ जाता हूँ। मैं पुनः पकड़ना चाहता हूँ। वे भागने लगते हैं, मैं भी पकड़नेके लिये दौड़ता हूँ। इस प्रकार दौड़ते–दौड़ते कुसुम–सरोवर वापस आ जाता हूँ।'

लोगोंने पूछा––'बाबा ! श्रीकृष्णसे कुछ पूछते हो कि नहीं ?'

स्वामीजीने कहा––"भैया ! क्या बताऊँ ? पहले तो बहुत–सी

बातें याद रहती हैं। सोचता हूँ, 'यह बात पूछूँगा' पर जिस समय वे सामने आते हैं, उस समय सब कुछ भूल जाता हूँ। केवल उनका अनुपम मुखड़ा ही देखता रह जाता हूँ।" यही बात होती है महात्माओंके सम्बन्धमें भी। जिसके सामने उनका जितना अधिक पर्दा उठा रहता है, वह मनुष्य उतना ही अधिक उनके प्रेमको ग्रहण करता है। प्रेम ग्रहण होने लगनेपर शंका--प्रश्न नहीं होते। जो प्रश्न होते भी हैं, वे सर्वथा अलौकिक प्रेमके अंग ही होते हैं, प्रेममय होते हैं, प्रेमके प्रवाहको और भी प्रखर बनानेवाले होते हैं।

आपकी दृष्टिमें संसारमें जो सबसे ऊँचा पुरुष हो, उसके संरक्षणमें अपना जीवन बितानेकी चेष्टा करें

'भगवान्‌की दयाको कैसे अनुभव करें'--इस प्रकारकी लालसा होनी बड़ी उत्तम बात है, पर सच्ची बात यह है कि इस लालसाको और भी पुष्ट करना पड़ेगा। एक चीज तो हमलोगोंमें बहुत कम पायी जाती है, वह है--'श्रद्धा। शास्त्रों एवं संतोकी बातपर जबतक हम विश्वास नहीं करेंगे, उनकी कही हुई बातोंका पालन नहीं होगा, तबतक भगवान्‌की कृपाका अनुभव होना कठिन-सा है। इसलिये आपकी दृष्टिमें संसारमें जो सबसे ऊँचा पुरुष हो, उसके संरक्षणमें अपना जीवन बितानेकी चेष्टा करें। ऊँचा पुरुष कौन है ?--इस बातके लिये भी आपको पहले शास्त्रपर श्रद्धा करनी पड़ेगी और ऊँचे पुरुषके लक्षण जो शास्त्रमें आये हैं, उनके आधारपर ऐसे पुरुषकी खोज करनी पड़ेगी। ऊँचे पुरुषोंकी जाँच करनेमें भी आपकी भूल हो सकती है, पर यदि आप शुद्ध नीयतसे भगवान्‌का आश्रय पकड़कर बढ़ेंगे तो प्रभु सँभाल लेंगे। वे सबके पथ-प्रदर्शक हैं, सर्वज्ञ हैं; वे सच्ची लालसा होनेपर सब प्रकारका संयोग दया करके जुटा देते हैं। अतः आप सबसे पहले यही चेष्टा करें। गीताके १६वें अध्यायमें स्वयं भगवान्‌ने २६ दैवी गुणोंका वर्णन किया है। वे गुण जिस व्यक्तिमें अधिक-से-अधिक घटते हुए दिखायी दे, उसके हाथमें आप अपना जीवन दे दें। यह बात करनेकी है; सचमुच जीवनकी इसीमें सार्थकता है। भोग भोगते हुए ही यदि मनुष्य-जीवन भी समाप्त हुआ तो फिर हमारे एवं कुत्तेमें क्या अन्तर है ? पशु भी भोग भोगते हैं, हम भी भोग भोगते हैं। शास्त्र तो कहते ही हैं, अब

वैज्ञानिकोंने भी यह सिद्ध किया है कि भोग भोगनेमें पशुओंको भी उतना आनन्द मिलता है, जितना मनुष्यको। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको शीघ्र–से–शीघ्र अपना मनुष्य–जीवन सफल बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यदि सोचते–सोचते ही समय बीत गया तो फिर सिवा पछतानेके और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा,––ऐसा ऊँचे–ऊँचे संतोंका अनुभव है। वे संत कभी झूठ नहीं बोले, उनका कोई भी स्वार्थ नहीं था। वे ऐसा कहते हैं तो हमें मान लेना चाहिये कि वस्तुतः शीघ्र–से–शीघ्र मनुष्य–जीवनके असली लक्ष्यको प्राप्त करें। इसीमें हमारी सफलता है। बस, गम्भीरतासे विचार करें एवं जीवनको प्रभुके हाथमें समर्पण कर देनेकी शुद्ध लालसा लेकर आगे बढ़ें।

भगवान्‌से प्रार्थना करें––'नाथ ! संतोंके प्रति निःस्वार्थ प्रेम उत्पन्न कर दो।'

हाथ जोड़कर, दीन होकर रोते हुए हमलोग भगवान्‌से प्रार्थना करें––'प्रभो ! अत्यन्त पामर, दीनहीन, मलिन, विषयोंके कीट हमलोगों पर अपनी कृपा प्रकाशित करो। नाथ ! तुम्हारे जन––संतोंके प्रति निःस्वार्थ प्रेम, केवल प्रेमके लिये प्रेम उत्पन्न कर दो।' प्रतिदिन प्रार्थना करें। प्रार्थनासे बड़ा काम होता है। कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे भगवान् न दे सकें। ऐसी कोई प्रार्थना नहीं, जिसे भगवान् पूरी न कर सकें। वे असम्भवको सम्भव, एक क्षणमें सबके लिये बिना पक्षपातके कर सकते हैं। पर हमलोगोंका उनपर विश्वास नहीं, यही दुर्भाग्य है––

हरिसे लागा रहु रे भाई।
तेरी बनत–बनत बनि जाई।।

भक्त भारतेन्दु बाबूका एक पद है, उसकी दो पक्तियाँ ये हैं––

जो हम बुरे होइ नहिं चूकत नितही करत बुराई।
तो तुम भले होइ छाँड़त हौ काहें नाथ ! भलाई ? ।।

'नाथ ! मैं बुरा हूँ, बुरा करना मेरा स्वभाव है, मैं नित्य–निरन्तर बुराई ही करता रहता हूँ, बुराई करनेसे कभी भी नहीं चूकता, अपना स्वभाव मैं नहीं छोड़ता ? तब मेरे नाथ ! तुम भले होकर अपना स्वभाव क्यों छोड़ते हो ? तुम्हारा स्वभाव तो भला करना है ही, फिर तुम भी अपना स्वभाव मत छोड़ो।'

बिल्कुल ऐसी ही बात भगवान् करते हैं। जैसे सूर्यमें यह शक्ति ही नहीं कि वे किसीको अन्धकार दे सकें, वैसे ही भगवान्में—विनोदकी भाषामें कहनेपर यह कहा जा सकता है कि उनमें यह शक्ति नहीं कि वे किसीकी बुराई कर सकें। अब हम सोचें—जीत किसकी होगी ? एक ओर अखिलब्रह्माण्डपति अपने स्वभावका पालन करेंगे और एक ओर तुच्छ प्राणी अपने स्वभावका पालन करेगा। इन दोनोंमें निश्चय ही जीत भगवान्की होगी।

महापतित भी भगवान्का प्यार पा सकता है

यदि आप अशान्तिका अनुभव करते हों तो भगवान्की शरणमें जाइये। चाहे कोई नीच, सर्वथा अधम, सबकी नजरसे गिरा हुआ—कैसा भी क्यों न हो, यदि वह सच्चे मनसे भगवान्की शरणमें चला जाय तो वे उसे तत्क्षण हृदयसे लगा लेते हैं। जो निरन्तर भजन करनेवाला है, उसे वे बहुत प्यार करते हैं—यह ठीक है; किंतु महापतित भी उनका प्यार पा सकता है। केवल नीयत होनी चाहिये प्यार पानेकी। एक बारके लिये सच्चे मनसे उनके सम्मुख होना चाहिये। आप भी हृदय खोलकर उनके सामने कहिये—'दयामय ! मुझ-जैसे प्राणीको तो केवल अहैतुकी कृपासे ही अपनाना होगा।' यदि सचमुच इस प्रकारकी प्रार्थना आप हृदयसे करें तो फिर सब व्यवस्था अपने-आप बैठ जायगी। प्रार्थना हृदयसे नहीं होती, इसीलिये प्रभु भी सुनकर भी नहीं सुनते। किंतु जबतक हृदयसे न हो, तबतक केवल वाणीमात्रसे भी करें, करें अवश्य। वाणीमात्रकी प्रार्थना भी बहुत लाभदायक है।

सब चिन्ता छोड़कर मनको प्रभुमय बना लीजिये

जो श्वास बीत गये, वे लौटेंगे नहीं; उनका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग—जो होना था, वह तो हो गया। अब जितने बचे हैं, उनको बड़ी सावधानीसे भगवान्के भजन-स्मरणमें बितायें। सारा विवेक बटोरकर बार-बार यह निश्चय कीजिये—यहाँकी कोई चीज भी साथ नहीं जायगी। धन, परिवार, पुत्र, मान-प्रतिष्ठा—सब यहीं रह जायँगे और मन अच्छे-बुरे संस्कारोंको लेकर आपके साथ चलेगा। ऐसी दशामें जो सबसे अच्छी चीज हो, उसे ही उस मनमें भरिये। सबसे अच्छी वस्तु हैं—भगवान् ! उनसे उत्तम कुछ भी नहीं है; उन्हींको भरिये। सब चिन्ता छोड़कर प्रभुमय बना दीजिये, बनानेकी चेष्टा कीजिये। स्वयं अनन्त आनन्दमें डूब जायँगे और

जगत्को भी पावन कर दीजियेगा।

एक इत्र बेचनेवालेको लीजिये। वह जहाँ अपना इत्र बेचने बैठ जाता है, वहाँका वातावरण इत्रकी सुगन्धसे भर जाता है। ऐसा क्यों होता है ? क्योंकि उसके डिब्बेमें इत्र भरा हुआ है। किसीके न चाहनेपर भी सुगन्ध मिलती है। इत्र बेचनेवाला भी यदि न चाहे, तो भी सुगन्ध लोगोंको मिलती ही है। इसी प्रकार यदि आप अन्तःकरणमें भगवान्को भर सकें, तो फिर स्वयं आनन्दमें निमग्न होकर सारे जगत्में जो भी आपके सम्पर्कमें आयँगे, उन्हें भी दिव्य आनन्दका दान करेंगे, तरण–तारण बन जायँगे।

मृत्युका ठिकाना नहीं। उसके पहले–पहले अपनी जानमें पूरी शक्ति लगानी चाहिये। फिर कृपामय प्रभु कमी पूरी करेंगे। अनन्त कृपा बरस रही है, उसे ग्रहण कीजिये। कृपाको आनेके लिये, अन्तःकरणमें प्रवेशके लिये आप मार्ग दे दें, बस।

प्रतिकूल परिस्थितिमें भी भगवान्की दया देखिये।

जो हुआ, हो रहा है, होगा, वह सर्वथा मंगलमयके विधानके अनुसार होगा; सभी बातोंमें सर्वथा केवल मंगल–ही–मंगल भरा है। यह ठीक है कि हमलोगोंकी दृष्टि सीमित रहती है, अनुकूल परिस्थितिमें भगवान्का हाथ दीखता है; पर सच मानिये, भगवान्की जितनी दया अनुकूल परिस्थितिमें है, ठीक उतनी ही दया प्रतिकूल परिस्थितिमें हैं। जिस दिन मनुष्य अपने–आपको उनके चरणोंमें समर्पित कर देता है, उस दिन यह बात समझमें आती है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। उसके पहले शास्त्रके वचनोंपर, संतोंके अनुभूतियुक्त वचनोंपर विश्वास करके ऐसी भावना करनी पड़ती है। जितनी मात्रामें भावना दृढ़ होती है, उतनी ही मात्रामें दुःख भी कम हो जाता है। अवश्य ही भजन इस बातमें अत्यधिक, सबसे अधिक सहायक होता हैं आप किसी संतसे मिलना चाहते हैं, पर मिल नहीं पाते—इस बातके अन्तरालमें भी बड़ा मंगल छिपा है। यह मानें और यह ठीक समझे कि जिस दिन भगवान् उन संतको आपसे मिलाना चाहते उचित समझेंगे, उस दिन अपने–आप बिना किसी चेष्टाके वे मिल जायँगे, अपने–आप संयोग बन जायँगे।

देखें, आगमें यह गुण होता है कि यदि गंदी–से–गंदी चीज भी उसमें डाल दें तो उसका गंदापन नष्ट करके उसे अपना स्वरूप देती है। आगकी यह शक्ति जहाँसे आती है, जो समस्त शक्तियोंका क्रेन्द्र है, वह

वस्तु है——भगवान्! बड़ी आसानीसे कृपामय सब मल नष्ट करके अपने प्यारे भक्तको अपने समान कर लेते हैं। उसमें तनिक भी भेद–भाव नहीं है। उनके लिये सब समान है। उनके सम्मुख जाने भरकी देर है। इसीलिये उनकी ओर मुँह करें, मुँह करनेकी चेष्टा करें, चाह करें। इसमें भी वे सहायता करेंगे।

किसी भी असत् कमाईको स्वीकार न कीजिये।

भजनके साथ–साथ यदि कई खास बातोंपर ध्यान दिया जाय तो बहुत शीघ्र भजनका प्रत्यक्ष फल सामने आने लगता है। उन्हींमें एक बात है——सात्त्विक पवित्र अन्नका भोजन, अर्थात् यह कि अन्न सात्त्विक हो तथा सात्त्विक विधिसे तैयार किया जाय। पर सबसे अधिक इस बातका विचार आवश्यक है कि अन्न सात्त्विक कमाईका है कि नहीं। यह बात साधारण जान पड़ती है; पर मनको दूषित बनानेके लिये यह कितनी जिम्मेवार है——इसका महाभारतकी एक कथासे पता चलता है। भीष्मपितामहके विषयमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने कहा था——'युधिष्ठिर! ज्ञानके सूर्य (भीष्मपितामहजी) अस्त होने जा रहे हैं; उनसे जो सीखना हो, सीख लो।' ऐसे भीष्मपितामहकी बुद्धि दूषित अन्न खानेसे बिगड़ गयी थी। कथा आती है कि भीष्मजी शरशय्यापर जब उपदेश कर रहे थे, तब द्रौपदी हँस पड़ी। भीष्मने पूछा——'बेटी! तू हँसी क्यों? तू पतिव्रता हैं, तुम्हारी–जैसी स्त्री अकारण नहीं हँस सकती।' द्रौपदीने कहा——'पितामह! मैं यह सोचकर हँसी कि आपका यह ज्ञान उस समय क्या हो गया था, जब मेरी साड़ी भरी सभामें खींची जा रही थी।' भीष्मने कहा——'तू ठीक कहती है, बेटी! बात यह है कि उस समय पापात्मा दुर्योधनका अन्न खाता था, इसलिये मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी थी और मैं न्याय–अन्यायका विचार नहीं कर सका।' अस्तु, जब भीष्म सरीखे महात्माकी बुद्धि बिगड़ सकती है, तब फिर हमलोग तो कलयुगी महान् पामर प्राणी स्वभावसे ही हैं। इसलिये आप यदि इस विषयमें सावधान रहें तो बड़ी शान्ति मिलेगी। मरना है, शरीरसे वियोग होगा ही; और बस, उसी क्षण आपका अपने पुत्र, परिवार, स्त्री, परिजन——सबसे नाता टूट जायगा। साथ चलेंगे कर्मोंके संस्कार और कर्मोंके करते समय जो पाप–पुण्यका बोझा इकट्ठा हुआ है, वह। फिर बुद्धिमानी इसीमें है कि किसी

असत् कमाईको स्वीकार न करें। परिवारके बहानेसे मन धोखा देता है, पर इसी धोखेसे अबतक संसारमें भटक रहे हैं। खूब सावधान होना चाहिये। यह ठीक है कि यदि आप ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए हैं तो अयाचित दान स्वीकार कर सकते हैं; पर मन बड़ा धोखेबाज है। इससे पद–पदपर सावधान रहना चाहिये, एक पैसा भी स्वीकार करनेमें पहले अवश्य विचार लें। सत्यका आश्रय लेनेसे यदि आपको प्रत्यक्षमें बहुत आर्थिक हानि हो और उससे पारिवारिक भरण–पोषणमें बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो जाय, तो उसे सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिये। भरण–पोषणके लिये आपका ग्राममें जाकर मुट्ठी–मुट्ठी चावल माँगकर भिक्षावृत्तिसे जीवन–निर्वाह करना, भिक्षा भी न मिलनेपर भूखों मर जाना अच्छा है पर उदर–भरणके लिये अथवा परिवारकी रक्षाके लिये किसी भी असत् कमाईको स्वीकार करना अच्छा नहीं। यह बात आजकल बहुत कठिन–सी प्रतीत होती है, वातावरणका असर सबके ऊपर कम–वेशी मात्रामें पड़ चुका है। इसलिये सत्यके लिये मरना बहुत कठिन बात जान पड़ सकती है, पर है यही असली मार्ग। इसीमें शान्ति है, इसीमें सुख है। इसके विपरीत चाहे कोई हो, यदि वह असत् मार्गका अवलम्बन करता है तो उसका वर्तमान जीवन भी दुःखसे बीतेगा और परलोक तो अन्धकारमय है ही। इसलिये प्रार्थना है, खूब सावधान रहें। प्रभुके मार्गकी ओर बढ़नेमें सत्यपूर्ण, सदाचारपूर्ण जीवन बड़ा सहायक होता है।

मनको उधेड़–बुनसे खाली करके उसमें प्रभुकी मुख–शोभाको भरिये

विचार कीजिये—आपका घर और घरवाले आपके नहीं हैं। आप इसे अतिथिशाला, धर्मशाला मानें तथा इसमें रहनेवालोंको विभिन्न मार्गोंपर जानेवाले बटोही समझें। खूब प्रेम करें; पर वह प्रेम ठीक–ठीक वैसा ही होना चाहिये, जिससे असली घरकी विस्मृति न हो जाय। थोड़ी देरके लिये गम्भीरतासे विचारें—मृत्यु होनेके बाद आपका घरसे क्या सम्बन्ध रहेगा? जब एक दिन यह सम्बन्ध निश्चित छूट ही जायगा, तब वैसे घरमें यदि कम दिनके लिये रहनेको मिला तो दुःख किस बातका? दुःख तो इस बातके लिये भले ही होना उचित है कि 'ओह ! कितना काल बीत गया, स्वामीके

घर—असली घरमें एक बारके लिये भी पैर नहीं रक्खा।'

आपकी यह अभिलाषा बड़ी सुन्दर है—'क्या किसी दिन यह जीवन भी होगा, जब श्रीगोपियोंकी तरह सारा विश्व प्रभुमय दीख सकेगा, सचमुच कामना और आसक्तिसे रहित मेरा हृदय किसी दिन एकमात्र प्रभुके लिये व्याकुल हो उठेगा ?' ऐसी अभिलाषा भगवान्‌के अपार कृपासे होती है। अतः जो प्रभु आपके हृदयमें बैठकर इन भावोंकी स्फुरणा कर रहे हैं, वे अवश्य तथा निश्चय ही आगेका मार्ग भी प्रकाशित करेंगे। आप उनकी करुणापर विश्वास कीजिये। हृदयकी सारी शक्ति बटोरकर मनमें यह निश्चय दृढ़तासे जमा लीजिये कि आपके ऊपर एकमात्र उन्हींका अधिकार है और फिर बस, एक ही बातके लिये हृदय निरन्तर पुकारे—'मेरे नाथ ! वही करो, जो तुम्हारी इच्छा हो; बस, वही करो। तुम यन्त्री हो, मैं यन्त्र हूँ; तुम नचानवाले हो, मै कठपुतली हूँ।'

'क्या हुआ, क्या नहीं हुआ; क्या होता है, क्या नहीं होता है; क्या होगा, क्या नहीं होगा'—इस उधेड़-बुनसे मनको खाली करनेकी भरपूर चेष्टा कीजिये। इसके बदले मनमें भरिये उनकी अनुपम मुखशोभा, भरते चले जाइये। करना केवल इतना ही है। सच मानिये, मन जितना उस माधुरीसे सनेगा, उतनी ही शीघ्रतासे राह कट जायगी।

अनादिकालसे पापके संस्कारोंने, आसक्तिने मनको मैला कर रक्खा है। इसलिये वह उस सौन्दर्यमें न रमकर जागतिक सौन्दर्यमें रमता है। श्रद्धये भाईजीने एक बार अपने अनुभवकी बात बतायी थी—'नाम लेते जाओ। जितना अधिक लोगे, उतनी ही शीघ्रतासे मल धुलेगा।' यह बात बिल्कुल ठीक जँचती है, अनुभवमें भी आती है। इसलिये खूब नाम लें और साथ-साथ मनको उनमें डुबाते चले जायँ। फिर सब अपने-आप हो जायगा।

मनको जगत्‌की बातोंसे खाली करके प्रियतम प्राणनाथकी छविके स्मरणसे भरें

पारिवारिक उलझनोंको लेकर आपको उद्वेग होता है, यह स्वाभाविक है; पर जबतक इससे छूटनेको जो वास्तविक उपाय है, उसे नहीं करेंगे, तबतक व्याकुलता मिटनी, उद्वेग मिटना बड़ा ही कठिन है। परमार्थके पथिकके लिये यह सर्वथा उड़ा देनेकी चीज है; पर आपका मन कमजोर है; मनमें आसक्ति है और सबसे बड़ी बात यह है कि आपका मन जैसा प्रभुके

चरणोंमें लगना चाहिये, वैसा नहीं लग रहा है। इसलिये ये उलझनें विकटरूपमें दीख रहीं हैं। सच मानिये, बहुत अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि आप इन परिस्थितियोंको बिल्कुल महत्त्व न देकर एकान्त एवं शान्तिचित्तसे अपना मन प्रभुके चरणोंमें लगानेकी चेष्टा करें। यदि आप चाहेंगे कि परिस्थिति पलटे तो ऐसा होना बड़ा ही कठिन है। इसका कारण यह है कि जगत्के प्रत्येक प्राणीकी प्रत्येक चेष्टाके क्षुद्र–से–क्षुद्र अंशका नियन्त्रण भगवान्की शक्तिसे होता है और उसमें कितना मंगल, किसका कैसे होता है, इसे केवल भगवान् जानते हैं, पर मंगल–ही–मंगल होता है, यह प्रत्येक उच्च संतका प्रत्यक्ष अनुभव है। अतः आपकी दृष्टिमें आपके मनसे सर्वथा प्रतिकूल चेष्टा करनेवालेकी प्रत्येक उनकी शक्तिसे नियन्त्रित है। वे चाहें तभी वे पलट सकती हैं, अन्यथा नहीं पलटेंगी—इस बातपर विश्वास होना बड़ा ही कठिन है। नहीं तो यह विश्वास होते ही सारा दुःख तत्क्षण मिट जाय।

आप इस फेरमें मत पड़िये कि 'मेरा व्यवहार कैसे सुधरे, मैं अपने परिवारके व्यक्तियोंके कैसा आचरण करूँ कि उनका और मेरा परम कल्याण हो।' आप उनकी चिन्ता छोड़ दीजिये और यह चिन्ता भी छोड़ दीजिये कि 'मेरा व्यवहार सुधर जाय; ऐसा हो जाय कि वे लोग मुझसे प्रसन्न हो जायँ।' ऐसा विचार करना लाभदायक होता है, पर सबके जीवनमें सब अंशोंमें एक प्रकारकी साधनाका क्रम नहीं हो सकता।

संसारके प्रति उपरामताको देखते हुए बार–बार मनकी बिखरी हुई वृत्तियोंको इस कोलाहलसे हटाकर नित्य सुखमय प्रभुके चरणोंमें जोड़ते रहना—आप इसे ही करें। यदि आप मनको जगत् एवं घरकी बातोंसे खाली करके प्रियतम प्राणनाथकी छविके स्मरणसे भरेंगे तो ये बातें इतनी तुच्छ प्रतीत होंगी कि उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। भगवान्की पूर्ण कृपा आपपर है। इतना ही नहीं, ये जटिल समस्याएँ भी आपको कीचड़से निकालनेके ही उपक्रम हैं।

हृदयको एक बड़ा अंश अभी सांसारिक आसक्तियोंसे घिरा हुआ है। शायद आपको पता भी नहीं चलता होगा कि वह सांसारिक आसक्ति कैसी है कहाँ है, किस रूपमें है; पर वह है। इन सारी आसक्तियोंको छोड़नेके लिये तैयार होना पड़ेगा। छूटेगी तो प्रभुके छुड़ाये, पर चाह आपको ही करनी पड़ेगी। सारांश यह है कि जिस–किसी भी प्रकारसे मनको इन उलझनोंको सुलझानेमें न लगाकर इनको भूलनेकी चेष्टा करें।

थोड़ा कठिन है, पर प्रभु सहायक है; सब हो सकता है। आप गृहस्थ हैं और जबतक प्रभु चाहेंगे, तबतक उसमें रहना ही पड़ेगा। फलतः जीवन–निर्वाहके लिये भी चेष्टा करनी ही पड़ेगी। उसे कीजिये; कमाते हैं तो न्यायकी कमाई हो और उससे जो प्राप्त हो, उसे आपके परिवारकी जो सँभाल कर रहे हों, उन्हें सौंप दीजिये। घरमें सबसे सम्मान, प्रेम, हित और सत्य––इन चारों बातोंको ध्यानमें रखकर ही व्यवहार कीजिये। बड़ी शान्तिसे रहिये। किसी दूसरेकी अशान्तिसे आप यदि अशान्ति मोल लेते हैं तो भूल करते हैं। ध्यान रखिये––कुछ भी अनहोनी नहीं होगी, एक पत्ता भी प्रभुके विधानसे ही हिलेगा। सुख–दुःख, निन्दा–स्तुति, इज्जत–बेइज्जती––सब ठीक नियमसे आयेंगे। उनके विधानसे आयेंगे। इसपर विश्वास करें, न करनेसे दुःख बढ़ेगा। कभी कुछ, कभी कुछ सोचते–सोचते माथा गंदे भावोंसे भरेगा। ऐसा न होकर वह भरे एकमात्र प्रभुके स्मरणसे, यह चेष्टा कीजिये।

भजनके लिये भजन, चिन्तनके लिये चिन्तन करनेकी चेष्टा कीजिये

'जब नित्य–कर्म करने बैठता हूँ, तो तमोगुण बहुत आ जाता है, ऊँघने लगता हूँ; इससे बहुत विक्षेप होता है।'..........इस प्रश्नके उत्तरमें विचार करनेपर तीन बातें ध्यानमें आती हैं––(१) जिसकी पाचनशक्ति खराब होती है, उसे आलस्य विशेष आता है; (२) आवश्यकता–भर नींद रातमें न ली जाय तो दिनमें आलस्य आता है और (३) भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम न होनेके कारण उनके चिन्तनमें आनन्द नहीं आता और इसलिये वृत्तियाँ आलस्यसे अभिभूत होती हैं। ये ही तीन कारण प्रायः हेतु होते हैं। आप यथासम्भव पहले दो कारणोंपर विचार करके उनमेंसे कोई–सा होनेपर उन्हें सात्त्विक उपचार एवं आवश्यकता–भर नींद लेकर दूर करनेकी चेष्टा करें। पर ये दोनों ही गौण हैं। मुख्य बात तीसरी है। जिस क्षण प्रियतम प्रभुके चिन्तनमें रस आने लगेगा, उस क्षण आलस्य सर्वथा नहीं आ सकता। प्रेमी महात्मा तो ऐसे–ऐसे हो गये हैं, जो वे कभी सोते ही न थे। उन्हें जागनेकी चेष्टा करनी पड़ती हो, ऐसी बात नहीं। स्वाभाविक निरन्तर प्रेममें डूबे रहनेके कारण वे मायासे सर्वथा पार हो जाते हैं। पर हमलोग तो अभी जिस स्थितिमें हैं, उसीको लेकर विचार करना है। अतः किसी प्रकार भजन

एवं चिन्तनमें रस आने लगे तो यह दोष दूर हो जाय। किंतु इससे भी एक ऊँची बात यह है कि रस आनेका भी भाव छोड़कर केवल भजनके लिये भजन एवं चिन्तनके लिये चिन्तन करनेकी चेष्टा की जाय। रस आना तो भजन एवं चिन्तनका आनुषंगिक फल है, वह तो आकर ही रहेगा (जबतक नहीं आता, तभीतक ये दोष हैं)। इसलिये अपनी जानमें आलस्यके वशमें न होनेके बार–बार दृढ़ निश्चय करके भजन एवं स्मरणको बढ़ानेकी चेष्टा करें, उनकी कृपापर विश्वास करें। बस, आपका इतना ही काम है। वे चाहें तो अभी, इसी क्षण आपकी दशा महाप्रभु चैतन्य–देवकी–सी कर दें, जो निरन्तर १२ सालतक रोते रहे। गौड़ीय महात्माओंका विश्वास है कि महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण ही थे। अतः अपने मनमें ऐसी शंका हो सकती है कि 'वैसी अवस्था मेरी कैसे होगी' तो उन्हें छोड़ दें। आजतक जितने प्रेमी भक्त हो गये, उनकी ही बात सोचिये। आप विश्वास कीजिये—(१) श्रीकृष्णको जो सम्बन्ध उन प्रेमी महात्माओंसे था, ठीक वही–का–वही सम्बन्ध आपके साथ है। (२) उनमें विषमता नहीं है, वे आपको भी ठीक उतना ही प्यार करते हैं। (३) आपकी सब जानते हैं। (४) उनसे बढ़कर आपका हित करनेवाला न कोई है, न था, न होगा। (५) वे सर्वसमर्थ हैं, जिस क्षण जो चाहें, कर सकते हैं।

यदि इन पाँच बातोंपर दृढ़ विश्वास जमा सकें तो समझना चाहिये कि आप तो पूर्ण समर्पणके मार्गपर आरूढ़ हो गये। इसलिये सब चिन्ता छोड़कर इन पाँच बातोंपर विश्वास कीजिये—अडिग अटूट विश्वास कीजिये और जीभसे उनका अधिक–से–अधिक नाम लीजिये। मनको भी यथासम्भव उनमें लगानेकी चेष्टा कीजिये; पर न लगे तो घबराइये मत, निराश मत होइये। फिर दोष नहीं रहेगा, सर्वथा निर्दोष बनाकर वे स्वयं आपको कलेजेसे लगा लेंगे। देरी नहीं होगी; इतनी जल्दी होगी, जितनी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। पर यह सब विश्वास करनेसे होगा। इस विश्वासको प्राप्त करनेके लिये जो भी करना पड़े, वह करनेके लिये सच्चे मनसे तैयार हो जाइये; फिर यह विश्वास भी बहुत सस्ते मिलेगा। अवश्य ही, इस सौदेके लिये आपको तैयार होना चाहिये।

प्रभु हमें लेकर खेल रहे हैं

वस्तुतः हमलोग अपने आपको ही भूल हुए हैं। हमलोग शरीर हैं क्या ? विचार करनेपर पता लगेगा—नहीं, शरीर तो नहीं हैं। शरीर तो

अबतक अनन्त प्राप्त कर चुके हैं। अमुक-अमुक नामसे परिचित ये शरीर भी यहीं रह जायँगे, हमलोग इन्हें छोड़ देंगे, निश्चय छोड़ देंगे। तब हमलोग कौन हैं ? गीतामें देखें—भगवान् कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः (१५। ७)

हमलोग उन्हींके वंशके हैं, बिल्कुल उसी धातुके हैं, जिस धातुके भगवान् हैं; पर हमलोग उनको भूल गये। इसलिये अपनेको भी भूल गये और सोचने लगे—'ये शरीर-ही-हमलोग हैं।' अब यदि उन्हें याद करें, उन्हें बीचमें ला रखें तो पहले अपनी-अपनी स्मृति होगी, फिर यह स्मृति जाग उठते ही हमलोगोंका सम्बन्ध इतना निकटतम हो जायगा कि उस निकटताका वर्णन भी नहीं हो सकता। सच मानिये—हमलोग जितनी देरतक प्रभुको बीचमें रखते हैं, उतनी देरके लिये वे बिल्कुल निकटसे भी निकट हैं। उनको भूलनेपर वे इतनी दूर चले जाते हैं कि उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती, वर्णन होना तो दूरकी बात है। प्रभुको बीचमें रखकर हम दो प्रकारके अनुभव करेंगे—(१) जो सम्बन्ध उनका एकसे है, वही सम्बन्ध । उनका दूसरेसे भी है तथा (२) दोनों समान हैं, दोनों उनके हैं। दो हैं ही नहीं, एकके ही दो बना लिये गये हैं, तीन बना लिये गये हैं, हजार बना लिये गये हैं। किसने बनाये है ? हमारे स्वामीने। तो यह खेल है ? हाँ, खेल है, हमारे स्वामीका खेल है, हमें लेकर वे खेल रहे हैं। खूब खेलो, नाथ ! बलिहारी तुम्हारे खेलकी !!

उनके लिये उनको भजिये

एक मुसल्मान-परिवारमें एक भक्तिमती नारी हुई है, जिसका नाम था 'रबिया'। रबियाने कहा है—'मेरे प्राणनाथ ! यदि स्वर्गकी कामनासे मैं तुम्हें भजती हूँ तो मेरे लिये स्वर्गका द्वार बंद कर दो। और यदि नरकके डरसे तुम्हें भजती हूँ तो मुझे नरककी ज्वालामें भस्म कर दो; पर यदि मैं तुम्हारे लिये भजती हूँ तो मुझे मिल जाओ।' कैसा सुन्दर भाव है ! सचमुच जिस दिन उनके लिये मनुष्य उनको भजने लगता है, फिर उस भजनमें एक अपूर्व स्वाद होता है—विलक्षण मिठास होती है—भजन प्राणोंसे बढ़कर प्यारा लगता है। पर ऐसा सहसा किसी-किसी महात्माके जीवनमें ही होता है। क्रमशः विकास ही साधारणतया देखा जाता है। अतएव सर्वथा अनुद्विग्न चित्तसे उनके लिये उन्हें भजनेका अभ्यास बढ़ाते रहें। अर्थात् सर्वथा सभी प्रकारकी कामनाओंसे

रहित होकर उनके चरणोंमें न्योछावर होनेका ही उद्देश्य रखकर उन्हें भजिये। लौकिक परिस्थितियाँ अनुकूल-प्रतिकूल जैसी भी आयें, उन्हें उनका विधान समझकर अतिशय प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिये। यह करना पड़ेगा। उनकी कृपाका आश्रय लेकर अपने जीवनमें साधनाको उतारना पड़ेगा। उतारेंगे वे ही, उनकी दया ही सब करेगी; पर उसके लिये अपना हृदय खोलकर उनके सामने करना हमलोगोंका काम है। वे आपके हैं और आप उनके हैं, वे आपके हृदयधन हैं और आप उनके हृदयधन हैं—इस मधुरतक सम्बन्धको हृदयमें बार-बार जाग्रत कीजिये और मलिन-से-मलिन हृदयको ही उनके सामने कीजिये। वे अपने लायक उसे बना लेंगे, अवश्य बना लेंगे। उनकी कृपाका पार नहीं है।

जीभसे निरन्तर भगवान्‌की नाम लीजिये

भगवान्‌ने कहा है—'सभी धर्मोका आश्रय छोड़कर केवल एकमात्र मेरी शरणमें चले आओ। फिर मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त कर दूगाँ, तुम चिन्ता मत करो।'

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(गीता १८। ६६)

मनकी कैसी भी अवस्था क्यों न हो, कोई परवा नहीं। केवल जीभसे निरन्तर भगवान्‌का नाम लीजिये, फिर सारी जिम्मेवारी भगवान् सँभाल लेंगे। केवल जीभसे नाम-स्मरण—और कोई शर्त नहीं।

चाहे मन लगे या न लगे, यदि भगवान्‌का नाम जीभसे निरन्तर लेने लग जाइयेगा तो फिर न तो कोई शंका उठेगी, न कोई चाह रहेगी। थोड़े ही दिनोंमें शान्तिका अनुभव करने लगियेगा। इससे सरल उपाय कोई नहीं है। पूर्वके पापोंके कारण नाम लेनेकी इच्छा नहीं होती। एक बार हठसे निरन्तर नाम लेनेका नियम लेकर ४-६ महीने बैठ जायँगे, तो फिर किसीसे कुछ भी पूछनेकी जरूरत नहीं रहेगी। स्वयं सत्य वस्तुका प्रकाश मिलने लगेगा, संदेह मिटने लगेंगे। इस प्रकार जिस दिन भजन करते-करते सर्वथा शुद्ध होकर भगवान्‌को चाहियेगा, उसी क्षण भगवान्‌से मिलकर कृतार्थ हो जाइयेगा।

*　　　　*

पहले ऐसा कीजिये कि कम-से-कम बोलकर जरूरी-जरूरी काम सलटा लीजिये, बाकीका समय पूरा-का-पूरा जीभसे नाम लेते हुए बिताइये। यह खूब आसानीसे हो सकता है। करना नहीं चाहियेगा तो उसकी कोई दवा होनी बड़ी कठिन है। यदि मनुष्य भजन करना चाहे तो जरूर कर सकता है। यदि कोई कहता है—'हमसे भजन नहीं होता' तो समझ लीजिये कि सचमुच वह भजन करना चाहता नहीं। आपके चाहनेपर भजन अवश्य हो सकता है। बिना परिश्रम ही सब हो जायगा। यह कलियुग है, मन लगना बड़ा ही कठिन है। बिरले ऐसे होते हैं, जिनका मन सचमुच भगवान्में लग गया हो। पर यदि कोई जीभसे नाम लेने लगे तो फिर बिना मन लगे ही अन्ततक अवश्य कल्याण हो जायगा।

प्रति तीन घंटेपर इन बातोंपर विचार करें—

मनके अनेक रूप हैं—जैसे काम, संकल्प, संशय आदि। इनके स्वरूपको समझकर इनके विषयमें किस प्रकार सावधानी बरतनी चाहिये, इसके लिये इस विवेचनपर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) **काम**—किसी चीजकी इच्छा करनेका नाम है—'काम'। आप किसी चीजकी इच्छा मत कीजिये। आप अपने मनसे ऐसा मत सोचिये कि 'अमुक चीज इस रूपमें हो।'

(२) **संकल्प**—किसी अच्छे कामके लिये संकल्प करें, जो भगवान्की ओर ले जानेवाला हो। दूसरा कोई संकल्प मत कीजिये।

(३) **संशय**—दुनियाके बारेमें संशय कर सकते हैं, पर भगवान्की सत्ताके या परलोक या पुण्य-पापके विषयमें संदेह मनमें हो तो उसे निकाल दें।

(४) **विश्वास**—वास्तवमें विश्वास करने लायक एकमात्र भगवान् हैं। यह सुझाव दिनभरमें कम-से-कम १५-२० बार अवश्य अपने मनको दीजिये कि 'भगवान् आपको कभी धोखा नहीं देंगे, और कोई भी धोखा दे सकता है। सब कुछ भगवान्में है, सब कुछ भगवान्से बनता है—निकलता है। भगवान् सबको बनाते हैं। सब कुछ भगवान् हैं। जितनी बातें हमारी धारणामें आती हैं, उनसे परे भी भगवान् हैं।'

(५) **निषेध**—यहाँकी जितनी भी वस्तुएँ हैं, उनके सम्बन्धमें मनको यह सुझाव दीजिये कि वे सभी नश्वर हैं, उनमेंसे किसीपर भी विश्वास नहीं किया जा सकता।

(६) **धृति** (धैर्य)––कोई भी बात आपको मनके प्रतिकूल दीखे, उसके विषयमें आप मनको सुझायें कि यह सारी प्रतिकूलता अनुकूलतामें निश्चय ही बदल जायगी।

(७) **अधृति**––एक विचार आपके अंदर ऐसा आना चाहिये कि अब हम एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोयेंगे। इतना ही नहीं, खोनेपर दुःख होना चाहिये। जो समय आपके एवं दूसरोंके लिये परिणाममें सुखदायक हो, वही सार्थक है, बाकी सभी निरर्थक है।

(८) **लज्जा**––आपसे कोई काम ऐसा हो जाय, जिससे अपना और दूसरोंका अहित होता हो तो उसमें लज्जाका बोध होना चाहिये। यदि कर सकें तो उस भूलको स्वीकार करनेका साहस बटोरना चाहिये।

(९) **भय**––भय आपको किसी चीजसे नहीं होना चाहिये। जब सब जगह भगवान् हैं, सबमें वे ही भरे हैं, सब वे ही बने हैं, तब हमें भय क्यों और किससे होना चाहिये ?

(१०) **निश्चय**––ऐसा निश्चय करें कि 'चाहे जो भी हो जाय, मैं मनको भगवान्‌में लगा ही लूँगा––भगवान्‌की कृपाके बलसे।'

प्रातः छः बजेसे प्रति तीन घंटेपर कम–से–कम कुछ क्षणोंके लिये उपर्युक्त दसों बातोंपर विचार करें। ऐसा करनेसे निश्चय ही साधनामें प्रगति होगी।

उठनेके लिये तैयार हो जाइये, वे उठा लेंगे

जिनसे आपका वास्तविक एवं नित्य सम्बन्ध है, उस सम्बन्धको एवं उनको तो आप अनादि संस्कारोंके कारण, अनन्त जन्मोंकी आसक्तिके कारण, गौण बनाये हुए हैं, और जो मिथ्या है, खेलका है, जिससे आपका सम्बन्ध कुछ वर्षोंसे ही है, उसके साथ सम्बन्धको मुख्य बनाये हुए हैं। कुछ वर्ष पहले न तो आपका नाम था और न इस शरीरसे ही आपका सम्बन्ध था। इसके पहले दूसरा नाम था, दूसरा शरीर था। उसके पहले भी दूसरा नाम, दूसरा शरीर था। अनन्त जन्मोंमें अनन्त नामों एवं अनन्त शरीरोंके साथ आपका सम्बन्ध हुआ है और सबसे वियोग भी। ऐसे ही प्रारब्ध पूरा होते ही इस शरीर एवं इस नामसे भी वियोग निश्चय हो जायगा। आज जैसे उन शरीरके दुःख–सुखसे, उन शरीरोंके नामोंके मान–अपमानसे, उन शरीरोंसे हुए व्यवहारोंसे आपका तनिक भी सम्बन्ध नहीं, वैसे ही इस

नामकी प्रशंसा-निन्दा और इस शरीरके सुख-दुःखसे भी तनिक भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। जैसे उन अनन्त परिवारोंको सुखी बनानेकी कल्पना भी आपके मनमें अब इस जन्ममें नहीं होती, वैसे ही शरीर छूटते ही इस परिवारको भी (यदि पुनर्जन्म हुआ तो) भूल जाइयेगा। फिर इनके लिये व्यग्रता क्यों ? जब यह छूट ही जायँगे, तब इनके लिये इतनी ममता क्यों ? इन वियुक्त होनेवाली वस्तुओंके ममत्वमें फँसकर, इनके सुधार-बिगाड़से चिन्तित होकर, अपने प्राणनाथ प्रभुके ममत्वको क्यों भूलें ? सचमुच इस मोह-राज्यसे ऊपर उठना पड़ेगा। जिस उपायसे भी हो, उठना पड़ेगा। आप उठ सकते हैं, उनके चरणोंको पकड़कर उठ सकते हैं। इसलिये सच्ची लगनसे, पूर्ण उत्साहसे उठनेके लिये तैयार हो जाइये। आप तैयार हुए कि वे उठा लेंगे।

सुख एकमात्र भगवान्में ही है, उन्हींको पकड़िये

संसारमें बनना और बिगड़ना नित्य-निरन्तर चलता ही रहता है। जो चीज बनी है, वह नष्ट होगी ही, यह नियम बदलेगा नहीं; फिर भी मनुष्य इन्हींको पकड़े रहता है; इतना ही नहीं, तरह-तरहके पाप भी बटोरता रहता है। पाप होनेमें मुख्य हेतु यही है कि हमारी विषयोंमें सुखबुद्धि है। यदि विषयोंमेंसे सुखबुद्धि निकल जाय तो फिर पाप हो ही नहीं सकते। बुद्धि उलटी हो रही है, संतोंके अनुभूत वचनोंपर तथा स्वयं भगवान्के वचनोंपर विश्वास नहीं होता। संतलोग एक स्वरसे यह कह रहे हैं—'विषयोंको बाहर निकाल फेंको, नहीं तो मारे जाओगे; पर मन इन बातोंको सुनकर भी नहीं सुनता; क्योंकि यदि वस्तुतः सुनता होता तो फिर विषयोंके लिये कामना क्यों होती ? पर मन न माने, तो भी विषयोंका दुःखदायी परिणाम तो होकर ही रहेगा। महात्मा लोग उदाहरण देते हैं—एक संत जा रहे थे। रास्तेमें पड़ी हुई रुपयोंकी थैलीपर उनकी दृष्टि पड़ गयी। संत बहुत जोरसे भागे। वे भागते जा रहे थे कि उन्हें रास्तेमें दो सिपाही मिले। संतने कहा—'भैया ! इस रास्ते मत जाओ; डाइन बैठी है, खा जायगी।' सिपाहियोंने उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया—उनकी बात नहीं मानी। वे दोनों चलते-चलते वहाँ आये, जहाँ थैली पड़ी थी। दोनोंने सोचा—'साधु बदमाश था; वह हमलोगोंको धोखा देना चाहता था और स्वयं किसीकी सहायता लेकर इस थैलीको उठा ले जानेके उद्योगमें था।' दोनोंने रुपयोंको आधा-आधा बाँटना तय कर लिया; पर दोनों ही सोचने

लगे कि 'यदि मैं अकेला होता तो सभी रुपये मुझको मिल जाते। अब क्या उपाय करूँ ?' दोनोंने ही सोचा—'यदि मेरा साथी किसी प्रकार मर जाय तो फिर तो सब धन मेरा ही है।' एकने सोचा—'बंदूक पास है, गोली भरी है; बस, इसीसे इसका काम तमाम कर दूँ।' यह सोचकर वह मौका ढूँढ़ने लगा। दूसरेने सोचा—'मैं शहरमें जाता हूँ, वहाँ भोजनके लिये मिठाइयाँ लेकर आऊँ और उसीमें संखिया मिला दूँ। मैं कह दूँगा कि मैंने खा लिया, तुम खा लो।' यह सोचकर वह मिठाई लाने चला गया। इधर उसके साथीने सोचा—'बस, ठीक है, बंदूक तैयार रखूँगा; जहाँ सामने दीखा कि गोली दाग दूँगा।' उसका साथी मिठाईमें संखिया मिलाकर लौटा। इसने उसे दूरसे देखकर ही गोली दाग दी, वह बेचारा मर गया। यह आनन्दमें हँसने लगा। सोचा—'अब क्या है, अब भरपेट भोजन करके यहाँसे चल दूँ।' भोजन किया, पर भोजन करते ही संखियेके भीषण जहरसे उसके प्राण भी क्षणोंमें ही निकल गये। दोनों वहीं मरे पड़े थे, थैली ज्यों–की–त्यों पड़ी रह गयी। थोड़ी देरमें संत लौटे। उन्होंने देखा और करुणाभरे स्वरमें कहा—'ओह ! इन दोनोंको ही यह डाइन खा गयी।'

यह तो कहानी है, पर असलमें संसारमें यही हो रहा है। भोगकी कामना सभीको नष्ट कर रही है। सुख पानेकी आशासे विषयोंका संग करते हैं, पर परिणाममें मिलता है—दुःख, मृत्यु। मोह इतना बढ़ गया कि जब हम भगवान्‌को याद करते हैं, तब उनके सामने भी विषयोंकी ही माँग पेश करते हैं। हम सबकी यही स्थिति है। अतएव हमेशा यह याद रक्खें—'विषयोंमें लेशमात्र भी सुख नहीं है, सुख तो एकमात्र भगवान्‌में है।' उन्हींको पकड़ें। सब छोड़कर भी यदि उन्हें पकड़ सकें, तो अवश्य पकड़िये। बस, उनको पकड़ना है, उनमें मनको प्रवेश करा ही देना है, चाहे जिस उपायसे हो। मृत्यु आनेके क्षणतक इसीके लिये चेष्टा करें। इसीके लिये दूसरे सब काम करें।

मोह–राज्यसे ऊपर उठनेकी तैयारी कीजिये

आप मोह–राज्यसे ऊपर उठना चाहते हैं, पर उसके लिये कुछ तैयारी करनी पड़ती है। उस तैयारीका पूर्वरूप क्या है? इसे सूत्ररूपसे इस प्रकार समझना चाहिये—

(१) कामभर बोलनेके बाद शेष समय जागनेसे सोनेतक मशीनकी

तरह जीभसे भगवान्‌का नाम लेते रहें। कम–से–कम बोलकर काम चलाया जाय, यह चेष्टा रहे।

(२) कामकी बात सोचनेके बाद बाकी समय मनकी वृत्तियाँ भी भगवान्‌के चरणों लगी रहें, इसके लिये निरन्तर प्रयत्न होता रहे।

(३) जीवन–निर्वाहके लिये जो चेष्टा न्यायतः अभी हो रही है, वह हो; पर कमाईके जो पैसे आयें, उनमें ममत्व बिल्कुल न हो। वह इन–इनके भरण–पोषणमें लगे, यह आग्रह न हो। दानेके एक–एक कणपर मुहर है, अन्नका जो कण जिसके पेटमें जाना है, उसीके पेटमें ठीक विधानके अनुसार जाता है। यह ठीक है कि 'स्टेज मास्टर'ने—जगन्नियन्ता प्रभुने जिनके भरण–पोषणमें हमें निमित्त बनाया है, उनको पहला मौका देनेकी हम चेष्टा करें—चेष्टामात्र, आग्रह नहीं; पर यदि सात व्यक्ति और आ जायँ तथा आठ–दस व्यक्तियोंके लिये भी जो खाद्य–सामग्री मामूली पोषणभरके लिये थी, उसके १७ भाग कर दिये जायँ और इस प्रकार सबका पूरा भरण न होकर आधा ही भरण हो, तो भी चित्त म्लान न होकर विशेष आनन्दका अनुभव करें। ठीक समझें—उन सात व्यक्तियोंके रूपमें हिस्सा बँटानेवाले स्वयं आपके प्रियतम प्रभु ही हैं, आपकी परीक्षाके लिये आये हैं। अवश्य ही यह भी एक लीलाका ही अंग है।

(४) प्रतिकूल–से–प्रतिकूल अर्थात् अत्यन्त प्रतिकूल व्यवहार करनेवालेके प्रति भी द्वेष न हो; उसके हृदयमें अपने प्राणनाथ प्रभुको देखकर मन–ही–मन हँस दें। बाहरसे यदि थोड़ी मलिनता भी दीखे तो आपत्ति नहीं, पर थोड़ी मलिनताका स्पर्श न होने पाये।

(५) प्रत्येक घटनामें अपने प्रियतम प्राणनाथका हाथ है, इसे भीतर अनुभव करें तथा यह अन्तर्हृदयसे विश्वास करें कि चाहें कोई घटना कितनी भी भयानक क्यों न हो, उसका परिणाम अनन्त मंगलसे भरा है।

(६) किसीसे भी रूखा नहीं बोलना है। इसका सुधार करकेके लिये इससे रूखा व्यवहार आवश्यक है, यह भाव मनसे निकाल दें। किसीको आप सुधार सकें तो मधुर शब्दोंमें ही भले सुधारें, पर कड़ाई मत करें। कड़ाई न करनेसे व्यवहार ठीक नहीं होगा—यह भ्रम है; इसे भी मनसे निकाल दें।

(७) मनमें यह भाव दृढ़ करते रहें—'मेरे तो एक प्रभु ही हैं, और

मेरा कुछ नहीं, कोई नहीं।' सब प्रभुका, सब प्रभुके—इस नातेसे जो सम्बन्ध निभाना हो, भले निभायें; पर स्वतन्त्र सम्बन्ध जितनी शीघ्रतासे हो, मन–ही–मन तोड़ डालिये। तोड़नेकी चेष्टा करनी ही होगी।

(८) सबसे उत्तम बात तो यह है कि प्रभुसे कुछ भी न माँगे; पर जब मन किसी बातसे व्याकुल हो जाय और नीचे गिरने लगे तथा माँगनेकी इच्छा हो जाय—कोई अभाव मालूम हो और उसकी पूर्तिकी उत्कट इच्छा हो, तब सच्चे मनसे, पूर्ण विश्वासके साथ उनके सामने ही मुँह खोलिये, और किसी भी दूसरे साधनका आश्रय मत लीजिये। सच मानिये, यदि उनसे माँगियेगा तो या तो माँगकी पूर्ति हो जायगी, या माँगकी पूर्ति हुए बिना आपके मनका दुःख मिट जायगा।

—और भी बहुत–सी बातें हैं; पर यदि उपर्युक्त आठ बातोंको ही आप सचमुच पकड़नेकी चेष्टा करें तो थोड़े ही दिनोंमें आपमें विलक्षण परिवर्तन हो जायगा।

मनमें प्रिया–प्रियतमको बसा लीजिये

बात तो केवल एक ही है—'जैसे हो, जिस साधनसे हो, मनमें प्रिया–प्रियतमको बसा लें—मन प्रिया–प्रियतममें लीन हो जाय। उनके अतिरिक्त मनमें और कुछ रहे ही नहीं।' सचमुच यदि यह हो गया तो सब कुछ हो गया और यदि नहीं हुआ तो कुछ नहीं हुआ। एक भक्तके इस पदपर ध्यान देना चाहिये—

> बृंदाबन बसि यह सुख लीजै।
> सात समय की महल टहल बिनु इक छिन जान न दीजै।।
> परम प्रेम की रासि रसिक जे तिन ही कौ सँग कीजै।
> निबिड निकुंज बिहार चारु अति सुरस सुधा दिन पीजै।।
> और भजन–साधनमें मिथ्या कबहूँ कान न छीजै।
> दिन दुलराइ–लड़इ दुहुन कों अलबेली अलि जीजै।।

सच्ची इच्छा जाग्रत कीजिये, काम हो जायगा

'प्रिया–प्रियतममें हार्दिक प्रेम कैसे हो, उनके दर्शनकी उत्कण्ठा कैसे उत्पन्न हो ? इन प्रश्नोंका उत्तर कोई क्या दे। सच्ची बात यह है कि ये बातें सर्वथा श्रीकृष्णकी कृपासे ही होती हैं। यह ठीक है कि उनकी अपार, असीम कृपा प्रत्येक जीवपर निरन्तर बरस रही है; पर जीव उनकी

ओर, उनकी कृपाकी ओर न ताककर दूसरी ओर ताकता है——उनकी कृपाके बदले दूसरी वस्तु चाहता है। इसीलिये वह कृपा प्रकट नहीं होती और उपर्युक्त बात मनुष्यके जीवनमें प्रत्यक्ष नहीं होती। अतः सबके लिये सर्वोत्तम उपाय है सच्चे मनकी चाह लेकर उनकी कृपाको ग्रहण करने लग जाना चाहिये, फिर अपने–आप सभी बातें हो जायँगी। सच्ची चाह हुई कि काम हुआ। आप सोचकर देखें——ईमानदारीसे मन–ही–मन विचार करके देखें——आप जिन–जिन बातोंके सम्बन्धमें संत–महात्माओंसे पूछते हैं, उन–उनको क्या आप सच्चे हृदयसे चाहते हैं ? नहीं चाहते। यदि चाहते होते तो सच मानिये, आपको किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं होती, वे भाव आपको प्राप्त हो जाते। ऐसा इसलिये होता है कि श्रीकृष्ण आपके हृदयमें ही अन्तर्यामीरूपसे वर्तमान हैं तथा आपकी प्रत्येक शुद्ध, सच्ची इच्छाको पूर्ण करनेके लिये तैयार हैं। अतः सच्ची इच्छा जाग्रत करें। 'मेरे मनमें वैराग्य कैस हो, प्रिया–प्रियतमकी दयाका अनुभव किस उपायसे हो, उनके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा कैसे हो'——इन बातोंकी सच्ची इच्छा जाग्रत करें; बस, काम हो जायगा।

आप चाहेंगे उसी दिन, उसी क्षणसे आपको सर्वत्र भगवान्‌के दर्शन होने लग जायँगे

आप चाहते हैं कि हमारा सर्वत्र भगवद्भाव हो। सच्ची बात तो यह है कि भगवान्‌के अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं; बस, सर्वत्र केवल भगवान्–ही–भगवान् हैं। पर वे भगवद्–रूपमें इसलिये नहीं दीखते कि मनुष्य पूरा–का–पूरा भगवद्–रूपमें उन्हें देखना नहीं चाहता। सच मानिये, जिस दिन, जिस क्षण आपका मन चाहेगा कि मेरी आँखें सर्वत्र भगवान्‌को ही देखें, उसी दिन, उसी क्षणसे आपको सर्वत्र भगवान्‌के दर्शन होने लग जायँगे। आप देखना चाहते हैं——सोना, चाँदी, खान–पानकी वस्तु, पहननेके कपड़े, गप्प लड़ानेवाले मित्र–साथी, सेवा करनेवाला नौकर आदि। तब भगवान् सोचते हैं कि 'मेरा प्यारा भक्त अभी मुझे इन चीजोंके रूपमें ही देखना चाहता है तो मैं अपना रूप बदलकर उसके चित्तको क्यों दुखाऊँ ? वह चाहता है, सोना–चाँदी आदि देखना तो मैं सोना–चाँदी आदि बनकर ही उसके सामने जाऊँगा। वह भक्त मेरा प्यारा है, मेरे प्यारेको जिस बातमें सुख हो, वही मुझे करना है।' इसलिये सर्वत्र भगवान्–ही–भगवान् होनेपर

भी आपको तरह-तरहकी चीजें दीखती हैं। ये तबतक दीखती रहेंगी, जबतक आप इन्हें देखना चाहेंगे। ये सर्वथा आपके हाथकी बात है। आज आपके मनमें केवल मोरमुकुटधारी रूपको देखनेकी इच्छा हो जाय तो आज ही ईंट-पत्थर-चूनेका अणु-अणु बदलकर श्रीकृष्णरूप हो जाय। यह सर्वथा ध्रुव सत्य है।

प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितिमें अपने प्रियतम प्रभुका दर्शन करनेका अभ्यास कीजिये

मनमें बार-बार सोचते रहिये--'मेरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ प्रियतम प्रभुका है। सबपर उनका ही अधिकार है। मैं एवं मुझसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त चीजे उनकी हैं, वे अपने इच्छानुसार इनका उपयोग करें'--यह भावना जितनी दूरतक दृढ़ होगी, उतनी ही दूरतक आप सांसारिक सुख-दुःख और सांसारिक चिन्ताओंसे अलग हो जाइयेगा। मनमें मान रखा है कि 'अमुक वस्तु मेरी है'; इसीलिये उसके बनने-बिगड़नेकी चिन्ता होती है। यदि सचमुच किसीका मन यह स्वीकार कर ले कि यह 'सब उनका है' तो फिर सांसारिक दृष्टिमें जो चीज बिगड़ती हुई दीखेगी, उसके सम्बन्धमें भी वह ठीक अनुभव करेगा कि वह बिगड़ नहीं रही है; क्योंकि कोई भी बुद्धिमान अपनी चीजको बिगाड़ता नहीं, नष्ट नहीं करता। यदि बिगाड़ता भी है तो उसका रूप और भी सुन्दर बनानेके लिये बिगाड़ता है। भगवान् तो बुद्धिमानोंकी बुद्धिकी जो चरम सीमा है, उससे भी अनन्तगुना अधिक बुद्धिमान हैं। वे भला, व्यर्थ ही अपनी चीज कैसे बिगाड़ेंगे ? वे बिगाड़ नहीं रहे हैं--वे तो बना ही रहे हैं, और भी सुन्दर बना रहे हैं। सच मानिये, किसी प्रकार इस वास्तविक स्थितिकी एक किरणकी भी झाँकी यदि कोई कर पाये तो दुःख उसके जीवनसे सदाके लिये नष्ट हो जाता है। जबतक यह अनुभव नहीं हो, तबतक अगणित संतोंके अनुभवपर विश्वास करके ऐसी भावना कीजिये कि यहाँ सब मंगल-ही-मंगल हो रहा है। श्रीकृष्ण यदि *'मृत्युः सर्वहरश्चाहम्'* की घोषणा करते हैं तो विपत्ति जो मृत्युके ही भाई-बन्धुओंमेंसे एक है, वह भी वे ही हैं। विपत्ति अर्थात् मनके प्रतिकूल परिस्थिति भी श्रीकृष्ण ही हैं। रूप भयानक है; पर यदि पत्नी समझ ले कि मेरे नाथ ही मेरे पास ऐसा रूप धरकर आये हैं तो वह उस समय भी उनका स्वागत करेगी; क्योंकि पतिव्रता रूपसे प्यार नहीं करती,

पतिसे प्यार करती है। अतएव मनके प्रतिकूल किसी भी परिस्थितिमें अपने प्रियतम प्रभुका दर्शन करनेका अभ्यास कीजिये। वे ही हैं, सचमुच वे ही हैं; आपसे अपनेको उस रूपमें छिपाये हुए आते हैं, इसलिये आप डर जाते हैं। अनन्त संतोकी बातें झूठ नहीं हैं, वे त्रिकाल सत्य हैं। आप उस रूपमें देखकर उनका स्वागत करें; फिर उनसे रहा नहीं जायगा। उस भयावह रूपसे इतने मधुर रूपमें परिणित हो जायँगे कि आप ही हँसने लगियेगा। अभी भी होता तो वही है। संसारमें आजतक किसीके जीवनमें ऐसी कोई घटना नहीं हुई, जिसका परिणाम मंगलमय नहीं हुआ हो। पर भयानक रूपमें जब भगवान्‌का प्रकाश होता है, तब लोग रोते हैं; वही मधुर रूपमें परिणित होता है, तब हँसते हैं। पर दोनों समय इस बातको नहीं जानते कि इन दोनों रूपोंके भीतर कौन छिपा है। भक्त उसे जानता है और उस छिपे रहनेवालेसे जो उसका सम्बन्ध है, उसे भी जानता है। इसलिये उसे दुःख नहीं होता। भोले भक्त डर भी जाते हैं, पर उस समय भी वे अपने स्वामीको ही याद करते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टिमें उनके लिये और कोई भी सहायक नहीं होता और स्वामीको याद करते ही, भले ही स्वामी अपने विपत्तिकी पोशाक तुरंत न बदलें, वे मनमें ऐसा भाव कर देते हैं, जिससे भय जाता रहता है। अतः किसी भी प्रकार हो, अपनेको उनसे जोड़ लें; जुड़े हुए तो हैं ही, इसे अनुभव करें। वे आपके हैं, आप उनके हैं, उनकी सब चीजें आपकी हैं——आपकी सब चीजें उनकी हैं——इसको मान लें।

बस, तीन ही बातें

जीवनका अनमोल समय जितना भी बच रहा है, सब–का–सब प्रिया–प्रियतमके चरणोंमें समर्पित होकर ही बीते——यह उद्देश्य आप याद रक्खें। उद्देश्य यदि स्मरण रहा तो सम्भवतः जीवनके अन्तिम श्वासतक दया करके वे आपको अपने–आप स्वीकार कर लें। आपसे बस तीन बातें ही कहनी हैं——

(१) उनकी कृपाकी आशा।

(२) जीभसे नामका निरन्तर अभ्यास।

(३) भागवतका पाठ।

———इन्हें मत छोड़ियेगा; फिर जीवनकी धारा किसी दिन एकाएक एक क्षणमें ही पलट जायगी।

मन प्रिया–प्रियतमका धाम बन जाय, यह चेष्टा कीजिये

यह सत्य है कि शरीर तो एक दिन जायगा ही; पर शरीर भी आपका नहीं है। यह तो प्रिया–प्रियतमकी सम्पत्ति है। उन्होंने यह आपको दिया है। यदि आप इसे बना नहीं सकते तो जान–बूझकर बिगाड़नेका अधिकार भी आपको नहीं है। अपनी जानमें स्वास्थ्यके नियमोंकी अवहेलना करना ही इसे बिगाड़ना है। यह नहीं होना चाहिये। साथमें यह भी नहीं होना चाहिये कि शरीरकी सेवामें ही मन फँसा रहे। मन तो प्रिया–प्रियतमका धाम बन जाय, यह चेष्टा होनी चाहिये। जिस दिन मन सर्वथा प्रिया–प्रियतमका धाम बन जायगा, उस दिन तो उस शरीरकी स्मृति ही मिट जायगी। पर जबतक ऐसा सौभाग्य नहीं होता, तबतक मुख्यवृत्ति भजनकी ओर, एवं गौणवृत्ति भजनके साधनरूप शरीरकी ओर रखकर ही आगे बढ़ना चाहिये। इससे उन्नति ही होगी।

* *

प्रिया–प्रियतमने अनन्त दया करके जिन्हें व्रजमें निवास दे दिया—समस्त सुखकी खान व्रजभूमि जिनको मिल गयी, उन्हें चाहिये कि व्रजभूमिमें, व्रजराजदुलारेमें, वृषभानुदुलारीमें मनको रमा दें। सच्ची बात है, व्रजके समान सुख और कहीं भी नहीं है—

कहाँ सुख व्रज कौ–सौ संसार।
कहाँ सुखद बंशीबट, जमुना, यह मन सदा विचार।।
कहँ बनधाम, कहाँ राधासँग, कहाँ संग ब्रज–बाम।
कहँ रस–रास बीच अंतर सुख, कहाँ नारि तन ताम।।
कहाँ लता, तरु–तरु प्रति बूझनि, कुंज–कुंज नव धाम।
कहाँ बिरह–सुख बिनु गोपिन सँग, सूरस्याम मन काम।।

शारीरिक सुख एवं नामकी चिन्तासे सर्वथा उपराम हो जाइये

बार–बार यह निश्चय करना चाहिये कि इस जीवनको प्रभुके चरणोंमें समर्पित करना है; इसीमें इस जीवनकी सार्थकता है। अतिशय गम्भीरतासे विचारना चाहिये कि भोगोंमें सुख नहीं; हमें सुख दीखे भले ही, पर इनमें सुखकी गन्ध भी नहीं है। भगवान् स्वयं कहते हैं—

'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।'

(गीता ५। २२)

इस प्रकार बार–बार विचार करके मन जिस–जिस विषयकी ओर जाय, वहाँ–वहाँसे उसे हटाकर नित्य आनन्दमय प्रभुमें लगाना चाहिये। दो बातका मोह मनुष्यको अधिक होता है––पहला शारीरिक सुखका एवं दूसरा नामका। शरीरको मनचाहा आराम मिलता रहे एवं लोगोंमें मेरा खूब सम्मान हो, खूब आदर हो—ये दो मोह परमार्थके मार्गमें बढ़नेवाले पुरुषोंमें भी देखे जाते हैं। पर यदि सचमुच हमलोग थोड़ा विचार करें तो यह ठीक पता चल सकता है कि कितनी अनित्य एवं असार वस्तुके लिये हमलोग दुर्लभ मनुष्य–जीवन बर्बाद करते हैं। थोड़ी देरके लिये मान लें—आपकी लोगोंमें खूब प्रसिद्धि हुई लोगोंने आपकी बड़ी तारीफ की, आप बड़े इज्जतदार समझे जाने लगे; विवाह–शादीमें ये बड़े खुले दिलसे खर्च करते हैं—इस प्रकार लोगोंने वाहवाही की; ये बड़े विद्वान हैं, व्यवहारकुशल हैं––इस प्रकार जहाँ भी जायँ वहीं प्रशंसा हो; उससे आप भी प्रसन्न हो सकते हैं। लेकिन सोचें—वस्तुतः आपके नामकी तारीफसे आपका क्या बनता है। इसके पहले अनन्त जन्मोंमें अनन्त नाम आपके हो गये हैं। पता नहीं आपका कितना सुयश गाया जा चुका है, पर आज आपको उनकी स्मृति भी नहीं है। इसी प्रकार मृत्यु इस नामसे भी आपका सम्बन्ध अवश्य ही तोड़ देगी और उस समय आप सर्वथा इस नामको भूल जाइयेगा। शरीरकी भी यही दशा है। इसे कितना भी आराममें रखिये, पर इससे सम्बन्ध टूटना अनिवार्य है। इसके पहले भी तो शरीर था और वह छूटा था। वह सुखसे था अथवा दुःखसे था, इस बातको लेकर अब आपको चिन्ता नहीं होती। इसी तरह इस शरीरकी भी इसके छूटनेके बाद सर्वथा विस्मृति हो जायगी। अतः बुद्धिमानी इसीमें है कि इन दोनों वस्तुओंसे मन हटाया जाय।

नाम–रूपके मोहकी परिस्थिति संसारमें सभीके सामने आती है। आपके सामने भी ऐसी परिस्थितियाँ आती होंगी, जिससे आप चिन्तित होते होंगे कि अब तो इज्जत गयी तथा खाने–पीनेको भी नहीं रहेगा। आर्थिक प्रश्नको लेकर आपके मनमें इस प्रकारकी चिन्ता होनी सम्भव है। तथा कुछ देरके लिये ही सही, भजनको गौण बनाकर, इज्जतकी रक्षा एवं शरीर–निर्वाहको मुख्यता देकर उसके लिये चेष्टा करते होंगे। पर इन परिस्थितियोंकी उपेक्षा करें। इनमें जरा भी सार नहीं है। बस, जैसा

भगवान्ने रच रखा है, वह हो जायगा—ऐसा दृढ़ निश्चय एवं विश्वास करके सर्वथा उपराम होकर आत्माके कल्याणमें मन लगाना चाहिये।

प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिको सहर्ष स्वीकार करें

जगत्के बहुत थोड़े प्राणी भगवान्की दया चाहते है। वे चाहते हैं—अनुकूलता। लेकिन यह बात निरन्तर ध्यानमें रखनी चाहिये कि भगवान्की दया अनुकूल एवं प्रतिकूंल दोनों अवस्थाओंमें रहती है। जो केवल अनुकूलता चाहते हैं, वे भगवान्की आधी, आंशिक, असम्पूर्ण दयाका ही ग्रहण चाहते हैं। अतः बुद्धिमानी इसी बातमें है कि प्रियतम भगवान्की भेजी हुई प्रत्येक अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितिको सहर्ष स्वीकार किया जाय। इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि भगवान् जब निश्चय दया-ही-दया करेंगे, तब हम उनके प्रत्येक विधानके सामने अपना सिर झुका दें। ऐसी बात आचरणमें आ जानी अवश्य ही कठिन है, किंतु भगवान्की दयाका आश्रय लेकर ऐसा बननेकी चेष्टा करनी चाहिये। वे दयामय हैं; यदि हमारी नीयत शुद्ध हो तो वे अपनी दयासे अवश्य ऐसा भाव बना देंगे।

जहाँतक बने, भगवान्का अधिक-से-अधिक नाम लेते रहें। यह अगर होता रहा तो साधन-पथपर अपने-आप बढ़ जाइयेगा। भगवान्के नामकी महिमा अनन्त, अपार है।

भगवान्का नाम लेते जाइये

एक लोहा पूजामें राख्यौ, एक घर बधिक परौ।
पारस गुन-अवगुन नहीं चितवै, कंचन करत खरौ।।

इस पदके अर्थपर विचार कीजिये—पारस स्पर्श होते ही लोहेको सोनेमें बदल देता है; वह नहीं देखता कि अमुक-अमुक लोहा कहाँ-कहाँ किस-किस उपयोगमें आ रहा है। भगवान्के नामकी उपमा पारससे दी जाती है, पर मेरी समझमें यह उपमा भगवान्के नामके लिये सर्वथा तुच्छ है; क्योंकि पारस जड़ पत्थर है तथा भगवान् का नाम चिन्मय है। दूसरे नाम और नामीमें अभेद हैं। यद्यपि यह बात बहुत आगे चलकर समझमें आती है, तथापि सिद्धान्ततः यंह सर्वथा सत्य है कि आपके मुखसे निकलता हुआ प्रत्येक नाम आपको भगवान्से संयुक्त करा देता है। बीचके कुछ आवरण रहनेके कारण ही भगवान्के स्पर्शका अनुभव नहीं होता। लोहेका एक गोला पारसको स्पर्श तो

करता है, पर लोहेके गोलेपर मिट्टीका पर्दा पड़ा हुआ है, प्रत्येक रगड़में मिट्टी छिलकर गिर रही है। शुद्ध लोहेके एक कोनेको भी मिट्टीरहित होकर निकलने दीजिये, फिर तत्क्षण लोहा सोना हो जायगा। अर्थात् नाम स्मरणसे आपके अन्तःकरणका मल झड़ रहा है, शुद्ध हुए अन्तःकरणसे जिस दिन एक नामका भी स्पर्श हुआ कि भगवान् सामने आ जायँगे। अतः लेते जाइये भगवान्‌का नाम और बिना किसी घबराहटके बढ़ चलिये। प्रभु सहायक हैं।

सब प्रकारसे भगवान्‌की शरणमें जाना चाहिये

भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये; फिर जो हो, कोई चिन्ता नहीं। भगवान् मंगलमय हैं, मंगल ही करेंगे। मान लें आप बीमार चल रहे हैं और आपके मरनेमें कल्याण है तो आप कभी भी नहीं बच सकते। यदि जीवनदान मिलनेसे आपके जीवनमें सुधार होना संभव होगा तो भगवान् आपकी प्रार्थना अवश्य सुन लेंगे। उस अवस्थामें एक मारकेश क्या, लाखों मारकेश उनकी दयासे टल जायँगे और आपकी आयु बढ़ जायगी। उनकी दयाके बिना उनके विधानमें कोई हेर–फेर नहीं हो सकता। अतः सब प्रकारसे उनकी शरणमें जाना चाहिये।

प्रत्येक प्राणीका प्रारब्ध उसके साथ है

बहुत बार आपके मनमें यह बात आती होगी––'यह मेरा कर्तव्य है, इसका पालन करना हमारा धर्म है; अमुक हमारा पुत्र है, इसको सुयोग्य बनाना हमारा धर्म है; हमारे ऊपर इतने प्राणी अवलम्बित है, उन सबका भार हमारे ऊपर है––इस प्रकार कर्तव्यपालनकी चिन्ता मनको अशान्त तथा भजनको गौण बनाती होगी। पर कर्तव्यपालनकी चिन्तासे भजनको गौण बनाना भारी भूल है। यह निश्चय समझें कि प्रत्येक प्राणीका प्रारब्ध उसके साथ है, उसे आप घटा–बढ़ा नहीं सकते। अतः उसके लिये चिन्तित होना भूल है। आपका काम इतना ही है कि आप अपनेको निमित्त बनाकर सर्वथा शान्तचित्तसे सबके लिये हितमूलक चेष्टामात्र करें। होगा तो वही, जो भगवान्‌का रचा हुआ है––

'होइहि सोइ जो राम रचि राखा।'

'रचि राखा' से गोस्वामीजीने स्पष्ट बता दिया है कि सब कुछ पहलेसे तैयार रहता है। 'फिल्म' की तरह रील घूमनेकी देर है। रील घूमते ही दृश्य सामने आ जायगा।

भगवान्‌के यहाँ अवश्य सुनाई होती है

सत्संग करनेसे मनुष्यको थोड़ी या बहुत अवश्य शान्ति मिलती है। श्रद्धा जिस दिन पूरी हो जायगी, उसी दिन भगवान्‌की दया एवं भगवान्—दोनों ही प्रत्यक्ष हो जायँगे। दयामयसे प्रार्थना करनी चाहिये—'प्रभो ! मेरे अन्तःकरणमें शुद्ध दया एवं प्रेमका संचार कीजियें।' वे अतिशय दयालु हैं। भक्तको कभी निराश नहीं करते। उनके यहाँ विलम्बसे या जल्दी अवश्य सुनाई होती है।

अपने लिये भजन आपको ही करना पड़ेगा

प्रतिदिन आयु कम हो रही है, मृत्यु निकट आ रही है—इसे मत भूलें। मृत्युके बाद आपके न रहनेपर भी यहाँ किसी काममें कोई अड़चन न होगी, यह बिल्कुल ठीक मानिये। आप देखते हैं—परिवारमें किसी प्रमुख व्यक्तिकी मृत्युके समय कितना हाहाकार मचता है, पर पीछे सब अतीतके गर्भमें दब जाता है। उनका अभाव कितने आदमियोंको खटकता है। यही दशा हम सबकी होगी। लोग भूल जायँगे और जगत्‌का काम ठीक जैसा चलना चाहिये, वैसा चलता रहेगा। पर आपके बिना एक काम नहीं ही होगा। आपके लिये भजन आपको ही करना पड़ेगा। इस कामकी पूर्ति आपको ही करनी पड़ेगी। इसलिये खूब गम्भीरतासे मनको, जो यहाँ फँस रहा है, यहाँसे निकालकर आगे सुधारमें लगाइये। भगवत्प्राप्तिके सिवा कोई ऐसी स्थिति नहीं है कि जो निर्भय हो, जहाँसे पतनका भय न हो। सर्वत्र अशान्ति है, सर्वत्र भय लगा हुआ है। इसलिये उस स्थितिको पानेमें ही हमारी सार्थकता है, जिसे पाकर अशान्ति मिट जाय—अनन्त शान्ति मिल जाय, सदाके लिये हम सुखी हो जायँ।

चेष्टा रखिये—प्रति पाँच मिनटपर भगवच्चरणोंकी स्मृति हो ही जाय

'...................'की मृत्युका समाचार सुनकर बहुत विचार हुआ; पर

वस्तुतः यह तो एक दिन सभीके जीवनमें होना अनिवार्य है। अतएव इस घटनासे हम सबको शिक्षा अवश्य लेनी चाहिये। वे शायद दो महीने पहले यह कल्पना भी नहीं करते होंगे कि 'मुझे इतनी शीघ्रतासे यहाँसे जाना है।' ऐसे ही क्या पता, हमलोगोंमेंसे कब किसको यहाँसे एकाएक चला जाना पड़े। अतः समान बाँधकर तैयार रहना चाहिये। उस यात्रामें एकमात्र सामान है—मनके संस्कार। बस, इतना ही सामान जायगा, बाकी सब यही रह जायगा। तथा संस्कारोंमें भी सर्वोत्तम संस्कार हैं—भगवद्भजनके, भगवत्स्मरणके। इनको जिसने बटोरा, वही चतुर है, वही पण्डित है; अन्यथा वह ठगा गया, इसमें कोई संदेह नहीं। अतः इन बातोंपर विश्वास करके निरन्तर भगवच्चरणोंको याद रखनेका आपको दृढ़ नियम लेना चाहिये। निरन्तर न हो तो कम-से-कम प्रति पाँच मिनटपर तो स्मृति हो ही जाय। इस बातमें चेष्टा एवं तीव्रता लानेकी जरूरत है, फिर सफलता मिलेगी ही।

किसी भी सांसारिक उलट-फेरसे चित्तको उद्विग्न मत होने दीजिये

कर्तव्यका पालन करना अच्छा है;

ए पर जिस कर्तव्यपालनसे हम भगवान्‌से विमुख होते हैं, वह कर्तव्य नहीं है; हमारी आसक्तिवश वह हमें कर्तव्य दीख रहा है। यह कर्तव्यके जाँचकी कसौटी है, अतः इस कसौटीपर जाँच करके ही कर्तव्यपालनमें लगना चाहिये। भूल भी कभी हो सकती है; पर भगवान्‌का आश्रय करके अपनी बुद्धिसे बार-बार सोच लेना चाहिये, फिर कृपामय प्रभु सँभाल लेते हैं।

संक्षेपमें, किसी भी सांसारिक उलट-फेरसे चित्तको उद्विग्न मत होने दीजिये एवं सांसारिक उन्नतिकी चेष्टासे सर्वथा उपराम हो जाइये। पेट भरनेके लिये भोजन और शरीर ढँकनेके लिये वस्त्रकी आवश्यकता है; इनके लिये मामूली चेष्टा होनी चाहिये, फिर प्रभुके विधानके अनुसार आवश्यकताभर ये दोनों चीजें मिल ही जायँगी। इस सम्बन्धमें यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि आपको जितनी मिलेगी, ठीक-ठीक उतनीकी ही आपको आवश्यकता है। आपको यह दीख सकता है कि आवश्यकतासे कम मिल रहा है, पर ठीक मानिये कि दयामय प्रभु आवश्यकतासे कम नहीं दे सकते।

शरीरसे भी उपराम ही रहना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं है कि भोजन कम हो जाय अथवा जाड़ेके दिनोंमें कपड़ा नहीं पहना जाय। यथायोग्य शरीरकी सेवा भी होनी चाहिये, पर इसमें मन नहीं फँसे। शरीरमें

व्याधि हो जानेपर चित्त उद्विग्न होने लगता है, पर ऐसे अवसरपर धैर्यके साथ पीड़ाको सहन करना चाहिये। इससे पूर्वके कर्मोंका बोझ कम होगा आप हल्के होंगे—यह बात तो थोड़ी भी शास्त्रपर श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति अनुभव कर सकता है।

सुखकी भ्रान्तिमें जीवनको बर्बाद करना भारी भूल है

ऐसा सुन्दर मनुष्यजीवन व्यर्थ न हो जाय, इस विषयमें खूब सावधान रहें। वास्तविक सुखकी इच्छा जाग्रत हो, इसके लिये बुद्धि पलटनेकी जरूरत है। पहले मनुष्यको विश्वास करके ही चलना पड़ता है, फिर अनुभव होनेपर तो डिगना असम्भव है। निश्चित रूपसे विश्वास कीजिये—इस संसारमें सुखका लेश भी नहीं है। भगवान्‌को जैसे मानते हैं, माननेकी चेष्टा करते हैं, वैसे ही भगवद्वचनोंको भी माननेकी चेष्टा कीजिये—*'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'* (गीता ९।३३) 'यह संसार अनित्य है, इसमें सुख है ही नहीं; सुख चाहते हो तो मेरा भजन करो—भगवान्‌के ये वचन मिथ्या न हुए हैं न होंगे। सुखकी भ्रान्तिमें जीवनको बर्बाद करना भारी भूल है। इससे भारी भूल और हो नहीं सकती।

देहसे, परिवारसे, जिन्हें भी आप अपना मानकर भगवान्‌को भूल जाते हैं, उन सबसे वियोग अनिवार्य है। इसके पहले भी आपका एक परिवार था; पर अब स्मृति भी नहीं है कि उस परिवारके लोगोंकी दशा क्या है। बेचारे भूखों भी मर रहे होंगे या मर गये हों, तो भी आपको उनकी चिन्ता नहीं होती। इसी प्रकार इन सबको भी आप अवश्य भूल जायँगे। इसलिये अभीसे उनकी चिन्ता करना छोड़ दीजिये। ये सब प्रभुकी सम्पत्ति हैं; आगे-से-आगे सबके 'योगक्षेम'का यथोचित प्रबन्ध लगा हुआ है। आप निमित्तमात्र बनते हैं। अतएव वे जैसी प्रेरणा करें, उसके अनुसार चलें; पर ध्यान रखें, पापसे संयुक्त स्फुरणाओंको उनकी प्रेरणा मत मानियेगा। यदि एक क्षणके लिये भी किसी भी असत्यका आश्रय परिवारके योगक्षेमके नामपर आपके द्वारा होता है तो समझ लें, मन धोखा दे रहा है। भूखसे तड़पकर मर जाना अच्छा है—इस मृत्युसे अत्यन्त सुन्दर भविष्यका निर्माण होगा; पर पापके द्वारा जीवन-निर्वाहकी चेष्टा ठीक नहीं है। किसी भी पापका परिणाम अवश्य ही अशुभ है।

पैसेका सम्बन्ध, पैसेकी चाह और पैसेमें सुख-बुद्धि जबतक है, तबतक बहुत ही सावधान होनेकी जरूरत है। प्रभुकी कृपाका अवलम्बन रहे और मुँहसे

नामजप निरन्तर होता रहे—ऐसी चेष्टा करनेपर उत्तरोत्तर बुद्धि–मन पवित्र होंगे और तभी जगत्‌में सुख–बुद्धिका पूर्णतया अभाव होगा। इसलिये अधिक–से–अधिक नाम लें।

सर्वथा नामके आश्रित हो जाइये

अनन्त शान्ति मिल जाय, सदाके लिये हम सुखी हो जायँ—इसके लिये अनेक मार्ग हैं; पर उनमें सबसे सुन्दर साधन हैं—भगवान्‌के नामकी निरन्तर रटन। भागवतके द्वितीय स्कन्धमें सबसे पहले शुकदेवजी महाराज अपना हृदय खोलते हुए कहते हैं—

तन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्।।

(भाग० २। १। ११)

'जो लोग संसारमें दुःखका अनुभव करके उससे विरक्त हो गये हैं और निर्भय मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंके लिये तथा योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि वे भगवान्‌के नामोंका प्रेमसे संकीर्तन करें।'

इन वचनोंपर विश्वास कीजिये और सर्वथा सब प्रकारसे नामके आश्रित हो जाइये। पापके बुरे संस्कार बाधा देते हैं; इसलिये जैसी चाहिये, वैसी रुचि नहीं होती। पर जैसे रोगी दवा समझकर कड़वी दवाका भी सेवन करता है, वैसे ही मनको प्रिय न लगनेपर भी हठसे नामजप करें। जैसे–जैसे पापोंके संस्कार मिटेंगे, वैसे–वैसे प्रियता बढ़ने लगेगी। बिलम्ब मत कीजिये। इसमें प्रमाद करना बड़ी भारी भूल है। यहाँकी उन्नति–अवनति कुछ भी सार नहीं हैं। बहुत दृढ़ होनेकी जरूरत है, अन्यथा पश्चाताप होगा। सब कीजिये, ज्यों–का–त्यों ऊपरसे रहिये; पर भीतरसे बदल जाइये। यह बात अपने–आप होने लगेगी, यदि तत्परतासे नामकी रटन होने लगे। अतएव वाणीका पूरा संयम करके आवश्यकताभर बोलनेके बाद बाकी कुल समय मशीनकी तरह नाम लेनेमें बीते। इसमें लाभ–ही–लाभ है।

भगवान्‌का भरोसा करके शास्त्र एवं महापुरुषोंद्वारा कथित बातोंको काममें लाइये

अपने प्रिय शिष्य सनातनको शिक्षा देते हुए महाप्रभु चैतन्यने

भगवान्‌के स्वभावके सम्बन्धमें कहा है—

भक्तवत्सल कृतज्ञ समर्थ वदान्य............

श्रीकृष्ण भक्तवत्सल हैं। जिस प्रकार माता अपने अबोध शिशुकी करुण पुकार सुनकर दौड़ पड़ती है, धूलसे लथपथ बच्चेके मैलेपनको नहीं देखती, धूल साफ किये बिना ही उसे गोदमें उठा लेती है एवं स्तन्यपान कराकर उसे सान्त्वना प्रदान करती है, उसी प्रकार दयामय भगवान् अपने भक्तकी करुण पुकार सुनकर उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं, अत्यन्त अधम भक्तकी असीम पापराशिकी ओर भी नहीं देखते। पाप धोनेके पहले उसे अपनी गोदमें उठा लेते हैं और अपना चरणामृत पान कराकर उसकी त्रिताप-ज्वाला शान्त कर देते हैं। प्रश्न होता है कि 'भक्त होनेपर तो यह बात है ही, किंतु मैं भक्त कहाँ हूँ ? माँ बच्चेकी सच्ची पुकार सुनती है, मैं तो कातरकण्ठसे भगवान्‌को पुकार भी नहीं सकता। मेरी आवाज ही उनके पास कैसे पहुँचेगी ?' महाप्रभु कहते हैं 'वे कृतज्ञ हैं। अवश्य ही तुम्हारी पुकार सच्ची नहीं है, उसमें इतना बल नहीं है कि अपनी शक्तिसे वह भगवान्‌को तुम्हारी ओर आकर्षित कर सकें; किंतु वे तुम्हारी प्रत्येक चेष्टाको जानते हैं। तुम्हारी क्षीण-से-क्षीण आवाज भी उनके पास पहुँच जाती है। घबराओ नहीं, तुम्हारी यह क्षीण पुकार ही उन्हें बुला लेगी।' कोई कह सकता है—'भगवान् भक्तवत्सल हैं, कृतज्ञ हैं; किंतु क्या वे मुझ अनधिकारीको मनोवाञ्छित फल दे सकेंगे ?' इसपर महाप्रभु कहते हैं—'वे समर्थ हैं, उनके लिये अधिकारी और अनधिकारीका प्रश्न नहीं बनता।' एक प्रश्न और उठ सकता है—'भगवान् भक्तवत्सल हैं, कृतज्ञ हैं, समर्थ हैं; किंतु क्या वे मुझ-जैसेपर भी कृपा दरसा सकेंगे ?' इसपर प्रभु कहते हैं—'वे वदान्य हैं।' संसारमें देखा जाता है कि एक धनी एक गरीबकी ओर करुणाभरी दृष्टि रखता है, वह उस गरीबकी हालतको भी अच्छी तरह जानता है, उसकी बुरी दशाको दूर करनेमें भी समर्थ है, किंतु कृपणतावश गरीबकी सहायता नहीं करता। पर भगवान् ऐसे नहीं हैं। वे अपना सर्वस्वतक दे डालते हैं। उनका प्रतिदान मामूली नहीं है। शास्त्रका बचन है—

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलकेन च।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः।।

महाप्रभुकी यह शिक्षा ध्यानमें रखनी चाहिये। कोई विश्वास करे चाहे नहीं; किंतु शास्त्रकी, महापुरुषोंकी उक्तियाँ बिल्कुल उसी रूपमें ठीक हैं, जिस रूपमें कही गयी हैं। श्रद्धा नहीं रहनेके कारण ही मनुष्य दुःख

उठाता है। श्रद्धा न हो भी भगवान्‌का भरोसा करके शास्त्र एवं महापुरुषोंद्वारा कथित बातोंको काममें लाना चाहिये। वस्तुगुण अन्तमें अपने-आप श्रद्धा उत्पन्न कर देगा।

भगवान्‌की कृपासे ही महापुरुषोंकी कृपाका अनुभव होता है

महापुरुषोंकी दया कितनी विशाल होती है, इसका पूर्ण अनुभव तो अन्तःकरणके पूर्णतया शुद्ध हो जानेपर ही होता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य भगवान्‌के राज्यमें प्रवेश करता जाता है, उसका अन्धकार दूर होता जाता है। सूर्यके पूर्णतया उदय होनेपर ही प्रकाशमें स्थित वस्तु साफ दीखती है। इसी प्रकार महापुरुष क्या तत्त्व है, यह बात भगवत्प्राप्ति होनेके बाद ही मालूम होती है। अतएव महापुरुषोंके प्रति जितनी भी श्रद्धा कर सकें, वह मेरी समझमें थोड़ी ही रहेगी।

भजन अधिक-से-अधिक हो, इसका पूर्ण ध्यान रखेंगे। नहीं तो आज जो आपका अन्तःकरण ऐसा सुन्दर निर्णय दे रहा है—महापुरुषोंकी दयाका अनुभव करता है—वह कल करना बंद हो जा सकता है। भगवान्‌की कृपासे ही महापुरुषोंकी कृपाका अनुभव होता है। अतः भगवान्‌की कृपाका अनुभव बढ़ते जानेके लिये निरन्तर भजन होना चाहिये। महत्कृपा अपने-आप यथोचित् समयपर प्रकाशित होती रहेगी।

महायात्राका सच्चा पाथेय है—भगवद्‌भजन

उस दिन हठात्..........के जीवनका अन्त हो गया। पता नहीं वे इस समय कहाँ होंगे। परंतु इतना तो हम सभीके लिये प्रत्यक्ष है कि यहाँकी किसी भी वस्तुसे अब उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। अब वे मात्र इने-गिने अपने कुछ सम्बन्धियोंकी स्मृतिके विषय रह गये हैं। समय इस स्मृतिको भी दूर कर देगा। यही दशा हम सबकी होनेवाली हैं। यह बिल्कुल निश्चित हे कि एक दिन हमारा भी यहाँसे, यहाँसे सम्बन्धित व्यक्तियोंसे, यहाँके कार्य-कलापसे—इतना ही नहीं, यहाँके किसी भी पदार्थसे बिल्कुल ही सम्बन्ध नहीं रहेगा। इस प्रकार यदि हम विचार करें तो वास्तवमें इस जगत्‌में न तो कोई किसीका मित्र है न कोई किसीका शत्रु है, न कोई अपना है न कोई पराया है। जिसको भगवान्‌ने जो अभिनय करनेका भार सौंपा है, वह

वही कर रहा है। भ्रमवश हमलोग इस खेलके रहस्यको न जानकर दुःख उठा रहे हैं। कोई जान ही नहीं सकता, यह भी एक भगवान्‌की लीला ही है। हाँ, जिसे भगवान् जनाना चाहते हैं, वही जान पाता है और उसे फिर किसी प्रकारका दुःख नहीं रहता। अनेक महात्माओंने इसका अनुभव किया है और आज भी जो ऊँचे महापरुष हैं, वे ऐसा ही अनुभव करते हैं। प्रश्न होता है—ऐसी स्थितिमें क्या किया जाय ? इसका उत्तर संक्षेपमें यही है कि इस विश्व-प्रपञ्चके सूत्रधार श्रीकृष्णकी शरण ली जाय। फिर जो कुछ उचित अभिनय करना होगा, वे करायेंगे और हमलोग उन्हें देख-देखकर मुग्ध होते रहेंगे। सार बात इतनी ही है कि आप सचमुच जी-जानसे वर्तमान प्रापञ्चिक जगत्‌से मनको हटानेकी चेष्टा करें। यहाँकी अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियोंमें कुछ रक्खा नहीं है। आवश्यकता है यावन्मात्र पदार्थोंसे ममता हटाकर भगवान्‌में ममता करनेकी। इसीमें बुद्धिमानी है। स्मरण रक्खें—सबके लिये समय निश्चित हो चुका है, जब कि सबको सब कुछ छोड़कर चला जाना होगा। उस यात्रामें सच्चा पाथेय है—भगवद्भजन। बस, इसको मुख्य कर लें, और सबको गौण।

आप इतना विश्वास कर लें—'जब मैंने कम-से-कम वाणीके ही द्वारा भगवान्‌की शरण ले ली है, तब चिन्ताका पात्र कैसे हो सकता हूँ। अब भगवान् मुझपर दया करके एक दिन अपनी असीम अनुकम्पाका अनुभव अवश्य करा देंगे ही।' जीवनमें बहुत-से नाजुक अवसर आते हैं और मनुष्य विपत्तियोंसे घबराकर भगवान्‌पर विश्वास शिथिल कर लेता है; पर उसके विश्वास शिथिल करनेपर भी जो वस्तुस्थिति है, उसमें थोड़े ही हेर-फेर होगा। आप अच्छी तरह विश्वास कर लें कि जिस सूर्यमें यह शक्ति नहीं है कि वह किसीको अन्धकारका दान कर सके, उसी तरह भगवान्‌में यह शक्ति नहीं कि वे किसीपर अकृपा कर सकें। यह बात विनोदकी-सी है, किंतु भगवत्कृपाको किसी अंशमें समझनेके उद्देश्यसे लिखी गयी है। दयामयका कोई भी विधान मंगलसे रहित हो ही नहीं सकता। मंगलमयसे निकली चीज अमंगल कैसे हो सकती है। सम्भव है, आपके सामने लौकिक दृष्टिसे ऐसी परिस्थिति आ जायँ, जब आपको दर-दरका भिखारी बनकर मारा-मारा फिरना पड़े। लेकिन भगवान्‌के इस भीषण विधानमें क्या है, जानते हैं ? अगर समझमें आ जाय तो आपको भी दुःख नहीं होगा। देखें, यदि ऐसा हुआ तो समझना चाहिये कि जगन्नियन्ताके पास पहुँचनेमें अब आपको विलम्ब नहीं है।

हम देखते हैं—भूलसे मनुष्य अत्यन्त भयानक चीजको सुखदायक समझकर उसे पाना चाहता है; किंतु दयामयका विधान कुछ ऐसा होता है कि मनुष्य अपने प्रयत्नमें सफल नहीं होता सकता। भगवान् उसकी तरह अबोध नहीं हैं कि उसे मनचाही वस्तु देकर उसका जीवन बर्बाद कर दें। अतएव— *'जाही बिधि राखै राम, ताही बिधि रहिये।'* अपना योगक्षेमका भार जगन्नियन्ताके हाथ सौंपकर सदाके लिये निश्चिन्त हो जाइये। लोगोंकी दृष्टिमें दीन-हीन होनेपर भी आप शाहंशाह रहेंगे।

एक ही बात

एक ही बात है—नाम-जप करें। अन्तःकरण पवित्र करने कि, भगवद्दया अनुभूति करनेकी इससे सुलभ और शीघ्रफलप्रद साधन मेरी दृष्टिमें और नहीं है।

जब भगवान्का आह्वान होता है, तभी भजनकी ओर प्रवृत्ति होती है

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्।।

(श्रीमद्भा० १०। १४। ५८)

'जिन्होंने पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलरूप नौकाकी, जो महापुरुषोंका आश्रयरूप है, शरण ली है, उनके लिये यह संसार-समुद्र बछड़ेके खुरके समान हो जाता है और उन्हें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। जो विपत्तियोंका पद है, उस संसारमें उन्हें कभी नहीं आना पड़ता।'

आप कहेंगे, 'हमलोग तो समाश्रित नहीं हैं।' बिल्कुल ठीक है। किंतु एक बात ध्यानमें रखियेगा। यदि आपके जीवनमें 'समाश्रित' होना नहीं होता तो आप भजनकी ओर लगते ही नहीं। जब भगवान्का आह्वान होता है, तभी भजनकी ओर प्रवृति होती है। उनका यह आह्वान पूर्ण होता है। एक समय ऐसा आयेगा, जब वे आपको 'समाश्रित' कर लेंगे। यह केवल किताबी बात नहीं, ध्रुव सत्य है।

बस, भगवान्का नाम लेते जाइये

हम सब श्रीभगवान्की असीम दयामें अवगाहन कर रहे हैं, किंतु लीलामयकी यह एक लीला ही है कि सबको एक साथ अपनी अहैतुकी

दयाका परिचय नहीं देते। उनकी दयासे कोई प्राणी वञ्चित नहीं है। समय एवं सुविधाके अनुसार यदि आप भी चेष्टा करेंगे, अर्थात् और कुछ भी न बने, उनका नाम ले–लेकर उन्हें पुकारते रहेंगे, तो आपको भी उस दयाका परिचय अवश्य मिल जायगा––यह मेरा विश्वास है। भगवान्‌का स्वभाव बड़ा विलक्षण है। जिसे वे एक बार अपनी ओर खींच लेते हैं, उसका परित्याग नहीं करते। बस, भगवान्‌का नाम लेते जाइये। यह मेरी एकमात्र प्रार्थना है।

घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं है

जिस दिन भगवान्‌पर पूर्ण विश्वास हो जाता है, उस दिन कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। हमलोगोंके अंदर विश्वासकी कमी है। इसलिये मनमें तरह–तरहकी बातें उठा करती हैं। अवश्य ही घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने अपनी अहैतुकी दयासे आपको इस ओर प्रवृत्त किया है, वे ही आगे भी बढ़ाते जायँगे। विश्वास रखिये––भगवान् अपने नाममात्रके भक्तपर भी प्रेमकी अनन्त धारा किसी–न–किसी दिन बरसा ही देते हैं। बाट देखते रहिये। आपके जीवनमें भी ऐसी ही बात होगी; क्योंकि आपके भगवान्‌की शरण ली है, फिर चाहे अपूर्णभावसे ही शरण ली हो। उनकी शरणागतवत्सलता कितनी दिव्य है, इस बातकी हमलोग कल्पना भी नहीं कर सकते। वह जागतिक मनकी कल्पनाके अतीत हैं। बस, उनकी कृपासे ही उस शरणागतवत्सलताका दर्शन कर निहाल होनेकी आशामें जीवन काटते जाइये।

शरण ले लेनेके पश्चात् किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहनी चाहिये

सर्वेश्वर एवं दयामयकी शरण ले लेनेके पश्चात् किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहनी चाहिये। मनुष्यकी यह एक भूल होती है कि वह अपनेको भगवान्‌का शरणागत समझता है तथा साथ–ही–साथ 'भविष्यमें मेरा क्या होगा'—इस प्रकारकी चिन्ता भी करता है। सच्ची बात यह है कि मनुष्य शक्तिभर भगवान्‌को समर्पण करनेकी तैयारी कर लेता है तो उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं बच जाता। अतः भविष्यकी चिन्ता मनमें न आने पाये। बल्कि यह चिन्ता हो कि अपनी ओरसे तैयारीमें त्रुटि तो नहीं रह गयी है।

भगवत्कृपाका पात्र कौन है—इसका पता नहीं लग सकता

भगवान् जिस तरह रखें, उसी तरह रहनेमें पूर्ण संतोष रखना चाहिये। इस प्रापञ्चिक जगत्‌के हेर-फेरसे इस बातका पता नहीं लग सकता कि भगवत्कृपाका पात्र कौन है। कोढ़ी, सबसे अपमानित, सबकी नजरोंसे गिरा हुआ, लोगोंकी दृष्टिमें 'पापी' नामसे प्रसिद्ध, सबकी घृणाका पात्र, भूख-प्याससे कराहता हुआ भी भगवत्-कृपाका पात्र हो सकता है, फिर उसे कोई जाने चाहे नहीं। भगवत्कृपाको प्राप्त करनेवाले संत लाल कपड़ेमें ही हों, यह बात नहीं है। उजले कपड़ेमें छिपे हुए आज भी कितने संत भारतकी भूमिको पवित्र कर रहे हैं, जिसका हमें पता नहीं। बस, पूर्ण समर्पणकी अपनी ओरसे तैयारी करते रहें।

निर्भय होकर आगे बढ़ते जाइये

पारिवारिक झंझटोंसे मन कभी-कभी खिन्न हो जाता है ठीक है, अभी ऐसा हो सकता है; किंतु आप बिल्कुल घबरायें नहीं। भगवान्‌की जिस कृपासे आपमें भगवान्‌को प्राप्त करनेकी इच्छा जाग्रत हुई है, उस कृपासे ही एक दिन *'वासुदेवः सर्वमिति'* के रूपमें जगत् दीख सकता है। उस दिन यह झंझट नहीं रहेगा, आनन्दकी स्रोत बह जायगा। निर्भय होकर आगे बढ़ते जाइये, भगवान् आपके पीछे हैं।

दुःखसे भरी हुई परिस्थितियोंका स्वागत कीजिये

घबराइये मत। जो हो रहा है, मंगलके लिये हो रहा है। एक बार भी अपनेको प्रभुके ऊपर छोड़ देनेपर भगवान् फिर उसे नहीं छोड़ते। चैतन्य महाप्रभुने कहा है—'सेवक तो ऐसा हो कि मालिकको छोड़े नहीं और मालिक ऐसा हो कि सेवकके छोड़ देनेपर उसकी शिखा पकड़कर उसे ले आये।' आजकलके सेवक भगवान्‌को बारंबार पकड़ते और छोड़ते हैं, पर भगवान्‌का कायदा वही है। वे अपनी प्रतिज्ञासे तनिक भी नहीं हटते—*'न मे भक्तः प्रणश्यति'।* खूब आनन्दसे जीवन बिताइये। दुःखसे भरी हुई परिस्थितियोंको भगवान्‌का विशेष पुरस्कार समझकर उनका स्वागत कीजिये।

विपत्तिके अवसरपर भी भगवान्‌का सहारा मत छोड़िये

प्रारब्धका फल होकर ही रहेगा, टाला नहीं जा सकता है। भगवान्‌की बात दूसरी है; वे सर्वसमर्थ हैं, चाहे सो कर सकते हैं। किंतु नश्वर शरीरके लिये भगवान्‌को कहना अल्पज्ञता है। दुःखके समय मनुष्य प्रायः चञ्चल हो जाया करता है, उस समय वह भक्तिके सुन्दर भावोंको पल्लवित करनेमें कठिनताका अनुभव करता है। परंतु बुद्धिमानी इसीमें है कि कठिन विपत्तिके अवसरपर भी भगवान्‌का सहारा छोड़कर मनुष्य किसी दूसरी ओर न दौड़े-मुड़े। भगवान्‌के सिवा मनुष्य यदि किसी भी दूसरेकी शरण लेता है तो समझना चाहिये कि भगवान्‌पर उसकी श्रद्धा नहीं है।

कृपाका आश्रय करके आगे बढ़ चलें

वास्तवमें आवश्यकता है—शास्त्रपर, महापुरुषोंके वचनोंपर श्रद्धा करनेकी। फिर कोई कार्य शेष रहता नहीं; साधन तो अपने-आप होने लग जाता है। *****सारी त्रुटि भगवान्‌की कृपासे ही दूर हो सकती है। उनकी कृपा भी सबपर है। केवल उस कृपाका ही आश्रय करके हम आगे बढ़ चलें, अन्धकार अवश्य ही दूर होगा।

किसी भी परिस्थितिमें घबराइये नहीं, अधिक-से-अधिक भजन कीजिये

जिस प्रकार अमावस्याके घने अन्धकारके पश्चात् ज्योत्स्नामयी शुक्लपक्षकी रातका श्रीगणेश होता है, वैसे ही कभी-कभी लीलामय भगवान् अपनी पूर्ण कृपासे प्लावित करनेसे पहले भयानक, अत्यन्त असह्य दुःखकी रात्रिमें अपने प्रिय भक्तको बिल्कुल अंधा-सा बना देते है। अवश्य ही मंगलमयका यह विधान भी, चाहे ऊपरसे देखनेमें कितना भी भीषण क्यों न हो, मंगलसे ओतप्रोत रहता है। इसीलिये विश्वासी भक्त किसी भी परिस्थितिमें चिन्तित न होकर अपने प्रियतम भगवान्‌की प्रत्यक्ष दयाका दर्शन करते हुए मुग्ध होते रहते हैं। जहाँतक आपके जीवनके सम्बन्धमें सोचता हूँ तो यही मालूम पड़ता है कि दयामय भगवान् अबतक जितनी कृपालुतासे आपके जीवनको उन्नत बनाते आये हैं, उसके स्मरणमात्रसे ही आपको मुग्ध होते रहना चाहिये। मेरी

यह दृढ़ धारणा है कि किसी-न-किसी दिन इसी जीवनमें आप यह ठीक देख पायेंगे कि भगवान्‌की कृपालुता गुप्तरूपसे ही किस प्रकार आपके योगक्षेमका वहन करती आ रही है। सार-रूपमें इतना ही समझिये कि किसी भी परिस्थितिमें घबराइयेगा नहीं और मेरे इस कथनमें कि 'भगवान्‌ने आपलोगोंको अपनी ओर खींचा है और उनका खींचना सदा-सर्वदा सब ओरसे पूर्ण होता है, इसमें प्रमाणकी कमी भी दीखे तो भी जहाँतक हो सके, विश्वास करनेकी चेष्टा कीजियेगा।

अन्तिम बात यह है कि भजन अधिक-से-अधिक कीजियेगा। जगत्‌में सच्चे निःस्वार्थ मित्र केवल भगवान् ही हैं। ****भगवान्‌के नामको नहीं भूलें, फिर भगवान् सब कुछ कर देंगे।

भगवान्‌पर विश्वास और नामजप हमारे लिये सब कुछ कर देगा

मुझे तो यही जान पड़ता है कि यदि मनुष्य अधिक-से-अधिक भगवन्नामपर विश्वास बढ़ाता चला जाय तो भगवान् उसे अपने-आप लक्ष्यतक पहुँचा देते हैं। यह केवल मेरी ही प्रतीति नहीं है, यह एक बड़ा सिद्धान्त है और आजतक जितने बड़े-बड़े संत हो गये हैं, प्रायः सभीने इसका समर्थन किया है। श्रीभगवन्नामका वस्तु-गुण ऐसा है कि वह भगवान्‌में श्रद्धा उत्पन्न करा देता है। इतना ही नहीं, नामकी स्वाभाविक महिमा कितनी है, यह बतलाना बहुत कठिन है। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष--इन चार पुरुषार्थोंकी अपेक्षा भी अत्यन्त उत्त्कृष्ट एवं पञ्चम पुरुषार्थ मानी जाती है। यह प्रेम भगवन्नाम सुलभ करा देता है। यह बात उन संतोंके द्वारा समर्थितकी गयी है, जो भगवत्प्रेमको प्राप्तकर कृतार्थ हो चुके हैं। जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, वैसे-वैसे भगवन्नामपरायण व्यक्तिका स्वयं यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि भगवन्नामसे बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है। इसलिये मैं प्रत्येक व्यक्तिसे नामजपके लिये प्रार्थना करता हूँ। देखें, भजनका फल कभी-कभी तुरंत देखनेमें नहीं आता; किंत एक-न-एक दिन यह भगवन्नाम भगवान्‌को मिलाकर छोड़ेगा, यह बात ध्रुव सत्य है।

अस्तु, जहाँतक बने--चाहे जो भी भाव हो, सकाम-निष्काम कैसी भी वृत्तियाँ क्यों न हों--अधिक-से-अधिक नामजप करते रहें।

'विनय–पत्रिका' में एक पद है, जिसकी अन्तिम दो पंक्तियाँ हैं––

सकल अंग पद–बिमुख, नाथ! मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिहिं परतीति एक, प्रभु–मूरति कृपामई है।।

–––ये गोस्वामी तुलसीदासजीके वचन हैं। ये मिथ्या हो नहीं सकते। बस, भगवान्पर विश्वास और नामजप हमारे लिये सब कुछ कर देगा, यह विश्वास करके भगवान् जैसे रखना चाहें, उसी परिस्थितिमें आनन्द मानते हुए जीवन बिताते चलें।

व्यावहारिक जगत्में भगवान्को साथ रखिये

भगवान्में विश्वासकी कमीके कारण, दूषित वातावरणका असर पड़नेके कारण एवं पूर्वके संस्कारोंके कारण बहुत बार हमलोगोंके मनमें परिवारको लेकर चिन्ताएँ आ सकती हैं। उस समय जगत्का महत्त्व भगवान्की अपेक्षा अधिक हो जाता है। वस्तुतः जागतिक चिन्ता तभी आती है, जब भगवान् गौण हो जाते हैं और जगत् प्रधान। इसलिये खूब सावधान रहना चाहिये कि एक क्षणके लिये भी भगवान् गौण नहीं होने पायें। आप विश्वास रक्खें कि जैसे–जैसे भगवान् मुख्य उद्देश्य होते जायँगे, वैसे–वैसे यह चिन्ता हटती जायगी। एक बात और है–––साधनामार्गमें–––खासकर भगवत्–शरणागतिमें किसी भी जागतिक चिन्ताको मनमें स्थान ही नहीं देना चाहिये। यदि हम भगवान्के हो गये, नहीं, सदैव ही भगवान्के थे, हैं और रहेंगे––तो हमसे सम्बद्ध यावन्मात्र पदार्थ भी भगवान्के ही हैं। क्या भगवान्को अपनी चाजोंको ध्यान नहीं है ? क्या हम उनसे ज्यादा चतुर एवं बुद्धिमान् हैं, जो उनकी अपेक्षा भी अधिक अच्छी तरह किसी चीजकी सँभाल करेंगे ? वस्तुतः सच्ची बात तो यह है कि जो दयामय भगवान्की ओरकी सँभाल है, वही सच्ची सँभाल है। हम तो मूर्खतावश सँभालनेके लिये जाकर बिगाड़ ही सकते हैं, किंतु भगवान्से कभी भूल होती नहीं। इसलिये जब कभी स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, मान,. प्रतिष्ठा, इज्जत आदिको लेकर मन चिन्तित होने लगे, उस समय विचार करना चाहिये कि 'मैं तो प्रभुका हूँ; ये सब चीजें भी उन्हींकी हैं। सारे जगत्की सम्पूर्ण दया इकट्ठी करनेपर भी भगवान्की दयाकी एक बूँदके बराबर भी नहीं है। वे भगवान् क्या हमारा अमंगल करेंगे ? कभी नहीं, इसमें ही हमारा मंगल है। हमारा सब कुछ उन्हींका है; वे अपनी चीजको जैसा रखना चाह रहे हैं, वही ठीक

है। देखें, भगवान्‌की भक्ति केवल मानसिक प्रक्रिया ही नहीं है; यदि यह क्रियारूपमें न आयी तो भक्तिमें कमी है। यद्यपि आधुनिक जमानेमें यह कम देखनेको मिलता है, किंतु जितने भी ऊँचे–ऊँचे भक्त हुए हैं, सबने व्यावहारिक जगत्‌में भगवान्‌को साथ रखा है। गीताप्रेससे प्रकाशित भक्त–गाथाएँ पढ़िये। आप देखेगें कि किस प्रकार भगवान्‌के विश्वासी भक्तोंने अपने–आप व्यावहारिक जीवनमें भगवान्‌की दयाका पद–पदपर अनुभव किया है। भक्त गिरिवर एवं भक्त प्रतापरायकी जीवनी पढ़कर मैं तो रोने लग जाता हूँ।

सारांश यह है कि जगत्‌की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियोंको लेकर व्यस्त होनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌के प्रत्येक विधानको मंगलमय देखनेकी चेष्टा करें। यह बात माननेकी ही नहीं है, वस्तुतः ऐसी ही बात है। भगवान्‌का भयंकर विधान अनन्त आनन्दसे ओतप्रोत रहता है। अन्तःकरण शुद्ध होनेपर मनुष्य बिल्कुल इसी प्रकार अनुभव करता है। समय–समयपर भक्त–गाथाओंको पढ़ते रहना चाहिये। वे कथाएँ कल्पना नहीं हैं, वास्तविक हुई घटनाएँ हैं। वे अन्तःकरणको पवित्र करेंगी, उनसे बहुत आत्मबल बढ़ेगा——यह मेरा अपना खास अनुभव है। मुझे इन भक्त–गाथाओंके पढ़नेसे अत्यधिक लाभ हुआ है।

अन्तिम बात यह है कि किसी भी परिस्थितिमें घबराइये नहीं। कृपामयको, आप जितनी कल्पना भी नहीं कर सकते, उससे अधिक आपका ध्यान है।

हम सुख–दुःखके भोगमें सर्वथा परतन्त्र हैं

मनुष्य कल्पनाके राज्यमें ही विचरा करता है, किंतु इस बातको भूल जाता है कि इस जागतिक कल्पनाका कोई मूल्य नहीं है। वह अगर थोड़ा भी ध्यान दे तो उसे पता लग सकता है कि सुख–दुःखके भोगमें वह सर्वथा परतन्त्र है। भले ही निमित्त कुछ बने, किंतु ये किसी अचिन्त्य–शक्तिके नियमनमें स्वयं आकर प्राप्त हो जाते हैं। भैया ! यह समझना कठिन है, किंतु बिल्कुल ठीक है कि इसमें किसी प्रकारकी शंकाकी गुँजाइश नहीं है। यह कानून है——

'जो कछु रचि राख्यौ नँदनन्दन मेटि सकै नहिं कोय।'

यदि आप यह समझ लें तो फिर आपको दुःख हो ही नहीं।

सब होते हुए भी दयामयकी कृपाका पलड़ा ही भारी रहेगा

एक बात हमेशा ध्यानमें रखनेकी है कि हम कितना भी क्यों न चाहें, किंतु हमारा जो संकल्प भगवान्‌की इच्छासे समन्वित नहीं होगा, वह कभी पूरा हो नहीं सकता। अतः जब कोई हमारी धारणाके प्रतिकूल बात आकर प्राप्त हो तो विश्वास कर लेना चाहिये कि प्रभुकी इच्छासे ही ऐसा हुआ है। अवश्य ही व्यवहारमें प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होनेपर ऐसा मन हो जाना कठिन है, किंतु भगवद्दयाका आश्रय करके यदि आप चेष्टा करेंगे तो ऐसा हो जाना कोई बड़ी बात नहीं हैं। यह केवल हम मानते हों, ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः यह सिद्धान्त है कि जो कुछ भी प्रतिकूलता प्राप्त होती है, उसमें भी श्रीकृपामय भगवान्‌का हाथ है और उसका परिणाम मंगल ही होगा। अगर किसी प्रकार मनुष्य यह विश्वास कर सके तो उसकी सारी चिन्ता छूट जाय और फिर उसके द्वारा केवल भजन होगा। देखें, मनुष्यके न चाहनेपर भी प्रतिकूलता तो आती ही है। प्रारब्धमें यदि प्रतिकूलता है तो आकर ही रहेगी। फिर उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है।

मेरे मनमें आप सबके लिये यही भाव उत्पन्न होता है कि जिनकी अहैतुकी कृपासे आपलोगोंकी इस ओर प्रवृत्ति हुई है, वे ही भगवान् शेष बचा हुआ कार्य भी आपके द्वारा पूरा करवा लेंगे। देखें, हमलोगोंमें अनन्त त्रुटियाँ हैं। यह बात बिल्कुल ठीक है कि हमलोग अभी पग–पगपर फिसल जाते हैं, बहुत मामूली जागतिक प्रलोभन ईश्वरकी अपेक्षा अधिक आकर्षक सिद्ध होता है। यह बात होते हुए भी दयामयकी कृपाका पलड़ा ही भारी रहेगा और हमलोग सभी उस कृपाका सहारा लेकर इस भव–समुद्रसे तर जायँगे; केवल तरंगे ही नहीं, उनका दिव्य प्रेम प्राप्त करेंगे।

भगवान् हमें जैसे रखना चाहते हैं, उसी प्रकार रहकर जीवन बिताते चलें। जितनी तत्परतासे ले सकें, उतनी तत्परतासे अधिक–से–अधि ाक उनका नाम लेते रहें। वस्तुतः हम कलयुगी प्राणियोंसे प्रभु और कुछ आशा रखते भी नहीं। सारी कमी वे पूरी कर देंगे, यह विश्वास रखें— ***'योगक्षेमं वहाम्यहम्'।***

भगवान् और भक्तका सम्बन्ध बड़ा मधुर होता है

आपने लिखा कि कर्मोंका फल तो भोगना ही पड़ता है—यह

बिल्कुल ठीक है; किंतु इसके साथ अपवाद भी है। जिस प्रकार किसी अपराधीको हाईकोर्टने फाँसीकी सजा दे दी है, उस सजाको कोई रोक नहीं सकता; पर यदि बादशाह या उस राज्यका सर्वोच्च अधिकारी चाहें तो उसकी सजा बदल सकते हैं, उसे बिल्कुल माफ भी कर सकते हैं; यही नहीं, ऐसी घटनाएँ कितनी बार हो चुकी हैं; उसी प्रकार कर्मोंके फलको भगवान् चाहें तो भोगनसे किसीको बिल्कुल बरी कर सकते हैं। अवश्य ही भगवान्का भक्त यह चाहता नहीं। किसी दिन भगवत्कृपासे ही आप समझ पायेंगे कि वस्तुतः भगवान् और भक्तका सम्बन्ध कितना मधुर होता है। हमारी कल्पना इस जगत्को देखकर उसीके आधारपर भगवान्के विषयमें निर्णय देती है। पर उसका यह निर्णय वस्तुतः बिल्कुल गलत है। भैया ! भगवान् कितने दयालु हैं, यह बात तबतक हमारी धारणामें आ ही नहीं सकती, जबतक वे स्वयं समझा न दें। अवश्य ही न समझनेपर भी वस्तुस्थिति तो यह है ही कि हम सभी उनके अहैतुक दयाप्रवाहमें ही बह रहे हैं और उनके पास अपने-आप पहुँच जायँगे। आपलोगोंके जीवनको विचारता हूँ तो यही प्रतीत होता है कि जिस दिन आप इस दयाका अनुभव करेंगे, उस दिन मुग्ध हो जायँगे। भगवान्ने कहाँसे लाकर आपलोगोंको कहाँ रक्खा है और कहाँ ले जा रहे हैं, यह बात अभी समझमें न आनेपर भी अगर विश्वास कर सकें तो निरन्तर ध्यानमें रखनेकी चेष्टा करें कि अबतक आपका किंचित् भी अमंगल नहीं हुआ है और न आगे होगा। मैं इस बातको किसीको तर्कसे समझा नहीं सकता; लेकिन सभीसे प्रार्थना कर सकता हूँ कि सभी अधिक-से-अधिक इसपर विश्वास करें।

किसी भी परिस्थितिमें चिन्ता बिल्कुल न हो।

सकाम उपासना करनेवालेको भी भगवत्प्रेम प्राप्त होता है

महाप्रभु चैतन्यने कहा है—'जिस तरह नदीके प्रवाहमें अनन्तकालसे बहता हुआ कोई तिनका किनारे लग जाता है, वैसे ही अनादिकालसे संसारकी नाना योनियोंमें भ्रमण करता हुआ कोई जीव किसी अत्यन्त भाग्यबलसे निस्तार पा जाता है।' श्रीमद्भागवतमें भी ठीक इसी प्रकारका भाव व्यक्त किया गया है—

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम्।

ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन।।

(१०। ३८। ५)

'हे विभो ! निरभिमानी पुरुष केवल आपके चरणोंकी सेवा ही आपसे माँगते हैं, सो मैं भी वही वर आपसे माँगता हूँ, और कोई भी वासना मुझे नहीं है। हे हरि ! जो मुक्ति देनेवाले आप हैं, उनको आराधनाद्वारा प्रसन्न करके कौन विवेकी पुरुष, जिनसे आत्माका बन्धन हो, वे भोग आपसे माँगेगा ? अथवा यह विचार करना भूल है। यद्यपि मैं अधम हूँ, तथापि अच्युतके दर्शन मुझे प्राप्त ही होंगे। जैसे नदीमें बह रहे तृणोंमें कोई तृण किनारे लग जाते हैं, वैसे ही कालके प्रवाहमें कर्मवश बह रहे जीवोंमें कोई जीव कभी पार पहुँच जाते हैं। अतएव कृष्णका दर्शन मिलना और उसके द्वारा संसारके पार पहुँच जाना मेरे लिये असम्भव भी नहीं है।'

आगे प्रभु कहते हैं कि उन निस्तार पानेवालेके निम्न लक्षण जान लेने चाहिये—'किसी पुण्य–बलसे जब किसीके संसारका अन्त होनेवाला होता है—जिसका निस्तार निश्चित हो जाता है, उसे साधु–संगकी प्राप्ति होती है और उसके फलस्वरूप उसकी श्रीकृष्णमें रति उत्पन्न होती है।' भागवतमें राजा मुचुकुन्द भी श्रीभगवान्‌से यही कहते हैं—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः।।

(१०। ५१। ५४)

उपर्युक्त बातें सहजमें ही समझा जा सकता है कि दयामयकी आपपर कितनी कृपा है। आप अपने जीवनकी समस्त घटनाओंको आदिसे अन्ततक एक बारके लिये विचारकर देखें। भगवान्‌ने आपको कहाँसे लाकर कहाँ रखा है। आप अपनेको हीन समझते हुए भी, 'भगवान्‌की कृपाका पात्र हूँ'—यह समझकर, अत्यन्त भाग्यशाली भी समझकर देखें। हमलोगों–जैसे संसारमें करोड़ों मनुष्य हैं, किंतु कितनोंके पास सच्ची या झूठी भगवान्‌से मिलनेकी इच्छामात्र भी है। आपमें यह इच्छा तो हो गयी है कि प्रभुके पास पहुँचूँ। यह क्या कम है ? जहाँतक मेरा अनुमान है, आपकी उपासना भगवत्प्रेमके लिये ही है। अपनी प्रार्थनामें भी आप भगवान्‌से भक्तिकी ही याचना करते होंगे। यदि आपकी उपासना किसी अंशमें सकाम भी होगी, तो भी आपको भगवत्प्रेम मिलेगा।

चैतन्य महाप्रभुने कहा है—

अन्यकामी यदि करे कृष्णेर भजन,
कृष्ण तारे देन स्वचरण।।
कृष्ण कहे आमाय भजे, मागे विषय–सुख,
अमृत छाँड़ि माँगे विष, एइ बड़ मूर्ख।
आमि विज्ञ एइ मूर्ख विषय सुख केन
दिव तब चरन दिया विषय–सुख भुलाइव।।

अर्थात् सकाम भावसे भी कोई कृष्णका भजन करता है तो भी कृष्ण तो उसको अपना चरण ही देते हैं। श्रीकृष्ण सोचते हैं कि यह मेरा भजन तो करता है, पर माँगता है विषय–सुख––अमृतका परित्याग कर विष लेना चाहता है। ओहो! यह बड़ा मूर्ख है। किंतु मैं तो मूर्ख नहीं हूँ, मैं तो सब कुछ जानता हूँ; मैं इसे विषय–सुख देकर ठगनेका काम क्यों करूँ, मैं तो इसे अपना चरण देकर इसका विषय–सुख भुलाते हुए इसके अंदर सच्चा अनुराग उत्पन्न करूँगा।

अधिक–से–अधिक भगवान्‌का नाम लिया करें

भगवान् आज भी अपने भक्तोंको उनके भावनानुसार कृतार्थ करनेके लिये तैयार हैं। निष्काम भक्तोंको प्रेमदान एवं दर्शनोंके द्वारा तथा सकाम भक्तोंको उनकी वाञ्छित वस्तु देकर भगवान् आज भी कृतार्थ करते हैं। हमारा विश्वास उठ गया है, जिसके कारण हमलोगोंकी तबाही है। भगवान्‌पर श्रद्धा नहीं रही, अन्यथा भगवान् बिना किसी भेद–भावके सबको स्वीकार कर सकते हैं। इसीलिये मैं बारंबार आपलोगोंसे एक ही प्रार्थना किया करता हूँ कि अधिक–से–अधिक भगवान्‌का नाम लिया करें। बड़े–बड़े संत–महात्माओंका यह अनुभव है कि जो जितना अधिक भजन करेगा, वह उतनी ही शीघ्रतासे भगवान्‌की ओर बढ़ेगा। भगवान्‌में श्रद्धा–प्रेम होकर जल्दी–से–जल्दी उन्हें प्राप्त किया जा सके, इसका एकमात्र उपाय इस युगके लिये है––नामका आश्रय। इसलिये फिर भी यही प्रार्थना है कि चाहे हठसे ही क्यों न हो, वाणीका संयम कर और आवश्यकताभर बोलेनेके बाद बाकीका सब समय नाम–जपमें लगायें। जैसे–जैसे अन्तःकरण पवित्र होगा, वैसे–वैसे अपने–आप भजनमें प्रेम होने लगेगा। भजन प्यारा लग जानेपर फिर भजनके लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, अपने–आप भजन होगा। जबतक ऐसा न हो, तबतक हठसे, विचारसे––जैसे भी हो, अधिक–से–अधि

ाक नाम जपें। भगवान्‌की कृपा आपके साथ है। आपलोग चाहेंगे तो भगवान्‌की ही कृपासे भजन अवश्य कर सकेंगे। देखें, भगवान् केवल कहने-सुननेकी वस्तु नहीं हैं। सचमुच साधनाका क्रियात्मक प्रयोग करके उन्हें प्राप्त करनेमें ही जीवनकी सार्थकता है। यहाँ केवल सार वस्तु भगवान् ही हैं। भगवान्‌के लिये ही परिवार, बन्धु, भाई—सब हों। भगवान्‌के मार्गमें रोकनेवाली वस्तुएँ सर्वथा त्याज्य हैं—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि पर सनेही।।

भगवान्‌के चरणोंमें अपने-आपको समर्पित करनेकी सच्ची चाह जाग्रत करें

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे बिधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः।।

(पद्म/उत्तर ७२। १००)

बस, मनुष्य-जीवनकी सार्थकता इसीमें है कि निरन्तर श्रीभगवान्‌को स्मरण किया जाय। उपर्युक्त वचन महर्षि श्रीवेदव्यासके हैं, जिनके वचन त्रिकाल-सत्य हैं। वे कहते हैं कि शास्त्रमें जितनी विधियाँ हैं अर्थात् 'ऐसा करो' और जितने निषेध हैं अर्थात् 'ऐसा नहीं करो', सबका अन्तर्भाव—सबका पर्यवसान इसीमें है कि निरन्तर भगवान्‌को याद रक्खो और कभी भगवान्‌को मत भूलो।

हमलोगोंने अनन्त जन्मोंमें अनन्त बार परिवार इकट्ठे किये, अनन्त बार गृहस्थी की, अनन्त बार 'मेरा-मेरा' कहकर अनन्त प्राणियोंका मोह-जाल बाँधा, किंतु किसी भी जन्ममें एक बारके लिये भी हृदयसे, सच्चे मनसे श्रीभगवान्‌को 'मेरा' कहकर नहीं पुकारा, वरण नहीं किया। यह यदि किया होता तो फिर अब हमारी यह दशा नहीं होती। इसलिये इस बार अब भूल न करें। हृदयकी सारी शक्ति लेकर उनके चरणोंमें अपने आपको समर्पित करनेकी सच्ची चाह जाग्रत करें। फिर प्रभु कृपामय हैं; वे देखेंगे कि ये सब अपनी नीयतभर बाज नहीं आ रहे हैं, इन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगा दी है, इसलिये अब मैं इन्हें सँभाल लूँ। जिस दिन अन्तर्हृदयकी सच्ची चाहका प्रतिबिम्ब श्रीभगवान्‌के हृदयमें पड़ा कि उसी क्षण प्रतिक्रिया होगी, उनका संकल्प होगा और सब तत्क्षण उनके चरणोंमें पहुँच जायँगे।

जैसे भी हो, जिह्वाको श्रीभगवन्नामके उच्चारणमें लगाइये

प्रश्न है कि सच्ची चाह उत्पन्न कैसे हो। संतोका यह अनुभव है कि मलिन मनमें शुद्ध चाह उत्पन्न नहीं होती। इसलिये सबसे पहले मनको शुद्ध करना है। मन शुद्ध करनेका उपाय आजकलके लिये एक ही है। वह उपाय है, भगवद्भजन—भगवत्स्मरण। किंतु मलिन मन भगवद्भजनमें लग जाय, यह भी कठिन है। इसलिए एक काम करें—जिह्वासे ही भजन करें—लेते जाँय भगवान्‌का नाम। नाममें ऐसी अपूर्व शक्ति है कि अपने-आप मन लगने लगेगा। बिना श्रद्धा, बिना प्रेम, केवल हठपूर्वक जिह्वाको श्रीभगवन्नामके उच्चारणमें लगाइये; मन लगे तो उत्तम है, नहीं तो कोई परवा नहीं। यदि जिह्वाने नामका आश्रय नहीं छोड़ा तो सब कुछ अपने-आप नामकी कृपासे हो जायगा। श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराजने कहा—'कोई अृमतके कुण्डमें उतरकर अमृत-पान करे अथवा पैर फिसल कर गिर पड़े अथवा किसीके ढकेल देनेपर गिर पडे, अथवा जान-बूझकर जबर्दस्ती उस कुण्डमें गिरा दिया जाय, यदि अमृतका संस्पर्श हुआ तो गिरनेवाला चाहे किसी प्रकारसे गिरा हो, अमर हो जायगा। उसी प्रकार श्रीभगवान्‌के नामसे सम्बन्ध किसी प्रकार भी क्यों न हो, यह सर्वथा दुःखसे छुड़ाकर अत्यन्त आनन्दमय प्रभुके चरणोंमें ले जानेवाला है।'

इसलिये पुनः-पुनः एक ही प्रार्थना है कि वाणीका संयम करें। विनोद करके क्या होगा ? क्षणभंगुर जीवनमें विनोद, हँसी-मजाकका अवसर नहीं है। बहुत रास्ता तै करना है। आवश्यक काम प्रभुकी सेवा समझकर करना है, इसलिये आवश्यकतानुसार बोलनेकी जरूरत होनेपर बोल लिया करें। ध्यान रखें कि कम-से-कम बोलकर ही काम चला लिया जाय और इसके बाद बाकी जो समय मिले, उसमें निरन्तर भगवन्नामकी ध्वनि होती रहे। धीरे-धीरे या जोर-जोरसे—जैसे भी सम्भव एवं सुविधासे हो।

इस बातपर बड़ी गम्भीरतासे विचार करेंगे। समय अनमोल है; जो श्वास गया, वह फिर नहीं लौटेगा। भगवन्नामके बिना गया हुआ श्वास व्यर्थ हुआ। मृत्युका ठिकाना नहीं कि कब आकर यहाँका सब खेल मिटा दे। मेरे इस कथनसे किसी प्रकार निराश होनेकी जरूरत नहीं है। जरूरत है केवल अपनी ओरसे पूरी शक्ति लगाकर भगवान्‌को पुकारनेकी। हमारी शक्ति चाहे कितनी भी क्षीण क्यों न हो, यदि भगवान्‌में लगा दी जाय अर्थात् भगवान्‌की

शक्तिसे संयुक्त कर दी जाय तो फिर उस क्षीण शक्तिकी ताकत इतनी बढ़ जाती है कि उसके द्वारा हम अपनी बुराइयोंको दूर करके सर्वदुर्लभ भगवच्चरणोंको प्राप्त कर सकते हैं, इसलिये भगवत्कृपाकी डोरी खींचते रहें।

एक बानि करुननिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आनकी।।

* *

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ।
दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।।

* *

ऐसी कवन प्रभुकी रीति।
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पै प्रीति।।

(विनयपत्रिका २१४)

—इन वचनोंपर श्रद्धा बढ़ाते रहें। संतोंका कहना है कि यदि कोई सचमुच भगवत्कृपापर निर्भर हो जाय तो फिर वह अपने-आप आवश्यक साधनोंसे सम्पन्न हो जाता है। उसके लिये सब कुछ भगवान्‌की कृपा कर देती है।

सारांश यह है कि भगवत्कृपा और नामको आलम्बन बनाकर जीवनके दिन बितायें। जगत् एवं जागतिक चेष्टासे अलग होनेकी चेष्टा करें।

आजका वातावरण भगवन्मार्गमें किसीको प्रोत्साहन दे, ऐसी आशा कम रखियेगा। कलियुगका निरन्तर बढ़ता हुआ प्रभाव साधना करनेवालोंको अभिभूत कर रहा है। फिर जो भगवान्‌से विमुख हैं, उनकी तो बात ही क्या है। इसलिये इस मार्गमें अकेले बढ़ना होगा। रोकनेवाले बहुत मिलेंगे, बढ़ानेवाले विरले। आपका मन कभी कर्तव्यके नामपर, कभी धर्मके नामपर आपको भगवान्‌से हटाकर जगत्‌में लगायेगा। इसीलिये सावधान रहें।

हम कहीं भी रहें, किसी भी अवस्थामें रहें, भजनको पकड़ें

माता देवहूतिजी कहती हैं—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।।

(श्रीमद्भा० ३। ३३। ७)

'बड़े आश्चर्यकी बात है—जिसने तुम्हारा नाम लिया, उसने सारी तपस्या कर डाली, हवन कर लिये, तीर्थ स्नान कर लिया, वेद–पारायण कर लिया एवं उसने सभी आर्यगुणोंका संचय कर लिया। इसलिये जिसकी जीभपर तुम्हारा नाम है, वह चाण्डाल होनेपर भी अत्यन्त पूज्य है।'

उपर्युक्त श्लोकको पढ़कर मनमें कई बार यह बात आती है कि सचमुच कलियुगके अनर्थकारी वातावरणमें पड़कर हमलोगोंने शास्त्रोंपर श्रद्धा खो दी; अन्यथा श्रीमद्भागवतके एक बार पढ़ लेनेपर फिर भगवान्‌का नाम कैसे छूटना चाहिये। ये वचन अर्थवाद नहीं हैं। इनको कहनेवाली स्वयं भगवज्जननी हैं एवं जगत्‌पर प्रकट करनेवाले महर्षि वेदव्यास हैं। किंतु समयके फेरसे हम इसे पढ़कर भी नहीं पढ़ते, सुनकर भी नहीं सुनते।

मन कभी–कभी विचित्र तरहसे धोखा देता है। भजनमें लगना चाहता नहीं, इसलिये अनेक युक्तियोंसे मनुष्यको प्रलोभित करता है। मन तीर्थ करनेकी सलाह देता है, बड़ी–बड़ी आडम्बरपूर्ण चेष्टाओंके द्वारा उपासनाके लिये प्रेरित करता है, तपस्याका नया–नया रूप लाकर सामने रखता है, दया एवं धर्माचरणकी नयी–नयी योजना उपस्थित करता है, किंतु एकनिष्ठ होकर निरन्तर भजनकी सलाह बहुत कम देता है—जिस एक भजनसे सर्वस्वकी सिद्धि अत्यन्त सुलभतासे होती है, उसमें प्रवृत्त नहीं होने देता। इसलिये महात्मा पुरुष कहते हैं—'सावधान रहो, भजनको मुख्य बनाओ, और सारे कर्मोंको गौण रखो।'

उपर्युक्त कथनका यह अर्थ नहीं है कि तीर्थ नहीं करना चाहिये। यदि सम्भव हो तो अवश्य करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक एवं पापरहित तीर्थाटन अत्यन्त हितकर होता है। किंतु यदि हमें भगवान्‌ने ऐसी परिस्थितिमें रखा हो, जहाँ तीर्थाटन सुगम न हो, बड़े–बडे पुण्यकर्मोंका आचरण कठिन हो तो इससे हताश होनेकी कोई बात नहीं है। सबका फल हमें मिल जायगा, यदि हमने ठीक भजन किया। तीर्थमें तीर्थापन क्या है, यह विचारें। किसी भी धर्म, किसी भी सम्प्रदायका कोई भी तीर्थ क्यों न हो, उसका तीर्थपन दो बातोंके कारण ही है—(१) या तो भगवान्‌ने वहाँ साक्षात् कोई लीला की है अथवा (२) किसी संतने उपासना की है (उपासनाका प्रकार भिन्न–भिन्न हो सकता है)। अतः यदि हमने ठीक जैसा चाहिये वैसा भजन किया तो प्रभु हमें कृतार्थ करनेके लिये अवतीर्ण होकर एक नये तीर्थका निर्माण कर सकते हैं। इसलिये हम कहीं भी रहें, किसी भी अवस्थामें रहें, भजनको पकड़ें। मन नहीं लगता, कोई बात नहीं; जीभके द्वारा भगवान्‌के

नामका आश्रय लें—*जिह्वाग्रे, नहि मनसः अग्रे।* इस भजनसे ही जगन्नियन्ता सर्वेश्वर हमारे पास आ जायँगे—आ ही नहीं जायँगे, बल्कि सर्वेश्वर, सर्वस्वतन्त्र होकर भी भजनेवालेके अधीन हो जायँगे।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू।
अपने बस करि राखे रामू।।

मानस १। २५। ३)

यह सर्वथा सत्य सिद्धान्त है।

मृत्यु सच्चे प्रेमियोंके लिये स्वागतकी वस्तु होती है

मृत्युका नियन्त्रण करनेवाले श्रीभगवान् हैं, जो किसीका कभी भी अमंगल नहीं करते। उनकी भेजी हुई मृत्यु हमें अमंगल दीखती है, किंतु उसकी आड़में हमारा कितना मंगल है—इसकी कल्पना हम नहीं कर सकते। हाँ, यदि हम चाहें तो हम स्वयं मृत्युका आनन्द ले सकते हैं। जो मृत्यु जगत्‌के लिये अत्यन्त भयानक है, वही सच्चे प्रेमियोंके लिये, प्रभुके प्रियजनोंके लिये अत्यन्त स्वागतकी वस्तु होती है; क्योंकि मृत्यु उन्हें अपने प्रियतम प्रभुके अत्यन्त निकट पहुँचा देती है। अवश्य ही कहना–सुनना बड़ा आसान है, वास्तविक मृत्युको इस रूपमें स्वीकार करना थोड़ा कठिन है। किंतु भगवान्‌की कृपासे असम्भव कुछ भी नहीं—यह बात भी भूलनी नहीं चाहिये।

अन्तिम बात यही है—हम सब लोग भजन करें।

निराश होना प्रभुके प्रेमका तिरस्कार करना है

प्रभुकी बड़ी कृपा है; सच मानिये, हमलोग उनकी कृपामें स्नान कर रहे हैं, डूबे हुए हैं। फिर घबरायें क्यो ? यह बात बिल्कुल याद रखनेकी है कि एक क्षणके लिये भी निराश होना, अर्थात् ऐसा सोचना कि 'मेरा क्या होगा' उनकी कृपाका— उनके अहैतुक प्रेमका तिरस्कार करना है। यह कहना हो सकता है—'मैं उन्हें प्रभु मानता तो बात ठीक थी, पर मैं तो उन्हें प्रभु ही नहीं मानता। प्रभु मानकर उनके आश्रित ही नहीं हूँ, फिर वे मुझे क्यों सँभालेंगे ? बहुत ठीक, पर उन्होंने स्वयं गीतामें कहा है—*सुहृदं सर्वभूतानाम्*—'मैं सब भूतोंका सुहृद हूँ।' क्या हम भूतोंकी श्रेणीमें नहीं हैं ? यदि वे '*भजतां सुहृदम्*—भजन करनेवालेके सुहृद' होते तो हमारे लिये अवश्य ही निराशाकी बात थी; पर वे तो स्पष्ट कहते हैं कि 'मैं सब

भूत–प्राणियोंका सुहृद हूँ। केवल भजन करनेवालोंका ही नहीं।' फिर उन परम सुहृदको, जो सर्वलोकमहेश्वर भी है, हमारी सुधि नहीं होगी ? अवश्य होगी, ऐसा दृढ़ विश्वास करें; यह विश्वास दृढ़ हुआ कि सब साधन अपने–आप अनुकूल हो जायँगे। बिना किसी परिश्रमके उनका संयोग पाकर हम कृतार्थ हो जायँगे। यह बात बिल्कुल ठीक होनेपर भी अन्तःकरणकी मलिनता ही इस प्रकार अविश्वासमें हेतु है। इस अविश्वासको आप दूर कर सकते हैं, बड़ी आसानीसे दूर कर सकते हैं, भगवन्नामका आश्रय ले लीजिये। दृढ़ संकल्प करके, उन्हींकी कृपाका आश्रय करके, जीभ निरन्तर नाम ले, इसकी पूरी चेष्टा कीजिये। जबतक ऐसा समझमें नहीं आता है कि निरन्तर नामका स्मरण ही होता रहे, तबतकके लिये नियम कर लीजिये कि कामभर बोलूँगा, कम–से–कम बोलकर काम चलानेकी चेष्टा करूँगा, बाकी कुल समय प्रभुके नाममें बीतेगा। बस, इतना ही मेरे हृदयके प्रेमसे लपेटी हुई प्रार्थना है। जिस दिन नाम–जप निरन्तर होने लग जायगा, फिर कोई कर्तव्य नहीं रहेगा।

जागतिक प्रेमका पर्यवसान श्रीभगवान्‌में होना चाहिये

जिस प्रेमसे हमलोगोंने अपने जीवनके इतने दिन बिताये, उस प्रेमका पर्यवसान श्रीभगवान्‌में होना चाहिये, तभी वास्तविक रूपमें हमलोगोंके प्रेमकी सार्थकता है। जगत्‌में किसीके प्रति भी यदि हमारा प्रेम है, किंतु बीचमें भगवान् नहीं हैं, तो वस्तुतः वह प्रेम दुःखान्त ही होता है। जगत्‌में आज इतना दुःख, दैन्य, निराशा, विश्वासघात, स्वार्थपरता और नृशंसता आदि इसलिये ही बढ़ रहे हैं कि श्रीभगवान्‌से रहित चेष्टा होने लगी है, अर्थात् किसी भी चेष्टाका तात्पर्य भगवान्‌की प्रसन्नता नहीं है। भगवत्प्रसन्नताकी बात तो दूर, 'भगवान् हैं'—यह विश्वास भी अधिकांश मनुष्य खोते चले जा रहे हैं। 'प्रेम'के नामपर आत्मेन्द्रिय–प्रीतिकी वासना काम करती है। इसलिये हमलोगोंको इस सम्बन्धमें बहुत सावधान रहनेकी जरूरत है।

अन्तःकरणकी स्वच्छताके तारतम्यसे ही सत्यके प्रकाशका तारतम्य होता है

महात्मा लोगोंसे आपने न जाने कितनी बार सुना होगा—'अणु–अणुमें प्रभु विराज रहे हैं; ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ वे न हों।' महात्मा लोग

केवल ऐसा कहते हैं, ऐसी बात नहीं है; उन्हें अणु-अणुमें प्रभुके दर्शन होते हैं। पर क्या हमलोग उनके इस कथनका पूरा-पूरा मर्म ग्रहण कर पाते हैं ? यदि ग्रहण कर पाते तो तत्क्षण हमें भी अणु-अणुमें प्रभुका दर्शन होने लग जाता। ऐसा क्यों नहीं होता ? अर्थात् 'अणु-अणुमें प्रभु हैं'—इस कथनका मर्म ग्रहण होकर अणु-अणुमें प्रभुका दर्शन क्यों नहीं होने लग जाता ? इसका वास्तविक कारण तो प्रभु जानें, पर महात्मा लोग स्थूल कारण बतलाते हैं कि अन्तःकरणमें सामर्थ्य नहीं है कि वह सत्यके मर्मको ग्रहण कर सके। अन्तःकरण मलिन है। अन्तःकरणकी स्वच्छताके तारतम्यसे ही सत्यके प्रकाशका तारतम्य हो जाता है। सत्य वस्तु एक होते हुए भी ग्रहण-शक्तिके तारतम्यसे अनुभवका भी तारतम्य हो जाता है।

भगवान्पर निर्भर होनेकी चेष्टा कीजिये

अधिक-से-अधिक भगवान्पर निर्भर होनेकी चेष्टा कीजिये। सबसे निरापद एवं पतनके भयसे सर्वथा शून्य यह मार्ग है। इसपर दृढ़ विश्वास करते रहना चाहिये—भगवान् हैं, वे हमारे हैं और हमारा मंगल ही करते हैं।

अपनी पसंदगी मनसे सर्वथा निकाल दीजिये। हमारी बुद्धि प्राकृत है, अज्ञानसे भरी हुई है, पापोंके संस्कारसे मलिन है, बहुत कम दूरकी बात सोचती है। बहुत बार हमलोग उस बातमें अपना मंगल मान लेते हैं, जिस बातसे हमारी अत्यन्त हानि होनेवाली होती है; पर भगवान्की बुद्धि भगवन्मयी है, वहाँ भूल होनेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वे हमारे लिये जो कुछ भी सोचते हैं, या सोचेंगे, उसीमें हमारा अनन्त मंगल है और उन्हींकी पंसदगी हमारी पसंदगी होनी चाहिये। भगवान्पर निर्भर करनेवाले भक्तको यह सदाके लिये मान लेना चाहिये कि उन्होंने (भगवान्ने) जिस परिस्थितिमें हमें रखा है, वही उन्हें (भगवान्को) मंजूर है। यदि उन्हें मंजूर न होती तो परिस्थिति अवश्य बदल जाती। ऐसा विश्वासी भक्त सारी चिन्ताओंसे मुक्त होता है। चिन्ता होती है तो इस बातकी कि कहीं हमारी निर्भरतामें तो दोष नहीं आ रहा है—हम कहीं उन्हें छोड़कर अन्य साधनोंपर, अन्य उपायोंपर तो निर्भर नहीं कर रहे हैं। भगवद्दर्शनकी चाह भी उन्हींपर छोड़ देनी चाहिये। भगवद्दर्शन शीघ्र-से-शीघ्र हो, इसका सर्वोत्तम उपाय है कि इस बातको भी उन्हींपर छोड़ दें। अत्यन्त व्याकुल हो जाना, यह दूसरे नंबरकी बात है।

जगत्का प्रत्येक प्राणी यह चाहता है कि हमारे पास जो है, वह

बना रहे और जो नहीं है, वह मिल जाय। इसीके लिये सारा संसार भटकता है। पर यदि प्राणी भगवान्पर निर्भर हो सके तो उसके लिये सब बातोंपर भार स्वयं जगत्पति वहन करेंगे। जब वे स्वयं योगक्षेम चलायेंगे, तब वह योगक्षेम कितना सुन्दर होगा——इसकी कल्पना भी हमारा मलिन मन नहीं कर सकता। वे तैयार हैं और हमसे इसके बदलेमें चाहते हैं कि हम इस दुःखालय संसारका चिन्तन छोड़कर उनका चिन्तन करें। कोई कहे——'तुम दुःखकी चिन्ता छोड़ दो, अपनी जलन मिटा दो, मैं तुम्हारा सब काम कर दूँगा;' फिर भी ऐसा सौदा, वह भी स्वयं जगत्पतिके साथ, न करनेवाला महान् मूर्ख है। ये बातें भावुकताकी नहीं हैं, ध्रुव सत्य हैं। विश्वास करके आप अपने मनको पारिवारिक तथा अन्य सभी चिन्ताओंसे खाली करके प्रभुका चिन्तन कीजिये। आप देखेंगे कि इतने सुन्दर ढंगसे आपकी लौकिक एवं पारमार्थिक——सभी समस्याएँ हल होंगी कि आप मुग्ध हो जायँगे। केवल उनपर निर्भर होकर चल पड़नेकी जरूरत है, प्रमाण तो पद–पदपर मिल जायगा। इस निर्भरताकी परीक्षा होती है——अनुकूल परिस्थितियोंमें ऐसा भ्रम हो सकता है कि प्रभु–इच्छामें हमें पूर्ण संतोष है; परंतु सर्वथा मनके प्रतिकूल परिस्थितिमें जब यह भाव स्वाभाविक रहे कि 'प्रभुने बड़ा मंगल किया', तब समझना चाहिये कि निर्भरता हुई है। विवेकके द्वारा संतोष करना अर्थात् यह मानना कि 'प्रभु जो करते हैं, ठीक करते हैं, अतः यह भी ठीक ही हुआ होगा'——इस प्रकारसे प्रतिकूल परिस्थितिमें समाधान करना भी उत्तम है। पर जहाँ संतोष विवेकके द्वारा किया जाता है, वहाँ निर्भरतामें कमी है। लाचारीसे संतोष करना अर्थात् ऐसा मानना कि 'क्या करें, हमारा क्या वश है'——यह तो निर्भरतामें कलंक हैं।

वास्तविक रूपमें निर्भर होते ही सारे शुभ–अशुभ नष्ट हो जाते हैं तथा सर्वथा नये विधानके अनुसार ही निर्भर भक्तके जीवनके शेष दिन बीतते हैं। अतः लौकिक दृष्टिसे भी अशुभ परिस्थिति, जो अशुभ कर्मोंके फलसे प्राप्त होती है, उसके सामने प्रायः नहीं ही आती; तथापि किसी–किसी भक्तका सम्मान बढ़ानेके लिये——जगत्को दिखलानेके लिये कि भगवान्का भक्त महान् विपत्तिको भी किस प्रकार उनका विधान मानकर सहर्ष स्वीकार करता है, लौकिक दृष्टिसे अशुभ परिस्थितियाँ उनकी (भगवान्की) खास इच्छासे आती हैं। यद्यपि अधिकांश भक्तोंके जीवनमें अशुभ परिस्थितियाँ

नहीं आतीं, फिर भी साधकको अपनी ओरसे यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि मैं प्रतिकूल परिस्थितिको भी उनका विधान मानकर सर्वथा अम्लानचित्तसे स्वीकार करूँगा।' बस, सर्वथा सब प्रकारकी चिन्ताओंसे रहित होकर भगवान्‌में मन लगानेकी चेष्टा कीजिये। यहाँ जो कुछ, जैसे भी हो रहा है, होने दीजिये और जितनी बार मन संसारके चिन्तनमें लगे, उतनी बार उसे संसारसे हटाकर प्रभुमें लगाइये——यही साधन करना है। प्रेम आता है कि नहीं, वृत्तियाँ सुधरती हैं कि नहीं——इसकी चिन्ता छोड़ दीजिये। चित्तवृत्तिकी धारा निरन्तर भगवान्‌की ओर हो, इतना ही करना है। यदि आप अपनी ओरसे पूर्ण शक्ति लगाकर प्रयत्न करेंगे तो भगवान्‌की कृपासे सफलता मिलेगी और बहुत शीघ्र मन भगवान्‌में लग जायगा।

जिस क्षण आपका हृदय कातर होकर रोने लगेगा, उसी क्षण प्रभु सुन लेंगे

आप भगवान्‌की यह बड़ी भारी कृपा समझें कि आसक्ति आपको आसक्तिके रूपमें दीख रही है। इसका मिटना भगवत्कृपासापेक्ष है। प्रयत्नसे यह कम होती है, पर इसके नाशका सर्वोत्तम उपाय है——भगवान्‌के सामने सच्चे हृदयसे प्रार्थना जिनके एक संकल्पसे विश्वका निर्माण हो जाता है और संकल्प छोड़ते ही सब नष्ट हो जाता है, वे यदि चाहें तो उनके लिये आपके इस दोषका नाश कितनी तुच्छ बात है——यह आप सहजमें अनुमान लगा सकते हैं। अर्न्तहृदयकी करुण प्रार्थनाके द्वारा आप उनमें चाह उत्पन्न कर दें। ठीक मानिये, यदि आप सच्चे हृदयसे इस दोषका नाश चाहने लग जाँय तो प्रभुको अवश्य ही दया आ जायगी और क्षणभरमें उनकी कृपासे सारे दोष मिटकर आपका मन उनमें लग जायगा। आप चाहते नहीं हों, यह बात नहीं है; पर अभी चाह बहुत मन्द है। प्रार्थना करते-करते जिस क्षण सचमुच इन दोषोंके लिये हृदयमें जलन पैदा हो जायगी और आपका हृदय कातर होकर रोने लगेगा, उसी क्षण प्रभु सुन लेंगे। अवश्य ही यह दूसरी श्रेणीकी बात है। कुछ भी न माँगना सर्वोत्तम है।

अपने आपको सर्वथा उनपर छोड़ दीजिये

भगवान् क्या, कब, कैसे करते हैं——इसे कोई नहीं जानता। वे क्या हैं, इस बातको वस्तुतः वे ही जानते हैं। पर आजतक जितने ऊँचे-ऊँचे संत

हो गये हैं और हैं, उन्होंने अनुभव किया कि वे हैं और जो कुछ करते हैं, वही ठीक है; उसीमें प्रत्येक जीवनका अनन्त मंगल है। उनसे कुछ भी न चाहकर अपने आपको सर्वथा उनपर छोड़ देना चाहिये। अतः आप भी अपने–आपको सर्वथा उनपर छोड़ दीजिये। अपनी ओरसे केवल इतनी चेष्टा करें कि जीभके द्वारा निरन्तर नाम–जप हो; उसीमें आनन्द मानिये। इतनी बात अवश्य देख लें कि अपनी ओरसे सारी शक्ति लगा दी जाय।

संसारसे मनको हटाकर भगवान्‌में लगाइये

एक बात खूब ध्यानमें रखनेकी है––भगवान्‌के मार्गमें बढ़नवालेको साथी नहीं खोजना चाहिये। साथ मिल जाय, ले लें; किंतु साथकी अपेक्षा न रखें। खासकर आजकल कलियुगके भीषण वातावरणमें संसारके गर्तसे निकालनेमें सहायता देनेवाले साथी बहुत कम मिलते हैं।

कालके प्रवाहमें आज जिसे मनुष्य अपना कहता है, वे सब–के–सब छिन्न–भिन्न हो जायँगे। आप ही सोचें––इस जन्मके पहले भी तो आप कहीं थे, परिवार भी होगा; किंतु आज उसकी स्मृतितक नहीं है। वे भूखे मर रहे होंगे तो भी आपको उनका पता नहीं। इसी प्रकार मृत्यु वर्तमान परिवारकी स्मृति भी नष्ट कर देगी। पर मोहवश मनुष्य विचारता नहीं। तात्पर्य यही है––संसारसे मनको हटाकर भगवान्‌में लगाना चाहिये। समय किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता। किंतु हताश भी होनेकी जरूरत नहीं है। कृपामयका आश्रय जिसने वाणीसे भी ले रखा है, उसका भी उद्धार वे करेंगे ही। फिर जो उनके चरणोंमें मन लगाना चाहते हैं, उनके लिये क्या कहा जाय।

भगवान्‌से मनको जोड़िये

आपका मन जिन–जिन पदार्थोंका चिन्तन करता है, उनसे कितने दिनोंका सम्बन्ध है, जरा विचारें। इस देहके धारण करनेके समयसे ही तो उनका सम्बन्ध हुआ है। अतएव एक सीमित समयके चित्र बार–बार मनमें उलट–पलट करके आते हैं और किसीसे राग होता है, किसीसे द्वेष होता है; किसीको आप अपना मानते हैं, किसीको पराया; किसीसे दुःखी होते हैं, किसीसे प्रसन्न होते हैं––यही भूल है। हमलोगोंको इसीको मिटाना है। इन सब स्थानोंसे मनको निकालना है और सबके बदले केवल एक भगवान्‌का चिन्तन करना है। हमारे चिन्तनका जितना स्थान भगवान् ग्रहण करेंगे, उतना

अंश विषयोंसे रहित होगा। जिस दिन केवल भगवान्–ही–भगवान् रहेंगे, उस दिन संसार पूर्णरूपसे निकल जायगा। हमलोग अभ्यास करें, चेष्टा करें मनको निरन्तर भगवदाकार बनानेकी। पहले विश्वास करें—'इस जगत्में सुख नहीं है; फिर प्रतीति होनेपर विचारके द्वारा निश्चित करें—यहाँ सुख नहीं है। 'इस प्रकार निरन्तर—'यहाँ इस जगत्में सुख नहीं है', इस भावनाको दृढ़ करते हुए भगवान्से मनको जोड़िये। देखिये, भगवान् कोई कल्पनाकी वस्तु नहीं हैं। वे हैं, सत्य हैं, नित्य हैं और आपकी प्रत्येक चेष्टाको देखते हैं। यदि सचमुच पूरी ईमानदारीसे अपनी ओरसे मनको लगानेकी पूरी चेष्टा करें तो कृपामयकी कृपा शेष कमी पूरा कर देगी। वे केवल नीयत देखते हैं। प्रयासकी तत्परता होनेपर उनकी कृपासे स्वयं संसारसे मन हटेगा और उनकी ओर लगेगा।

व्यवहार जैसे है, वैसे ही रहे; मनमें केवल उनका ही आसन रहे

पूरी चेष्टा कीजिये, मनसे और सभी आसक्तियाँ मिट जायँ। खूब गम्भीरतासे विचारें और बार–बार सोचें—स्त्री आदिके प्रति मेरा प्रेम होनेका क्या कारण है ? देखें, इसमें एक बड़ी सुन्दर रहस्यकी बात है। आप विचारें—आपका प्रेम आपकी स्त्री आदिकी चेतन आत्मासे है अथवा उसकी देहसे ? यदि देहसे प्रेम होता, तो मरनेके बाद—शरीरसे चेतन आत्माके निकल जानेके बाद भी उसे रहना चाहिये; पर सच मानिये, यदि आप कहीं जीवित रहें और आपकी स्त्री आदिमेंसे किसीकी मृत्यु हो गयी और उसके बाद यदि कोई आपको उस कमरेमें अकेले रहनेके लिये कहे तो डर लगेगा। आप शायद नहीं रहियेगा। ऐसी बात क्यों होती है ? इसलिये कि अब उस देहमें भगवान्का जो चेतन अंश था, वह नहीं रहा। भगवान्का अंश निकल जानेपर वह चीज इतनी भयावनी हो गयी कि अब उसके पास बैठनेमें भी डर लगता है। उनका अंश जबतक था, तबतक यह चीज प्रिय थी। अब सोचें, उनके अंशको लेकर ही तो आप इतने फँस रहे हैं। यदि स्वयं अंशी पूर्णरूपसे प्राप्त हो जाय तो कितना मधुर लगेगा ? कितना आकर्षण होगा ? स्वयं भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा है—

अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि।
अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः।।

(श्रीमद्भागवत ३। ९। ४२)

'विधाता ! मैं आत्माओंका भी आत्मा और स्त्री–पुत्रादि प्रियोंका भी प्रिय हूँ। देहादि भी मेरे ही लिये प्रिय हैं। अतः मुझसे ही प्रेम करना चाहिये।'

इन बातोंपर खूब विचार कीजिये। व्यवहार जैसे भी है, वैसे ही रहें; पर मनको खाली कर दीजिये। मनमें केवल उनका ही आसन रहे। संतलोग कहते है––ऐसी बात हो सकती है, यदि कोई सच्चे हृदयसे चाहने लगे। सच्ची चाह निर्मल अन्तःकरणमें होती है और निर्मल–अन्तःकरण बननेका सर्वोत्तम एवं सुलभ साधन है––निरन्तर नाम–रटन।

निराश मत होवें, भगवान्‌की कृपाकी बाट देखते रहें

आपको अपनी स्त्री आदिकी बीमारीकी चिन्ता है, सो स्त्री आदिके सम्बन्धमें यह बात विचारना चाहिये कि मंगलमयके विधानके अनुसार जो होना होगा, वही होगा। उनकी मृत्युमें हमारा मंगल होगा तो मृत्यु आकर ही रहेगी और संयोगसे मंगल होगा तो संयोग वे कभी नहीं तोड़ेंगे। इसके अतिरिक्त ज्योतिषके निर्णयसे अल्पायु एवं दीर्घायुका ठीक–ठीक पता चलना आजकल कठिन है। ज्योतिषशास्त्र ठीक है, पर उसके जाननेवाले आजके युगमें बहुत कम हैं। सबसे मुख्य बात यह है कि भगवान्‌के विधानको जाना भी नहीं जा सकता। यह सोचकर इस विषयमें आपको निश्चिन्त ही रहना चाहिये। आर्थिक प्रश्नको लेकर मनमें चिन्ता होनी भी स्वाभाविक है। साथ ही आप जैसे वातावरणमें रह रहे हैं, उसमें भगवान्‌पर विश्वासकी शिथिलता होना कोई आश्चर्य नहीं है। पर आप मनमें इस बातको निश्चय कर लें कि यह बात सर्वथा प्रारब्धसे सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक प्राणीका प्रारब्ध अलग–अलग है। सुख–दुःख जैसे, जिसके प्रारब्धमें हैं, वे आयेंगे ही। रोनेपर केवल दुःख बढ़ता है। खासकर आपको तो इन बातोंको छोड़ देना चाहिये। आप एवं आपसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त वस्तुएँ उनकी (भगवान्‌की) हैं। वे चाहे–जैसे उन्हें काममें लायें। यदि विवेक बटोरकर बार–बार मनको इस प्रकार सुझाव (सजेशन) दीजियेगा तो उनकी कृपासे मन इन बातोंको ग्रहण करने लगेगा।

देखें, घबरायें बिल्कुल नहीं। उनपर निर्भर होनेकी चेष्टा कीजिये। वे स्वयं बल देंगे। देरसे दें, जल्दी दें, कभी दें, पर देंगे अवश्य। एक क्षणके लिये भी निराश मत होवें। उनकी कृपाका एक क्षणके लिये भी

अनुभव होनेपर स्त्री आदिके प्रति सारा मोह, संसारका सारा प्रलोभन उसी क्षण हवा हो जायगा। कृपाका अनुभव भी उनकी कृपासे ही होगा। आप बाट देखते रहें। वस्तुतः भगवान्‌की कृपा ऐसी ही होती है कि हमलोग उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। बस, आवश्यकताभर बोलनेके बाद जागनेसे लेकर सोनेतक मशीनकी तरह जीभ भगवान्‌का नाम लेती रहे——यह काम अवश्य होना चाहिये। यह हो सकता है; यदि नहीं होता तो समझ लें कि मन आपको बुरी तरह धोखा दे रहा है। सावधान हो जाइये। कम-से-कम आप इतना ही कीजिये, बाकी वे सब कर देंगे, कर देंगे, कर देंगे। सारी व्यवस्था ठीक हो जायगी, हो जायगी, हो जायगी।

कम-से-कम बोलकर काम चलायें और शेष समय मशीनकी तरह भगवान्‌का नाम लें

श्रीसीताजीकी अवस्थाका वर्णन करते हुए हनुमानजी महाराज कहते हैं——

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट।।

(मानस ५। ३०)

'रात-दिन नामका पहरा लगा हुआ है, ध्यानके किवाड़ बंद हैं एवं अपने ही चरणोंमें नेत्रोंका लगा रहनारूप ताला बंद है, इसीलिये श्रीसीताजीके प्राण नहीं निकल पा रहे हैं।'

यह गोस्वामी तुलसीदासजीकी कोरी कल्पना नहीं है, श्रीरामजीके विरहमें श्रीसीताजीकी वास्तविक अवस्थाका वर्णन है। श्रभगवान्‌ने अपनी ह्लादिनी शक्तिके द्वारा यह आदर्श स्थापित करवाया कि हमसे बिछुड़े भक्तकी यही दशा होनी चाहिये। आप भी प्रभुसे बिछुड़ हुए हैं, अतः आप भी इस दशाको प्राप्त करनेकी सुन्दरतम अभिलाषाको लेकर नामका पहरा लगा दीजिये। कंजूसके ध्यानकी तरह वाणीका संयम कीजिये। अनावश्यक बिल्कुल मत बोलिये। कामके लिये बोलते समय भी यह ध्यान रहे कि कम-से-कम बोलकर काम चलाया जाय और शेष समय मशीनकी तरह नाम लें। आप अध्यापक हैं, आप विद्यालय जाइये; पर कक्षामें पढ़ाते समय ध्यान रखिये कि जिस समय चुप रहनेका अवसर हो, उस समय नाम लेने लगें।

लज्जा छोड़ दीजिये। वहाँके लोग ढोंगी कहेंगे अथवा प्रशंसा करेंगे, इस विचारको छोड़ दीजिये। दृढ़तासे उद्देश्य स्थिर करके प्रभुके चरणोंको पकड़िये। इसीमें जीवनकी सार्थकता है। जिस सुन्दर भावको लेकर आप साधनामें प्रवृत्त हुए हैं, जैसा सुन्दर मधुर सम्बन्ध आपने प्रभुके साथ स्थापित किया है, उसे एक क्षणके लिये भी कलुषित और ढीला मत कीजिये। अब इस सम्बन्धको निभानेके लिये ही जीना ओर मरना है।

मनसे एवं मानसिक देहसे अपने प्रियतमकी सेवा कीजिये

भगवान्‌के चरणोंकी साक्षात् नित्य सेवा जिस देहसे होती है, वह देह आपको प्राप्त नहीं है। यह देह पाञ्चभौतिक है, नश्वर है, मल–मूत्रसे भरा है, गंदा है। इसकी ओर उपराम हो जाइये। लालसा कीजिये उस देहकी, जिसको पाकर निन्य–निरन्तर उनके चरणोंमें बैठकर उनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हो। जबतक वह देह नहीं मिलती, तबतक वाणीसे, मनसे एवं मानसिक देहसे उनकी सेवा कीजिये, बड़ी लगनसे कीजिये। वही आपका असली धन है। वाणीसे प्रियतमका नाम लीजिये, मनसे लालसा कीजिये तथा उस देहकी ओर ध्यान रखिये एवं अभ्यास कीजिये कि मनका प्रत्येक संकल्प उनकी सेवाकी भावनासे सना हुआ हो। उनकी कृपाका आश्रय करके अपनी पूरी ताकत लगा दीजिये। वे देखेंगे और आपकी व्याकुलता देखकर उनके हृदयमें अनुरागकी लहरें उठने लगेंगी—उनके हृदयमें चाह होने लगेगी आपसे मिलकर आनन्द लेनेकी और आप निहाल हो जायँगे।

जगत्‌की परिस्थितियोंके हेर–फेरको खेल समझकर खेलते चले जाइये

आप शिक्षक हैं और विद्यालयकी स्थिति बड़ी विचित्र है, यह माना; परंतु विद्यालय ही क्या, आपको चाहिये सारे जगत्‌की परिस्थितियोंके हेर–फेरको बिल्कुल गौणतम कर दें। भगवान्‌ने जैसे रच रखा है, वही होगा और उसीमें सबका मंगल है। सिनेमा–हाउसमें जिस प्रकार रील घूमती रहती है और एक–पर–एक दृश्य बदलते रहते हैं, उसी प्रकार विश्वास रखियेगा कि फिल्म घूम रही है। एकके बाद एक दृश्य आ रहे हैं। बस, इन्हें खेल समझकर देखते चले जाना चाहिये। खूब विश्वास रखिये—जिस फिल्मके ऑपरेटर, संचालक, मैनेजर मंगलमय भगवान् हैं, उसका पर्यवसान

किसीके न चाहनेपर भी जो होनेवाला है, वह होकर ही रहेगा। फिर चिन्ता क्यों करें। चिन्ता तो, बस, हरिनामकी करनी है। यह बातें केवल कथनमात्रकी नहीं हैं। मनुष्य भगवद्दयापर विश्वास करके इन्हें अनुभव कर सकता है। अतएव किसी भी प्रकारकी परिस्थितिमें किंचिंतमात्र भी विचलित न होकर भगवान्‌की ओर ही बढ़नेकी चेष्टा करें।

एक बात और है। विद्यालयसे आपका सम्बन्ध सच पूछें तो यही है कि इसके द्वारा आपकी रोटीका प्रश्न हल होता है। बस, इसके सिवा आपको उससे क्या लाभ है ? थोड़ी देरके लिये कल्पना करें कि परिस्थितिसे बाध्य होकर आपलोगोंको विद्यालय छोड़ देना पड़े; पर इससे आपका क्या बनता-बिगड़ता है ? विश्वास रखिये—यदि भगवान्‌की मर्जी है कि आपलोगोंको भोजनाच्छादन अच्छी तरहेसे प्राप्त होता रहे तो जगत्‌में ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ है, जो इसे बंद कर सके। किंतु यदि उनकी मर्जी है कि आपलोगोंको भूखों मरना पड़े तो जगत्‌में ऐसा कोई भी नहीं है, जो आपलोगोंको खिला सके। भले ही पूर्णरूपसे न हो, आंशिकरूपसे आपने उस सर्वेश्वरकी शरण ली है। इस आंशिक शरणागतिका मूल्य थोड़ा नहीं है। आपलोगोंको भगवान्‌के सिवा और किसीका मुँह जोहनेकी जरूरत नहीं है।

सत्यपर स्थित रहियेगा। जगत्‌का प्रलोभन चाहे कितना भी आकर्षक क्यों न हो, सत्यसे न हटियेगा। आवश्यकता पड़नेपर मृत्यु स्वीकार कर लेनी चाहिये, किंतु सत्यका आश्रय नहीं छोड़ना चाहिये। जितनी मात्रामें आपके पास दृढ़ भगवद्विश्वास रहेगा, उतनी ही मात्रामें आप सत्यपर भी दृढ़ रह सकेंगे—यह बात भी ध्यानमें रखेंगे।

आपने जीवनके अन्तिम समयमें भगवत्स्मृति होनेकी बात लिखी है। यह खूब ध्यान रहे कि यदि कोई साधनके बलपर अन्तसमय भगवान्‌को याद कर लेनेका दावा करे तो मेरी समझमें वह भूल करता है। अन्तसमयमें भगवत्स्मृति होना एकमात्र भगवत्कृपासापेक्ष है। इसलिये भगवत्कृपाका अवलम्बन करके आप निरन्तर प्रसन्न रहें और यह विश्वास रखें—'प्रभु अत्यन्त दयामय हैं, वे मेरी वाचिक शरणागतिकी अवहेलना नहीं करेंगे। चाहे मैं कितना ही अध मम क्यों न होऊँ, अन्त-समयमें वे मुझे स्वयं आकर ले जायँगे।

निराश न होकर भगवान्‌की ओर बढ़ चलें

बिल्कुल निराश न होकर श्रीभगवान्‌की ओर बढ़ चलें। सचमुच

बढ़नेकी इच्छा रखनेवालेको प्रभु बुला लेते हैं। जगत्के किसी हेर–फेरसे चकित होनेकी आवश्यकता नहीं। जो कुछ होता है, भगवान्का रचा हुआ होता है। आपके न चाहनेपर भी पर भी वह होकर ही रहेगा। उसे कोई टाल नहीं सकता। इसलिये यहाँसे अपनी दृष्टि सर्वथा मोड़ लेनी चाहिये और अधिक–से–अधिक भगवान्का चिन्तन करना चाहिये। अन्यथा इस जगत्को देखकर कभी हँसना और कभी रोना पड़ेगा ही।

एक बात और है। जहाँतक हो, प्रपञ्चके काममें कम पड़ियेगा; नहीं तो भगवान् गौण हो जायँगे और प्रपञ्च मुख्य।

भगवान्का नाम यदि नहीं भूले तो सब ठीक हो जायगा। यही सबसे मुख्य बात है।

भगवान्को जीवनमें मुख्य वस्तु बनाइये !

जो हो रहा है, वह ठीक हो रहा है––यों समझकर सदा निश्चिन्त रहना चाहिये। एक क्षणके लिये भी अपना लक्ष्य नहीं भूलना चाहिये। मुझे इस जीवनमें भगवान्के पास पहुँचना है––अगर इस बातको कभी न भूलेंगे तो फिर अपने–आप जीवनकी सारी चेष्टाएँ भगवान्के लिये होने लगेंगी। वस्तुतः यहाँका कोई भी पदार्थ हमें इसलिये साथमें रखना चाहिये कि उसके सहयोगसे भगवान्के मार्गमें अधिक–से–अधिक बढ़ा जा सके। जो पदार्थ हमें भगवान्से अलग हटाता हो, वह तो सर्वथा त्याज्य है, चाहे वह कितना ही प्रिय क्यों न हो। यह कोई पढ़–सुन लेनेकी बात नहीं है, भगवान्के इच्छुक भक्तोंको सचमुच इसका क्रियात्मक प्रयोग करना पड़ता है। अवश्य ही भगवान् परम दयालु हैं और वे अपने ऊपर निर्भर करनेवाले भक्तकी सब प्रकार सहायता ही करते हैं, किंतु कभी–कभी प्रेम–परीक्षाके लिये ऐसा अवसर भी मिला देते हैं, जब भक्तको एक ओर भगवान् और दूसरी ओर प्रलोभन––इन दोनोंमेंसे किसी एक पथको चुनना पड़ता है। भगवान्के विश्वासी भक्त तो सारे जगत्का ऐश्वर्य ठुकराकर भगवान्को वरण करते हैं। अतः आपको भी सदा सावधान रहना चाहिये, जिससे भगवान् ही जीवनमें मुख्य वस्तु हों और उनके लिये यदि आवश्यकता हो तो सब कुछ छोड़ दिया जाय।

जगत्के समर्थनकी चिन्ता न कीजिये

कलियुग प्रभाव जैसे–जैसे बढ़ेगा, वैसे–वैसे भगवान्में विश्वास रखनेवालोंकी संख्या घटेगी। भगवद्–विश्वासी पुरुष मूर्ख समझे जायँगे।

उन लोगोंकी सत्यमूलक चेष्टाओंका आदर होना तो दूर रहा, वरं निन्दा होगी। इसलिये 'जगत्‌के लोग मुझे क्या कहेंगे'——इस बातकी ओरसे दृष्टि कम कर लेनी चाहिये। यदि हमें कोई बात सत्य दीखे और उसका ही आचरण भगवदिच्छानुकूल प्रतीत हो तो वैसे ही करना चाहिये। जनसमुदायकी दृष्टि भी आदरणीय अवश्य है, यदि भगवदिच्छानुकूल हो; पर अपनी नीयतमें जो चेष्टा प्रभुको प्रसन्न करनेवाली जँचे, उसका समर्थन सर्वसाध ारणके द्वारा न होनेपर भी उसे अवश्य करना चाहिये।

श्रीकृष्णके प्रति आसक्ति बढ़ाइये

पाँच–पाँच मिनटपर भगवत्स्मरणकी चेष्टा करते हैं, पर भूल हो जाती है, सो इस विषयमें यह निवेदन है कि भूल होती है तो होने दें, पर चेष्टा करते ही चले जायँ। जबतक श्रीकृष्ण प्यारे नहीं लगते, तबतक भूल होगी ही। यह नियम है, सबसे प्यारी चीज भूलती ही नहीं। अभी श्रीकृष्णसे अधिक प्यारी चीज और कोई होगी, जिसके लिये श्रीकृष्णको भूल जाते हैं। श्रीकृष्णको याद करते–करते अपने–आप सब ओरका आकर्षण फीका पड़ जायगा और वे सबसे प्रिय लगने लगेंगे। फिर भूल नहीं होगी।

भावपूर्ण पुकार सच्चे मनसे नहीं होती, यह ठीक है; पर इससे यह स्पष्ट है कि श्रीकृष्णकी अभी पूरी आवश्यकता नहीं 'प्रतीत' हुई है। प्यासेको पानीकी पुकारके लिये कहीं सीखने नहीं जाना पड़ता, अपने–आप पुकार होती है; क्योंकि पानी उसके लिये अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। वैसे ही श्रीकृष्ण जिस दिन परमावश्यक वस्तु बन जायँगे, उस दिन सच्चे मनसे उनके लिये पुकार होने लगेगी। श्रीकृष्णको याद करते–करते वे अपने–आप आवश्यक बन जायँगे। फिर पुकार होगी।

भागवतके सप्ताह–पाठके समय नाम–जप कम हुआ, तो कोई बात नहीं। श्रीमद्भागवत तो भगवान्‌का स्वरूप ही है। नाम एवं पाठ दोनों ही भगवद्रूप हैं। कोई–सा हो, निरन्तर होना चाहिये। मनमें खाने–पीनेकी आसक्ति है, इससे चिन्तित मत होइये। बस, श्रीकृष्णके प्रति आसक्ति बढ़ाइये। श्रीकृष्णकी आसक्ति मोक्ष–सुखसे भी वैराग्य उत्पन्न कर देती है, खाने–पीनेकी आसक्ति तो तुच्छातितुच्छ बात है।

आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

राधा बाबा

कृपाके लिये श्रीजीके चरणोंका चिन्तन करें

'श्रीजीकी मुझपर कृपा है, इसका अनुभव कैसे हो'—इसका उपाय आपने पूछा है। मेरी समझमें इसका सर्वोत्तम उपाय है—श्रीजीके चरणोंका निरन्तर चिन्तन। मन श्रीजीके चरणोंमें चिपककर ही श्रीजीकी कृपाका अनुभव कर सकता है। अत्यन्त प्रेमसे 'राधे–राधे' कहते हुए श्रीराधारानीके चरणोंमें मनको लीन कर दें। फिर ऐसी कृपाका अनुभव होगा कि आप निहाल हो जायँगे।

अपने भविष्यको सदा निर्मल देखो

संतोके वचन हैं—'मालिक हैं साहेब सीताराम, सोच मन काहे को करे।' बस, निश्चिन्त रहिये। एक बहुत ऊँचे महात्माने कहा है—'अपने भविष्यको निर्मल देखो। सोचो कि प्रभु तुम्हें अवश्य मिलेंगे, चाहे तुम कितना ही अधम क्यों न होओ।' हमलोग भी ऐसा ही सोचें। सचमुच अपना भविष्य मलिन सोचना भगवान्‌की अपार दयाका अपमान करना है।

भगवान्‌के कृपामय स्पर्शकी प्रतीक्षा कीजिये

एक बात ध्यानमें रहनी चाहिये कि यदि लेशमात्र भी आकर्षण भगवान्‌के अतिरिक्त किसी और जगह होता है तो समझ लेना चाहिये, हम भगवान्‌के शरण हुए ही नहीं। वास्तविक शरणागति हो जानेपर आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाता है। किंतु घबराना नहीं चाहिये। जिस दिन साधककी यह अभिलाषा हृदयसे सम्बद्ध हो जाती है, उसी क्षण भगवान् शरणागति स्वीकार कर लेते हैं। एक बात और है। जिसपर भगवान्‌की अत्यधिक कृपा होती है, जिसे भगवान् अपने पास बुलाना चाहते हैं, वस्तुतः वही इस मार्गमें वाचिक शरणागति भी ग्रहण करता है। देखें, आपकी इच्छा पूरी भी हो सकती है और नहीं भी पूरी हो सकती; किंतु यह वाचिक शरणागति एक दिन उन्हींकी दयासे सच्ची शरणागति में परिणत हो जायगी। आप भगवान्‌की दयाको अलौकिकताका अंदाज नहीं लगा सकते। मानवी बुद्धि भगवान्‌की दया कैसी होती है, इसको नहीं समझ सकती। यही कारण है कि अपने माप (स्टैंडर्ड) से ही हम भगवान्‌को जाँचते हैं और दुःखी रहते हैं। अतः सब प्रकारकी चिन्ता छोड़कर उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहें, जिस दिन भगवान्‌के कृपामय स्पर्शका अनुभव करके आप कृतार्थ होनेवाले हैं।

संतके साथ शुद्ध पारमार्थिक सम्बन्ध ही रहे

जीवनका उद्देश्य यदि भगवान् हैं तो फिर किसी भी जागतिक प्रलोभनमें नहीं भूलना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने राजा मुचुकुन्दको स्वयं प्रलोभन देकर जाँचा; किंतु मुचुकुन्दने भगवान्‌की ही दयासे भगवान्‌को लिया, भोगोंको नहीं। उसी प्रकार संतके साथ सर्वथा शुद्ध पारमार्थिक सम्बन्ध ही रहे।

'नींद तोहि बेचूँगी, आली !'

एक भक्तका पद है, जिसकी प्रथम पंक्ति है——

'नींद तोहि बेचूँगी, आली ! जो कोई गाहक होय।'

इसपर विचार करें। प्रेमरसभावितमति व्रजसुन्दरियाँ अपना व्यावहारिक ज्ञान यहाँतक खो बैठती हैं कि उन्हें प्रतीत होने लगता है——नींद भी खरीद–बिक्रीकी एक वस्तु है। वास्तवमें तो तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाली निद्रा श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता व्रजसुन्दरियोंको स्पर्श ही नहीं कर सकती। अपने प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके चिन्तनमें वृत्तियोंके सर्वथा तन्मय हो जानेपर वे आत्मविस्मृत हो जाती हैं, इस आत्मविस्मृतिको ही वे निद्रा मान लेती हैं। सुषुप्तिकी भाँति अज्ञानमें उनकी वृत्तियाँ लीन हों, ऐसी उनकी निद्रा नहीं। उनकी चित्तभूमिमें तो सोते समय भी नित्य–निरन्तर अखण्ड श्रीकृष्णस्फुरण होता ही रहता है——

चलत, चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत–उत जात।।

ऐसी अनोखी निद्रामें ही एक गोपी विभोर थी——प्रियतम श्रीकृष्णके चिन्तनमें अपने–आपको भूली हुई शयन–पर्यंकपर अवस्थित थी। उसी समय लीलाविहारी आये, सर्वथा समीपतक आये। उन्होंने गोपीको देखा, वे उसके पास कुछ क्षण खड़े रहे, पर उसे उन्होंने जगाया नहीं। बल्कि मिलनोत्कण्ठा बढ़ाकर अधिकाधिक सुख देनेके उद्देश्यसे वे लौट गये। उनके लौटते ही व्रजसुन्दरीके हृदय–तन्तु उन्हींसे नित्य जुड़े रहनेके कारण खिंच–से गये, व्रजसुन्दरी भाव–समाधिसे जाग उठी। अभी भी प्राणनाथ तन्तुओंको आकर्षित करे रहे थे। इसीलिये गोपी व्याकुल होकर प्रांगणकी ओर दौड़ पड़ी। वहाँ देखा——विखरे हुए गुलालपर चक्र, छत्र, यव, अंकुश, ध्वज आदि चिह्नोंसे युक्त प्रियतमके पदतल अंकित हैं। अब तो गोपीके दुःखका पार नहीं——'आह ! प्रियतम आँगनमें आये और लौट

गये, और तुम री नींद ! अरी बैरिन !! मुझे सुलाये रखा ? री तुझे लज्जा नहीं आती ? तू मेरी सखी थी न ? मेरी व्यथा हरने आया करती थी और इसीके मूल्यमें तुमने मेरे प्रियतमके दर्शन–सुखको हर लिया ! क्यों ? ठीक है न ? अच्छा बात है। सखी ! मैंने भर पाया ! अब तू यहाँसे जा। नहीं, नहीं ठहर जा, यों तू पुनः मेरे पास आ जायगी। इस वृन्दावनमें तूझे पूछता ही कौन है, लौटकर पुनः मेरी वञ्चना करेगी। इसीलिये सखी ! मैं तो तुझे बेच दूँगी––किसी चाहनेवालेके अधीन कर दूँगी, जिससे तू लौट न सके। पर तेरा ग्राहक इस व्रजमें कहाँ है ? हाय ! हाय !! कदाचित् कोई तेरा ग्राहक मिल जाय तो नींद सखी ! उसके हाथ तुझे बेचकर मैं अपना पिंड छुड़ा लूँगी।'

बड़भागिनी व्रजसुन्दरी श्रीकृष्णदर्शनमें बाधा पाकर नींद–जैसी वस्तुको भी बेचनेका संकल्प कर रही है, पर हमलोग इतने अभागे हैं कि प्रत्यक्षमें जो वस्तुएँ श्रीकृष्णदर्शनमें निरन्तर बाधक है, जिनका त्याग अत्यन्त आसानीसे चाहते ही किया जा सकता है, उन्हें चाह–चाहकर, बुला–बुलाकर हृदयसे लगाये रहते हैं, उनके न मिलनेपर दुःखी होते रहते हैं।

अन्यके लिये स्थान न रहे

पढ़ने–सुननेका सार इतना ही है कि नेत्रोंमें, मनमें, प्राणमें प्रिया–प्रियतम बस जायँ, अन्यके लिये तनिक भी स्थान न रहे।

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आपु पथिक फिरि जाय।'।

सराय (धर्मशाला) में तिल रखनेका भी स्थान न देखकर जैसे नया यात्री वहाँसे हटकर दूसरी धर्मशालाकी खोजमें चला जाता है, वैसे ही नेत्र, मन, प्राणोंमें सर्वत्र प्रिया–प्रियतमको भरा देखकर विषय अपने–आप हट जायँ, इसके लिये प्रयत्न करें।

व्रजकी रजमें रहकर सारी चिन्ता भूल जाइये

आप लिखते हैं––'श्रीवृन्दावन निजधाममें रहते हुए भी मेरे मनमें न जाने कितने पाप भरे हैं, कुछ भी असर होता नहीं।' बात ठीक है; पर चिन्ता क्यों करते हैं ? राधारानीके घरमें रहकर चिन्ता क्यों ? राधारानीकी प्यारी भूमिमें रह रहे हैं––भला, यह कम सौभाग्यकी बात है ? बस, इसी सौभाग्यको

याद करते हुए आनन्दमें मस्त रहिये। चाहे कुछ न हो, उस परम पवित्रतम सच्चिदानन्दमयी भूमिकी रजमें रहकर सारी चिन्ता भूल जाइये।

* *

आप व्रजमें बसते हैं, राधारानीकी अपार कृपासे ही व्रजवास मिलता है। पर जैसे शरीर व्रजमें है, वैसे मनका अणु–अणु व्रजकिशोरी एवं व्रज–किशोरमें रम जाय, इतनी चेष्टा और करें।

भगवान्‌के समर्पित वस्तुका महत्त्व

जो व्यक्ति भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित हो जाता है, उसकी दृष्टिमें अपने केवल भगवान् ही होते हैं एवं जो कुछ भी बचा रहता है, वह भगवान्‌का ही होता है। उस अवस्थामें उसके लिये 'मेरी माँ, मेरे बाप, मेरे भाई' आदि कुछ भी नहीं नहीं रहते। किंतु जो व्यक्ति अपने आपको उससे (भगवान्‌के समर्पित व्यक्तिसे) सम्बद्ध मानता है, वह बड़ा भाग्यवान् है; क्योंकि भगवान्‌को समर्पित हुई वस्तुसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तु भी स्वाभाविक भगवान्‌को समर्पित हो जाती है और उसपर भगवान्‌का विशेष अधिकार होता है। अवश्य यह बात तभी लागू पड़ेगी, जब कोई व्यक्ति अपने आपको हृदयसे उससे (भगवान्‌के समर्पित भक्तसे) सम्बद्ध मानता है।

आप अपना भवन बुहारिये

सनातन आचारका पालन करते हुए ही आप प्रिया–प्रियतमका अखण्ड स्मरण कीजिये। दूसरे बनते हैं या बिगड़ते हैं, इसका ठेका आपको श्रीकृष्णने दिया हो तो फिर तो उनकी सँभाल करनी चाहिये; पर यदि ठेका नहीं दिया है तो यह दोहा याद कीजिये——

तेरे भाऐं जो करौ, भलौ–बुरौ संसार।
'नारायन' तू बैठि कै, अपनौ भवन बुहार।।

आप चाहें तो निश्चिन्त हो सकते हैं

खूब नाम लीजिये तथा भगवान्‌की कृपाका दर्शन प्रत्येक परिस्थितिमें कीजिये। भगवत्कृपा एवं नामजपका आश्रय लेकर निश्चिन्त हो जाइये। आप चाहें तो निश्चिन्त हो सकते हैं; आपके चाहनेभरकी देर है। आपने चाहा तो नामके रूपमें भगवान् बिना किसी परिश्रमके ही जीभपर नाचने

लगेंगे, उनकी कृपाका प्रवाह बह जायगा। स्वयं निहाल हो जायँगे और बहुतोंको निहाल करेंगे।

*　　　　　　　　*

नाम अधिक–से–अधिक जपिये, इतनी प्रार्थना है। श्रीकृष्ण बड़े दयालु हैं, लेकिन परीक्षा भी अवश्य करते हैं। साथ ही उनके दरबारसे कोई निराश नहीं लौटता, यह बात भी भूलनी नहीं चाहिये।

युगल–सरकारको चित्तमें बसाइये

युगल–सरकारको चित्तमें बसाइये—जीवनका यही परम लाभ है। समय विद्युतकी भाँति आपके देखते–देखते आपको छोड़कर भाग रहा है। गिनतीके श्वास एक–एक करके कम होते जा रहे हैं। अब समय नहीं है कि आप किसी भी अन्य प्रपञ्चमें तनिक भी मन लगायें। वाणी प्रिया–प्रियतमके मधुर नामका उच्चारण करे, कान उनके लीलामृतका पान करें एवं नेत्रोंके सामने युगलछबि निरन्तर बनी रहे—बस, यही अभ्यास करना है तथा प्राणोंकी शक्ति लगाकर करना है।

भगवच्चिन्तनकी चेष्टा कीजिये, सफलता मिलेगी

खूब मौजसे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन कीजिये। सब काम एक तरफ तथा भगवच्चिन्तन एक तरफ। मनसे निश्चय करके चिन्तनकी चेष्टा कीजिये, तब चिन्तनमें सफलता मिलेगी। अन्यथा जबतक भगवान्‌के चिन्तनके समान कोई भी दूसरा काम लाभकारी दीखेगा, तबतक मन भगवान्‌को छोड़कर उस कामकी ओर ही झुकेगा; क्योंकि अनादिकालसे अन्य–अन्य विषयोंमें ही मनको स्वाद मिलता रहा है, भगवच्चिन्तनका स्वाद उसे ठीकसे कभी नहीं मिला। मिला होता तो फिर तो भगवच्चिन्तनके सिवा दूसरा काम मनसे होता ही नहीं।

महावाणीके पाठका अधिकारी

महावाणीके पाठ करनेका वास्तविक अधिकारी वह है, जिसके मनमें स्त्रीसम्भोगकी भावना सर्वथा समाप्त हो गयी हो, जो कामविकारसे सर्वथा मुक्त हो गया हो। महावाणी एक परम दिव्य ग्रन्थ है। बिना अधिकारी बने जो उसका पारायण करता है, उसके जीवनमें पतनकी ही आशंका

विशेष है। प्रिया–प्रियतम उनकी रक्षा करें।

शरीरके लिये संयम, पथ्य एवं औषधकी व्यवस्था रखनी ही चाहिये

शरीर क्षण–क्षण विनाशकी ओर ही बढ़ रहा है, यह प्रत्यक्ष है; पर विनष्ट होनेसे पूर्व इसे यथासम्भव इस अवस्थामें अवश्य रखना चाहिये कि यह अपनेमें रहनेवाले मनको प्रिया–प्रियतमकी ओर बढ़ते समय कहीं अद्विग्न न कर दे। मन जिस क्षण वास्तवमें प्रिया–प्रियतमको पकड़ लेगा, उस समय तो इसकी सँभालकी आवश्यकता नहीं रहेगी; सँभाल करेगा भी कौन ? सँभाल करता है मन; किंतु वह तो प्रिया–प्रियतमसे जा जुड़ा। अतः उस परिस्थितिमें तो शरीरका जो होना होगा, हो ही जायगा। पर उससे पूर्व शरीरके लिये संयम, पथ्य एवं औषधकी व्यवस्था रखनी ही चाहिये।

प्रिया–प्रियतमके प्रति सच्ची चाहका स्वरूप

प्रिया–प्रियतमका अखण्ड चिन्तन करें––बस, यही सार है। अभी मनमें अनेकों वासनाएँ, अनेकों कर्तव्यबुद्धियाँ भरी हैं। सब वासनाओंके जल जानेपर ही प्रिया–प्रियतमके प्रेमकी नींव खुदेगी; जीवनकी धारा उनकी ओर मुड़कर यह सच्ची चाह उत्पन्न होगी––

कबै झुकत मो ओर कौं ऐहैं मद–गज–चाल।
गरबाहीं दीन्हें दोऊ, प्रिया नवल नँदलाल।।
सिर झलकत मंजुल मुकुट, कटि लौ लट रहि छूटि।
सोहत ललित लिलार पै, उभै भौंह की जूटि।।
ता मधि बेंदी रतन की, गर मुकता की माल।
नैन छकौंहे कछु अरुन, सुंदर सरस बिसाल।।
कुडंल–झलक कपोल पर, राजति नाना भाँति।
कब इन नैननि देखिहौं बदन–चंद की कांति।।

अभी तो, सच पूछें, भजनकी नकल भी नहीं पूरी हो रही है। बस, उनकी कृपाकी बाट देखते रहिये।

* *

सिवा युगल–सरकारके और कुछ भी नहीं दीखे––इसका सरल–से–सरल उपाय है कि मनमें युगल–सरकारके प्रति आसक्ति पैदा हो

जाय। फिर मनमें ही नहीं, बाहरकी आँख भी जहाँ जायगी, वहाँ युगल-सरकार ही दीख पड़ेंगे। वस्तुतः युगल-सरकारके अतिरिक्त देखनेके लायक कोई और वस्तु है भी नहीं; पर हमलोगोंका मलिन मन इस बातको नहीं मानता, यही दुर्भाग्य है।

वहीं करें, जिसमें श्रीप्रिया-प्रियतमका मार्ग अधिक-से-अधिक प्रशस्त हो

जीवनका अनमोल समय व्यर्थ न जाय। बातों-बातोंमें ही जीवन समाप्त होता जा रहा है। यदि प्रिया-प्रियतमके चरणोंमें अनुराग नहीं हुआ तो यहाँकी सारी सफलता व्यर्थ है। दूसरे बातोंसे अनुराग होता भी नहीं; उसके लिये सर्वस्व त्याग करना पड़ता है। जबतक कुछ भी बचाकर रख लेनेकी वासना है, तबतक प्रेमकी बात करना तमाशा-सा है। अतः कहना यह है कि मन-ही-मन जरा यहाँके मोहको छोड़नेका अभ्यास कीजिये। माना, आपमें त्याग है, पर साथ ही सात्त्विक चेष्टाके नामपर बहुत-सी ऐसी चेष्टाएँ भी आप करते रहते हैं, जिनमें आपकी शक्ति व्यर्थ खर्च होती है। अतः एकमात्र वही आपको करना चाहिये, जिससे श्रीप्रिया-प्रियतमके प्रेमका मार्ग अधिक-से-अधिक प्रशस्त हो। थोड़ी सावधानी रखें, जिससे आपके द्वारा जो व्यर्थ चेष्टाएँ होती हैं, उनमें रोक लगे।

सारी बात इस बातपर निर्भर करती है कि श्रीप्रिया-प्रियतमकी स्मृति कितनी होती है। यदि स्मृति बढ़ रही है तो मार्ग ठीक है; किंतु यदि इसमें कमी आ रही है तो आप पथ भूल गये हैं, यह निश्चित बात है। आप इस कसौटीपर कसकर ही जीवनका सावधानीसे सुधार करना चाहिये।

दूसरेकी ओर न देखकर आप अपनेको ही सुधारिये

आप वृन्दावनमें रह रहे हैं—यह बड़ा सौभाग्य है; पर वृन्दावनमें रहकर आप दूसरोंकी त्रुटिरूप गंदी बातोंको देखनेके लिये समय क्यों लगाते हैं ? मेरी तो प्रेमभरी राय है कि जहाँ-कहीं भी—जिस स्थानमें, जिस मन्दिरमें बुरी बातोंको देखने-सुननेका मौका मिले, वहाँ जाना आप स्थगित कर दें। सर्वत्र आपको यदि यही मिलता हो तो आप जिस मकानमें हैं, उसीको प्रिया-प्रियतमका मन्दिर मानकर उसके कण-कणमें उनकी भावना कीजिये। वे वहाँ हैं ही; आपको इसलिये नहीं दीखते कि आप अभी उन्हें देखना नहीं

चाहते। किंतु यदि आपका मकान कहीं त्रुटियुक्त वातावरणसे भरा हो तो मैं तो यही कहूँगा कि आप वृन्दावन छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जाइये। बस, दूसरेकी ओर न देखकर आप अपनेको ही सुधारिये।

*　　　　*

व्रजमें रहते हुए जीवन श्रीप्रिया–प्रियतमके चरणोंमें न्योछावर होना चाहिये। इसीके लिये अधिक–से–अधिक चेष्टा होनी चाहिये। प्रपञ्चकी बात कम–से–कम सुनें एवं कहें। अपना अधिकांश समय भजन, पाठ, श्रीविग्रह–दर्शन, श्रीरास–दर्शन, लीला–श्रवण एवं प्रिया–प्रियतमके नाम–कीर्तन आदिमें ही बिताना चाहिये।

श्रीकृष्ण सच्ची चाहके मोलमें अपने–आपको बेच देते हैं

भगवच्चरणोंमें पूर्णरूपसे समर्पित हो जानेमें ही जीवनकी सार्थकता है। इसके लिये सब जगहसे सभी आसक्तियोंको खींचकर एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही पूर्ण ममत्व स्थापित करें। थोड़ा विचार करके देखें तो पता चलेगा कि इस समय भी हमलोग वास्तवमें आंशिक रूपसे भगवान्‌के साथ जुड़े हैं। सोचिये संसारमें जो कोई भी मनुष्य आपको प्यारा लगता है, वह क्यों प्यारा लगता है? यदि शरीर प्यारा होता तो जब इस शरीरसे चेतन निकल जाता है, तब भी वह प्यारा लगना चाहिये था। पर ऐसा होता नहीं। जहाँ चेतन इस शरीरसे निकला कि लोग इसे 'मुर्दा' नाम दे देते हैं, अपने प्यारेसे प्यारेका शरीर भी 'मुर्दा' हो जाता है। इसे हमलोग जला डालते हैं, नष्ट कर देते हैं; यहाँतक कि कई तो उस शरीरसे डरने लग जाते हैं। आपका शरीर भी आपको तभीतक प्यारा है, जबतक आप उस शरीरमें चेतनरूपसे हैं; आप जहाँ इससे निकले कि फिर इसे बिल्कुल भूल जाइयेगा। यह चेतन, जिसके रहनेसे स्त्री–पुत्र, भाई–बन्धु–मित्र आदिका शरीर प्यारा लगता है, श्रीकृष्णका ही अंश है। अतः यह सिद्ध हुआ कि असलमें हम श्रीकृष्णके अंशसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि अंशके न रहनेपर फिर हमारा उस शरीरसे प्रेम हट जाता है। भले ही पीछे रोये, पर स्त्री भी अपने मृतपतिके पास नहीं रहना चाहेगी। उससे कहिये—'अरे ! तुम्हारे पति हैं, इनके पास बैठो।' वह उत्तर देगी—'वे तो अब इस शरीरसे चले गये।' सारांश यह है—सभी आसक्तियाँ तभीतक हैं, जबतक श्रीकृष्णका अंश वहाँ मौजूद है। श्रीकृष्णका अंश छिपा कि आसक्ति भी छिपी।

अब फिर सोचिये, जिसका एक अंश आपको इतना मोहित कर रहा है, वे स्वयं पूर्णरूपमें यदि आपके सामने आयें तो कितने मोहनेवाले होंगे ! वे आ सकते हैं और आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। केवल चाहनेकी ही देर है। श्रीकृष्णका मूल्य सच्ची चाह है। वे तो अनमोल हैं, पर सच्ची चाहके मोलमें अनमोल होकर भी अपने आपको बेच देते हैं। ऐसा बढ़िया सुन्दर सौदा है—अलभ्य, अनुपम, सर्वोत्कृष्ट सौदा है; पर हमलोग ऐसे अभागे हैं कि दिन-रात संसारके ही पदार्थोंमें—उनके (भगवान्‌के) क्षुद्र आंशिक प्रकाशमें ही रम रहे हैं और उन्हें (भगवान्‌को) नहीं चाहते। यह चाह हो कैसे ? महात्मा लोग, अनुभवी लोग कहते हैं कि यह चाह मलिन अन्तःकरणमें होनी असम्भव है। जैसे भी हो, अन्तःकरणको साफ करो; फिर सच्ची इच्छा जागेगी। अन्तःकरणको साफ करनेका इस युगमे एकमात्र सबसे सरल उपाय है—निरन्तर नाम-जप। यदि कोई चाहे, सचमुच चाहे तो—भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका कहना है—'भगवान् और प्रार्थना सुननेमें भले ही देर करें, पर भजन हो—यह प्रार्थना अवश्य-अवश्य सुन लेते हैं।' अब विचार कीजिये कि हमलोगोंको क्या करना चाहिये।

हृदयमें निरन्तर उनके लिये आसन तैयार कीजिये

प्रिया-प्रियतममें मन लगनेमें दृढ़ निश्चयकी कमी है। दृढ़ निश्चय करके हृदयका द्वारा उनके लिये खोलकर प्रतीक्षा कीजिये, फिर तो वे स्वयं प्रवेश कर जायँगे। वे आपके हृदयके द्वारपर न जाने कितनी बार आते हैं; पर द्वार बंद पाते हैं, अथवा खुला भी होता है तो वे देखते हैं कि उनके लिये तो वहाँ स्थान ही नहीं है। आदिसे अन्ततक, ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर सर्वत्र संसार भरा है। फिर वे कैसे प्रवेश करें ? प्रवेश करें भी तो कहाँ ठहरें ? इसलिये आवश्यकता है कि द्वार खोल दें, अर्थात् सच्ची इच्छा मनमें जाग्रत करें कि मुझे एकमात्र प्रिया-प्रियतमकी आवश्यकता है, उनके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये तथा उनके लिये हृदयमें स्थान बनाइये। हृदयमें निरन्तर उनका ही चिन्तन बना रहे, निरन्तर उनके लिये आसन तैयार होता रहे। भूल जाइये इस संसारको उसके स्थानपर स्मरण कीजिये—'कल-कल करती हुई कालिन्दी प्रवाहित हो रही हैं; तटपर परम मनोहर दिव्यातिदिव्य एक कुसुमित कृदम्ब है। कदम्बके नीचे परम सुन्दर मणिमय वेदी है। उस वेदीपर कदम्बकी एम परम सुन्दर टहनी अपने कर-कमलमें धारण किये

श्रीयुगल-सरकार अवस्थित हैं। उनके श्रीअंगोंके सौन्दर्यसे कदम्ब, कालिन्दी, वन-उपवन—सभी उद्भासित हो रहे हैं। उनके अंग सुवाससे सारी वनस्थली सुवासित हो रही है, ऐसी झाँकीसे मनको निरन्तर भरते रहिये। फिर वे वन-विहार करते हुए आपके हृदयमन्दिरके द्वारपर पधारेंगे। उन्हें द्वार उन्मुक्त मिलेगा, वे झाँककर देखेंगे, सर्वत्र उन्हें अपनी ही छाया नाचती दीखेगी तथा कौतूहलवश वे उस छायाको केवल एक बार छू लेंगे। फिर तो छाया उन्हींका स्वरूप बन जायगी। आपके चिन्तनकी झाँकी वास्तविक दर्शनकी झाँकी बन जायगी। आप सदाके लिये कृतार्थ हो जायँगे। पर यह बातोंसे नहीं होता, करनेसे होता है।

भगवान्‌का प्रत्येक विधान कृपासे ही भरा होता है

जीवनमें एक बात कर लेनेपर सारा दुःख मिट सकता है। वह बात है—भगवान्‌की कृपालुतापर विश्वास कर लेना। सच मानिये—जैसे सूर्यमें अन्धकार देनेकी शक्ति नहीं, वैसे ही—विनोदकी भाषामें यह कहा जा सकता है कि भगवान्‌में किसीका अमंगल करनेकी शक्ति नहीं है। उनका प्रत्येक विधान कृपासे ही भरा होता है, चाहे उसका स्वरूप बाहरसे कितना भी भीषण क्यों न हो ! इसलिये आप किसी भी परिस्थितिसे घबरायें नहीं। शरीर बीमार हो रहा है, यह बात बाहरसे बड़ी दुःखद प्रतीत होती होगी; किंतु इस बीमारीके पर्देमें प्रभुका कितना मंगलमय विधान काम कर रहा है—इसकी कल्पना भी आपको अथवा किसीको होनी कठिन है। इसके अतिरिक्त शरीरको जिस दिन जाना होगा, उस दिन लाख प्रयत्न करनेपर भी चला ही जायगा और उस निश्चित तिथिके पहले यह कभी जायगा भी नहीं। इसलिये शरीरके जानेकी चिन्ता तो सर्वथा छोड़ देनी चाहिये, बल्कि आप बराबर यह भावना करें—भगवान्‌का जो विधान होगा, वह मंगलके लिये होगा; उनके हाथमें मेरा जीवन समर्पित है, फिर मुझे क्या चाहिये।

यही सार है—यही करना है

जीवनका प्रत्येक क्षण श्रीप्रिया-प्रियतमके चिन्तनमें बीते, इसके लिये खूब सचेष्ट रहें। इस अनमोल जीवनके समाप्त होनेसे पूर्व ही श्रीप्रिया-प्रियतमको मनमें बसा लिया, तब तो सब कुछ कर लिया; नहीं तो सब कुछ करके भी जीवन व्यर्थ ही समाप्त हो गया—यह सर्वथा

सच्ची बात है।

भगवान्‌की स्मृति निरन्तर बनी रहे, इसीमें जीवनकी सफलता है। इसीके लिये चेष्टा करनी है।

अनमोल जीवनको दूसरोंकी पापमयी बातोंको देखने-सुननेमें मत खोइये। दूसरेके दोषोंकी ओरसे दृष्टि मोड़कर प्रिया-प्रियतमके चिन्तनमें मन लगाइये——यही सार है।

प्रिया-प्रियतमके रूप-सागरमें मनको डुबो दें, मनको उस सौन्दर्य-समुद्रमें सर्वथा मिलकर एकमेव हो जाने दें। फिर यह संसार नहीं दीखेगा, वे ही दीखेंगे। आपकी जलन सदाके लिये शान्त हो जायगी। यही करना है, यही करना चाहिये।

सच्ची इच्छा उत्पन्न होनका उपाय नामका जप है

मरनेके पहले-पहले अपनी ओरसे भगवान्‌के चरणोंमें पूर्ण समर्पणकी सच्ची इच्छा अवश्य हो जानी चाहिये; नहीं तो इससे अधिक हानि और कुछ भी नहीं है। ऐसी इच्छा उत्पन्न होनेका इस युगमें एकमात्र उपाय है——निरन्तर भगवान्‌के नामका जप। और कोई भी साधन बड़ा कठिन है। कंजूसके ध ानकी तरह एक क्षण भी व्यर्थ मत खोइये, निरन्तर नाम लीजिये।

केवल इतना ही करना है

आप वृन्दावनमें जाकर भी वृन्दावन-विहारीको नहीं देख पा रहे हैं, यह सचमुच विचारणीय है। आपको वृन्दावनविहारी न दीखकर अधिक समय दीखता है संसार। यही कारण है कि जैसा जीवन आपका होना चाहिये, वैसा नहीं हो पा रहा है तथा जबतक आप पूरी दृढ़तासे अपने जीवनकी धारा प्रिया-प्रियतमकी ओर मोड़ना नहीं चाहेंगे, तबतक कोई दूसरा ऐसा कर दे, यह सम्भव ही नहीं। यह आपको ही करना पड़ेगा। आज करें, मरते समयतक करें, कभी भी करें, करना आपको ही है। अतः अभीसे सावधान होकर यह कार्य कर लें तो अनर्थक दुःख, चिन्ता, फिकरसे बच जायँ। काम भी कठिन नहीं है। केवल इतना ही करना है——

१-कानसे प्रिया-प्रियतमकी चर्चाके सिवा दूसरा शब्द जहाँतक सम्भव हो, बिल्कुल नहीं सुनें।

२-आँखसे प्रिया-प्रियतमके सम्बन्धकी चीजोंके सिवा दूसरी वस्तु

यथासम्भव नहीं देखें।

३-वाणीसे 'राधाकृष्ण-राधाकृष्ण' की पुकार एक क्षण भी न छोड़े। बस, फिर जीवनकी धारा वृन्दावनविहारीकी ओर बह चलेगी। उस धारामें स्नान करते प्रिया-प्रियतम किसी दिन प्रकट हो जायँगे और आप निहाल हो जायँगे।

शरीरको भजनका साधन बनानेके लिये उसपर ध्यान रखना चाहिये

जीवनकी सफलता तो इसीमें है कि मन असत् शरीर आदिकी चिन्तन छोड़कर एकमात्र प्रिया-प्रियतमका ही चिन्तन करे, पर जबतक ऐसा नहीं हो जाता तबतक असत् शरीर आदिको भी भजनका साधन बनानेके लिये उसकी ओर कुछ-कुछ ध्यान रखना ही चाहिये। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि सत्संगमें रहनेपर भी आपको अपने स्वास्थ्यका पूरा ध्यान रखना चाहिये; क्योंकि जबतक शरीरमें मोह है, तबतक हठसे की हुई स्वास्थ्यकी उपेक्षा कभी-कभी भले सफल हो जाय, अधिकांशमें पीछे बहुत ही तंग करने लगती है एवं पश्चात्तापका भी कारण बन जाती है।

बहुत समय बीत गया

बहुत समय बीत गया। अब वास्तवमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी प्रीति प्राप्त हो, यह चेष्टा करनी चाहिये--

कहत-सुनत बहुतै दिन बीते, भक्ति न मन में आई।
स्याम-कृपा बिनु, साधु-संग बिनु, कहि कौनें रति पाई।।
अपने-अपने मत-मद भूले, करत आपनी भाई।
कह्यौ हमारौ बहुत करत हैं, बहुतनि में प्रभुताई।।
मैं समुझी, सब काहु न समझी, मैं सब इन समुझाई।
भोरे भक्त हुते सब तब के, हम तौ बहु चतुराई।।
हमही अति परिपक्व भए, औरनि कैं सबै कचाई।
कहनि सुहेली, रहनि दुहेली, बातनि बहुत बड़ाई।।
हरि मंदिर, माला धरि, गुरु करि जीवनि के दुखदाई।
दया, दीनता, दास-भाव बिनु, मिलै न 'ब्यास' कन्हाई।।

खूब तेजीसे भगवान्‌की ओर बढ़िये

जीवन तो समाप्त होगा ही, चाहे विषयोंके संगमें बीते अथवा भगवान्‌के संगमें। भगवान्‌की ओर जितना बढ़ियेगा, उतनी शान्ति बढ़ेगी। उनको छोड़कर जगत्‌के किसी भी प्रपञ्चमें सुख खोजियेगा, जलन बढ़ेगी। आजतक जितने संत हुए हैं, वे सब–के–सब यही कह गये हैं। जीवनका भरोसा नहीं है, अतएव खूब तेजीसे भगवान्‌की ओर बढ़िये। अवश्य ही घबरानेकी जरूरत नहीं है। भगवान्‌की पूर्ण कृपा आपके साथ है।

साधनकी कसौटी

प्रिया–प्रियतमकी स्मृति कैसी और कितनी होती है—सारी साधनाकी कसौटी इसीमें है। यदि उनका विस्मरण हो तो समझना चाहिये कि पथ उलटा है, चाहे वह पथ कितना भी सुन्दर क्यों न दीखे; तथा यदि उनकी स्मृति बढ़ रही है तो पथ कितना भी कँटीला क्यों न दीखे समझना चाहिये, यही साधा पथ है।

*　　　　　*

बस, निरन्तर नाम लीजिये; और कुछ भी नहीं करना है, सब भगवान् करेंगे।

शरीर ठीक रहते हुए ही इसका सुदपयोग कर लेना चाहिये

आपके जीवनका वही क्षण सार्थक है, जिस क्षण आप प्रिया–प्रियतमका चिन्तन करते हैं। चाहे उत्तम–से–उत्तम कर्म हो, पर यदि वह भगवत्–संयोगसे रहित है तो उसमें दोष आये बिना रह नहीं सकता। अतः कोई–सा काम करें, प्रिया–प्रियतमके चिन्तनको प्रधानता देकर ही करें।

जबतक शरीर काम देता है, तबतक इन्द्रियोंको, मनको आप इच्छानुसार भगवत्सम्बन्धमें नियोजित कर सकते हैं। पर पता नहीं, कब शरीर लाचार हो जाय, ऐसे समयमें बिना अभ्यास भगवच्चिन्तन होना बड़ा कठिन हो जाता है। उस समय शरीरकी पीड़ाका ही चिन्तन अधिकांश प्राणियोंको होता है। अतः शरीरके ठीक रहते हुए ही इसका सदुपयोग कर लेना चाहिये।

एकमात्र श्रीकृष्णकी कृपा ही मनुष्यकी रक्षा करती है

देखें, मैं जब अपने जीवनको देखता हूँ तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट दीखती है कि मैं पग–पगपर फिसलता रहा हूँ और श्रीराधाकृष्ण मुझे पग–पगपर सँभालते रहे हैं। यदि वे न सँभालते तो न जाने जीवन किधर बह जाता। यदि श्रीराधाकृष्णने मुझे बचाया–सँभाला है तो किसीको मैं क्या बचाऊँगा ? बचानेवाले–सँभालनेवाले वे एक हैं। जगत्में मायासे पार हो जाना सचमुच बड़ा ही कठिन है। मेरी तो ऐसी ही दृढ़ धारणा है कि जिसे श्रीराधाकृष्ण निकालेंगे, वही मायासे निकल सकता है; अपना पुरुषार्थ तनिक भी काम नहीं दे सकता। जिस समय विषयोंका प्रलोभन आता है सारा विवेक निष्फल हो जाता है। एकमात्र श्रीकृष्णकी कृपा ही मनुष्यकी रक्षा करती है। इसलिये हमलोगोंको चाहिये कि चिन्ता बिल्कुल छोड़ दें। जिस दिन श्रीराधाकृष्ण चाहेंगे, उस दिन ही मनुष्य विषयोंसे मुख मोड़ सकता है। एक बात और है––जिसने श्रीकृष्णकी शरण ली है, किसी–न–किसी दिन श्रीकृष्ण उसका अवश्य उद्धार करेंगे ही।

भजनके लिये काम छोड़नेकी आवश्यकता नहीं

भजनका सम्बन्ध मनसे है। काम छोड़नेपर भी मन तो साथ छोड़ेगा नहीं। जो मन आज है, वही फिर भी तरह–तरहके धोखेसे भजनसे हट सकता है। इसलिये पहले कुछ दिन अलग रहकर अच्छी तरह भजनका अभ्यास करके देखना चाहिये। भजनमें मन लग जाय तो फिर सारे संसारका काम भले ही चौपट हो जाय, कोई हानि नहीं। पर भजनमें मन न लगकर प्रमादका जीवन न बने––इस विषयमें विशेष सावधान रहना चाहिये।

और क्या चाहिये ?

आप सत्संगसे पूरा–पूरा लाभ उठानेकी चेष्टा कर रहे हैं, सो अच्छी बात है। आपको अब करना ही क्या है ? भजन और सत्संगमे ही तो शेष जीवन बिता देना है। फिर उसमें उत्साहकी कमी तो आनी ही नहीं चाहिये। संतोंका संग हो, नाम–जप हो तथा भगवान्के रूपकी झाँकी होती रहे, बस, और क्या चाहिये ?

मनको एकमात्र प्रिया–प्रियतमकी ओर केन्द्रित करें

सत्संगसे पूरा–पूरा लाभ उठाना चाहिये। पूरा लाभ यही है कि मन भगवान्‌में पूर्णतया लग जाय; सब ओरसे प्रीति हटकर एकमात्र प्रिया–प्रियतमकी ओर केन्द्रित हो जाय——

नरक–स्वर्ग–अपवर्ग–आस नहिं त्रास है।
जहँ राखौ तहँ रहौं मानि सुखरास है।।
देव ! दया करि दान 'न भूलौं केलि' को।
भगवत बलित तमाल बिलोकौं बेलि को।।
दुख–सुख भुगते देह, नहीं कछु संक है।
निंदा–अस्तुति करौ राव क्या रंक है।।
परमारथ ब्यौहार बनौ कै ना बनौ।
अंजन है मम नैन रसिक भगवत सनौ।।

एक ही परामर्श !

मैं तो आपको एक ही परामर्श देता हूँ——प्रिया–प्रियतमको कम–से–कम पाँच मिनटपर तो याद कर ही लें।

जैसे हो, वैसे प्रिया–प्रियतमकी अखण्ड स्मृति बनी रहे, यही करना है। आप अवश्य करें——यही मेरा सप्रेम अनुरोध है।

वे आपकी भी सुन सकते हैं, यदि आप उन्हें सुनाना चाहें

यदि सच्ची चाह हो तो भगवान्‌की दयासे निरन्तर नांमजप होना खूब आसानीसे सम्भव है। इसलिये आप मनसे श्रीकृष्णके आगे अपनी चाह प्रकट कीजिये; फिर देखिये भजन अवश्य होगा। मनमें कुछ रखकर ही प्रायः लोग प्रार्थना करते हैं; इसलिये भगवान् भी देखते हैं——'अभी ठीक चाह हुई नहीं, चलो, अभी टाल दूँ।' यदि हृदयकी सारी शक्तिसे भगवान्‌के सामने कोई एक बार भी रोने लगे तो फिर भगवान् उसी क्षण असम्भवको भी सम्भव कर देते हैं। इसलिये आपसे भी प्रेमपूर्वक प्रार्थना है कि निरन्तर नामजपकी सच्ची चाह लेकर आप श्रीकृष्णके सामने रोज नियमित रूपसे प्रार्थना करें। जिस दिन प्रार्थना हृदयसे होगी, उसी क्षणसे भजन होने लगेगा। श्रीकृष्णपर भरोसा करके मनसे उनको कहिये–लिखिये। वे सबकी सुनते हैं और आपकी भी सुन

सकते हैं, यदि आप उन्हें सुनाना चाहें।

खूब तेजीसे भगवान्‌की ओर बढ़िये

जीवन तो समाप्त होगा ही, चाहे विषयोंके संगमें बीते अथवा भगवान्‌के संगमें। भगवान्‌की ओर जितना बढ़ियेगा, उतनी शान्ति बढ़ेगी। उनको छोड़कर जगत्‌के किसी भी प्रपञ्चमें सुख खोजियेगा, जलन बढ़ेगी। आजतक जितने संत हुए हैं, वे सब–के–सब यही कह गये हैं। जीवनका भरोसा नहीं है, अतएव खूब तेजीसे भगवान्‌की ओर बढ़िये। अवश्य ही घबरानेकी जरूरत नहीं है। भगवान्‌की पूर्ण कृपा आपके साथ है।

यही सार है——यही करना है

जीवनका प्रत्येक क्षण श्रीप्रिया–प्रियतमके चिन्तनमें बीते, इसके लिये खूब सचेष्ट रहें। इस अनमोल जीवनके समाप्त होनेसे पूर्व ही श्रीप्रिया–प्रियतमको मनमें बसा लिया, तब तो सब कुछ कर लिया, नहीं तो सब कुछ करके भी जीवन व्यर्थ ही समाप्त हो गया——यह सब सर्वथा सच्ची बात है।

भगवान्‌की स्मृति निरन्तर बनी रहे, इसीमें जीवनकी सफलता है। इसीके लिये चेष्टा करनी है।

अनमोल जीवनको दूसरोंकी पापमयी बातोंको देखने–सुननेमें मत खोइये। दूसरेके दोषोंकी ओरसे दृष्टि मोड़कर प्रिया–प्रियतमके चिन्तनमें मन लगाइये——यही सार है।

प्रिया–प्रियतमके रूप–सागरमें मन डुबा दें, मनको उस सौन्दर्य–समुद्रमें सर्वथा मिलकर एकमेव हो जाने दें। फिर यह संसार नहीं दीखेगा; वे ही दीखेंगे। आपकी जलन सदाके लिये शान्त हो जायगी। यही करना है, यही करना चाहिये।

मेरी इतनी ही सलाह है

मेरी इतनी ही सलाह है कि सत्संगमें जो कुछ भी सुनें, उसको प्रिया–प्रियतमके अखण्ड स्मरणमें परम सहायक बना लें। बस, इससे अधिक मैं क्या लिखूँ——

तनहिं राखु सत्संगमें, मनहि प्रेमरस भेव।
सुख चाहत हरिबंसहित, कृष्ण–कल्पतरु सेव।।

निकसि कुंज ठाढ़े भए, भुजा परस्पर अंस।
राधाबल्लभ-मुख-कमल, निरखत हित हरिबंस।।
सबसों हित निहकाम मन, बृन्दाबन बिश्राम।
राधाबल्लभ लाल कौ, हृदय ध्यान, मुख नाम।।
रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि अन फुटौ नैन।
सवन फुटौ जो अनसुनौ, बिनु राधा जसु बैन।।

* *

और सबसे अन्तिम बात यह है कि निरन्तर नाम लीजिये; और कुछ भी नहीं करना है, सब भगवान् करेंगे।

संतोंसे सुना है—'दूसरा क्या करता है, इस ओर मत देखो; तुमसे कितने पाप होते हैं, यह देखो।' निष्पाप होनेका यह सरल साधन है। यदि तुम्हारे मनमें जलन नहीं है, तुम्हारा मन साफ, शान्त है तो समझो कि पाप कम बन रहे हैं; पर यदि जलन अधिक है तो पाप अधिक बन रहे हैं। तुम्हारा पाप ही तुम्हें जलाता है, भले ही निमित्त कुछ भी, कोई भी क्यों न हो। यदि तुम भगवान्‌को याद करोगे; अपने पापोंके लिये पश्चात्ताप करोगे तो संचित पापकी ढेरी जलने लगेगी और तुम्हारे मनकी जलन कम होने लगेगी।

भगवान्‌की शरण हो जाओ। उनका नाम लो। उनके सामने अपने सब पापोंको खोलकर रख दो। फिर वे कहेंगे कि 'चिन्ता तुम मत करो।'

कहींपर भी रहकर भजन तो हो ही सकता है। उत्कट चाह होनेसे ही भजन होगा। यह ठीक है कि संग भजनमें बड़ा सहायक होता है; पर वह तो अपने हाथकी बात नहीं। कड़ा नियम लेनेसे कुछ-न-कुछ भजन बनेगा ही; अतः कुछ मालाओंका नियम अवश्य लें।

* *

आप प्रभुसे प्रार्थना करते हैं—'हे नाथ! अशुद्ध वातावरणसे निकलकर चिन्तनमय वातावरणमें रखो; परंतु विशुद्ध एवं सच्ची प्रार्थना न होनेके कारण प्रभुकी ओरसे जवाब नहीं मिलता।' आपका यह मानना ठीक है, पर जिस-किसी भी प्रकारसे प्रभुसे जुड़े रहनेका मंगलमय फल आगे चलकर अवश्य प्राप्त होता है। अतः इस प्रकारक बहानेसे भी प्रतिदिन प्रभुसे कुछ समय यदि जुड़े रहेंगे तो बड़ा लाभ होगा। उनकी कृपा झूठी प्रार्थनाको भी निमित्त मानकर प्रार्थना करनेवालेको ऊपर खींच लेती है। अतः प्रार्थना करते चले जायँ। बस,

भगवान्‌की कृपापर विश्वास कीजिये और उन्हें रो-रोकर पुकारिये, किसी-न-किसी दिन वे सुनेंगे ही।

श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ने एक बार सत्संगमें कहा था—"हमलोग किसीके मरनेपर रोते हैं कि 'हाय! वह हमें छोड़कर चला गया'; परंतु रोना तो चाहिये इसलिये कि वह बिना भजन किये हुए ही मर गया और उसका मनुष्य बनना व्यर्थ हो गया।" श्रीभाईजीके ये वचन बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव हमें ऐसी चेष्टा रखनी चाहिये कि अपने परिवारका अपना स्वजन, आत्मीय—कोई भी बिना भजन किये न मरने पाये। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम इस बातका पूर्ण ध्यान रक्खें कि अपनेसे सम्बद्ध कोई भी व्यक्ति भजनके बिना न रहे। परिवारमें जो कोई भी हों अथवा जो कोई भी हमसे अपना सम्बन्ध मानते हों, उन सबको हम भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करें। ऐसा करनेपर परिवारके सदस्य हमें किसी सरायमें विभिन्न अनिश्चित गन्तव्य स्थानोंको जानेके लिये ठहरे हुए यात्री अनुभव नहीं होंगे; हमें अनुभव होगा, जैसे एक ही मालिकके आश्रित एक ही गन्तव्य स्थान—अपने घरकी ओर जाते हुए व्यक्ति किसी धर्मशालाकी कोठरियोंमें ठहरे हुए हों। वस्तुतः यही सम्बन्ध वास्तविक है, यही वाञ्छनीय है।

सत्संगकी एक ही बात है—प्रिया-प्रियतमका अखण्ड स्मरण करें। जागते-सोते, स्वप्न देखते—प्रत्येक समय मनकी वृत्ति उन्हींमें समायी रहे। आकाश, जल, थल, वन, उपवन, मनुष्य, पशु, पक्षी—जहाँ कहीं भी हमारी दृष्टि जाय, वहाँ हमारी आँखें प्रिया-प्रियतमको विराजित देखें। जो भी शब्द हमारे कानोंमें प्रवेश करे, उसमें प्यारे श्यामसुन्दरका वंशीनाद, वृन्दावनकी रानी भानुकिशोरीका मधुर नूपुर-रव भरा प्रतीत हो। प्राण उनके श्रीअंगसे सुवासित पवनकी गन्ध पाकर सदा मत्त रहें। कुछ भी स्पर्श होनेपर उनके चरणारविन्दसे झरते हुए मधुर परागका सुकोमल स्पर्श-सुख प्राप्त होने लगे। रसनेन्द्रिय उनके अधरामृतसिक्त वस्तुका ही आस्वाद ले। इस प्रकार हमारी पाँचों इन्द्रियाँ उनमें तन्मय हो जायँ। बस, इसीमें जीवनकी सफलता है। इससे बढ़कर सत्संगकी—भगवद्विषयक बात और क्या हो सकती है?

* *

निरन्तर श्रीकृष्णकी कृपाका आश्रय करके अधिक-से-अधिक उनका नाम लेनेकी चेष्टा करें; फिर जो होगा, मंगल ही होगा। अभी भी जो कुछ

हुआ है, हो रहा है, वह सभी मंगल ही हो रहा है, किंतु यह आपको, हमको दीखता नहीं। भजन करनेसे यह स्पष्ट प्रत्यक्ष हो जायगा।

श्रीकृष्णका भरोसा रखिये, फिर कोई चिन्ता नहीं। वे बड़े दयालु हैं। प्रेम मनकी चीज है। बोलने और न बोलनेसे प्रेम बढ़ता अथवा घटता हो, ऐसी बात नहीं है। आप अपने बाहरी व्यवहारमें ऐसी चेष्टा करें, जिससे घरवालों अथवा अन्य लोगोंको कोई उद्वेग उत्पन्न न हो और मनमें परस्पर निस्स्वार्थ और पवित्र प्रेम रखें। जिस प्रेममें मिलावटकी आवश्यकता है, वह तो प्रेम ही नहीं है।

* *

सत्संगके पवित्र वातावरणमें रहकर ऊँचा-से-ऊँचा लाभ उठावें---यही करना है। मनसे निरन्तर भगवान्‌का स्मरण, जीभसे आवश्यकताभर बात करनेके बाद निरन्तर नाम-जप तथा शरीरसे भगवद्रूप संतोंकी---समस्त प्राणियोंकी सेवा---यही सत्संगका सच्चा लाभ है। इसमें कसर नहीं आने पावे।

* *

भगवान्‌के भक्तको किसी भी परिस्थितिमें निराश नहीं होना चाहिये। आप विश्वास रखें, मंगलमय प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलसे भरा होता है—आप यह विश्वास अपने मनमें दृढ़ करें तथा अत्यन्त साहसपूर्वक अपने चित्तको शान्त करनेकी चेष्टा करें। उद्विग्नतासे कोई लाभ नहीं होता।

* *

भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार रखना चाहते हैं, उसीमें अतिशय प्रसन्न रहना चाहिये। आपकी कोई परिस्थिति बहुत प्रतिकूल दीखनेपर भी उसीमें आपका मंगल निहित है। प्रतिकूल-से-प्रतिकूल वातावरणको भगवान्‌का प्रसाद समझकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे उसमें रहना चाहिये।

* *

आप व्रजमें निवास कर रहे हैं, यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। व्रजमें रहते हुए भी आप बुखारके कारण भगवान्‌के रासके दर्शनसे वञ्चित हो गये, इससे मनमें व्यथा होनी स्वाभाविक है; पर यदि आप इस बुखारके तापको भगवद्विरहके तापमें बदल सकें तो रासका फिर ऐसा दर्शन हो जाय कि उसके बाद आपकी आँखें कुछ दूसरी वस्तुको देखेंगी ही नहीं। आप बड़े भाग्यवान हैं कि बुखारकी अवस्थामें भी आपका मन श्रीरास-दर्शनके लिये

तड़पता है। श्रीराधारानी ऐसी कृपा करें कि दर्शन भले मत हो, पर दर्शनके लिये तड़पन उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाय। रसिक प्रेमी भक्त मिलनेसे भी अधिक वियोगको महत्त्व देते हैं। यह तो हुई पारमार्थिक दृष्टिकी बात। व्यावहारिक दृष्टिकी बात यह है कि चिन्ता तो बिल्कुल नहीं करनी चाहिये, पर यथायोग्य औषध एवं पथ्यका सेवन करना चाहिये। व्रजको छोड़कर अन्यत्र जानेकी सलाह तो मैं कदापि नहीं दे सकता।

* *

अनन्त सौभाग्यसे श्रीव्रजधाममें आप निवास कर रहे हैं। शरीर तो श्रीधाममें है ही, अब मनमें श्रीधाम बस जाय, इतनी भिक्षा आप राधारानीसे और माँगिये। अनन्त असीम अनुरागकी धारा निरन्तर श्रीधाममें प्रवाहित हो रही है। मनको उस धाराके सामने कर दें, फिर अपने-आप अनुरागका एक स्रोत मनमें प्रविष्ट हो जायगा तथा मन अनुरागमय होकर श्रीधामसे एकमेव हो जायगा। फिर देखेंगे—

अज गोपाल रास-रस खेलत
पुलिन कल्पतरु तीर री, सजनी।
सरद बिमल नभ चंद बिराजत,
रोचक त्रिबिध समीर री, सजनी॥
चंपक बकुल मालती मुकुलित,
मत्त मुदित पिक-कीर री, सजनी।
लेत सुधंग राग-रागिनि कौ,
ब्रज जुबतिन को भीर री, सजनी॥
मघवा मुदित निसान बजायौ,
ब्रत छाँड्यौ मुनि धीर री, सजनी।
(जै श्री) हित हरिबंस मगन मन स्यामा,
हरत मदन धन पीर री, सजनी॥

* *

अधिक-से-अधिक नाम जपिये और श्रीकृष्णके भरोसे बैठे रहिये, इससे बढ़कर उत्तम सलाह मेरे पास है नहीं। और क्या बताऊँ।

बस, निरन्तर प्रिया-प्रियतमकी स्मृति बनी रहे—यही करना है।

——❀——
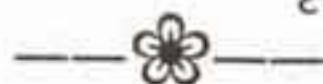
परिशिष्ट

व्रजलीलामें गाय

सुर—वनिताओंकी वीणाविनिन्दित स्वलहरी अन्तरिक्षको चीरकर नन्दप्रांगणके मणिमय स्तम्भोंमें प्रतिध्वनित हो उठी——

रिंगणकेलिकुले जननीसुखकारी।
व्रजदृशि सुकृतस्फुरदवतारी।
वलियतबाल्यविलास ! जय बलवलित ! हरे !

नन्दरानी चकित—सी होकर एक क्षणके लिये आकाशकी ओर देखने लगीं। पर उनकी आँखें तो अपने नयनानन्द प्राणाराम हृदयधन नीलमणिकी छबिसे निरन्तर परिव्याप्त थीं। उन्हें वहाँ भी उस नीले गगनके वक्षःस्थलपर भी दीखा——

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत, रेनु—तन—मंडित, मुख दधि—लेप किये।।
चारु कपोल, लोल लोचन छबि, गोराचनको तिलक दिये।
लटलटकन मनों मत्त मधुपगन मादक मधुहि पिये।।
कठुला कंठ, बज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये।
धन्य सूर एकौ पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये।।

नीलमणि श्यामसुन्दरके अरुण करपल्लवमें उज्ज्वलतम नवनीत है; नवनीरद श्रीअंगोंको नचा—नचाकर घुटरूँअ चलते हुए वे घूम रहे हैं; प्रांगणके बड़भागी धूलिकणोंसे श्यामल अंग परिशोभित है; अरुण अधर तथा ओष्ठ धवल दधिसे सने हैं; सुन्दर कपोल एवं चञ्चल नयनोंकी शोभा निराली ही है; उन्नत ललाटपर गोरोचनका तिलक है; मनोहर मुखारविन्दपर घनकृष्ण केशोंकी घुँघराली

लटें लहरा रही हैं; लटें ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो भ्रमर हों, श्यामसुन्दरके मनोहर मुखारविन्दका मधुर मधुपान करने आये हों, मधु पीकर मत्त हो गये हों, सुध–बुध भूले हुए, अरविन्दपर अरबरा रहे हों; कमनीय कण्ठमें कठुला शोभा पा रहा है; विशाल हृदयपर व्याघ्रनख आदि टोना–निर्वारक वस्तुओंसे निर्मित माला झूल रही है। एक ओर इस छविके क्षणभर दर्शनका आनन्द तथा दूसरी ओर सैकड़ों कल्पोंका समस्त जीवन–सुख, इन दोनोंकी तुलनामें वह एक क्षण ही धन्य है, कल्पोंका जीवन तुच्छातितुच्छ सर्वथा व्यर्थ––अनर्थ है।

नन्दरानीने आकाशसे दृष्टि हटा ली तथा वह आँगनमें किलकते हुए नीलमणिको पुनः देखने लग गयी। आँखोंके कोयोमें आनन्दाश्रु छलक आये। यही दशा व्रजनरेश नन्दराजकी भी थी, जो कुछ ही दूरपर खड़े हुए अपने पुत्रकी रिंगण–लीला निर्निमेष नयनोंसे निहार रहे थे।

अग्रज दाऊ पास ही बैठे आनन्दाम्बुधिमें आकण्ठ निमग्न थे। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। कभी आगे कभी पीछे रहकर छायाकी तरह वे श्यामसुन्दरका अनुगमन करते थे। दोनों भाई परस्पर अस्पष्ट कुछ बोलते और दोनों ही खिलखिलाकर हँस पड़ते थे। थोड़ी देर घुटरूँ चलकर अपने ही नूपुरकी रुनझुन ध्वनिसे चकित हो जाते, स्निग्ध गम्भीर मुद्रामें कुछ क्षण सोचने–से लगते फिर आगे बढ़ते, फिर रुनझुन शब्द होता, फिर ठिठक जाते। ठहरते ही मणिमय आँगनमें मनोहर मुखकमल प्रतिबिम्बित हो जाता और विस्फारित नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगते। कभी उसे पकड़नेके उद्देश्यसे उसके सिरपर हाथ रख देते। हाथका व्यवधान आनेसे प्रतिबिम्ब लुप्त हो जाता, श्यामसुन्दर आश्चर्य भरी मुद्रामें जननीकी ओर देखने लगते।

• इस प्रकार बाललीलाधारी गोलोकविहारीकी अभिनव रिंगणलीला प्रारम्भ हुई तथा प्रतिक्षण नयी–नयी होकर बढ़ चली। यह कोई प्राकृत शिशुका स्वभावजात घुटरुन तो था नहीं कि जिसकी निश्चित सीमा हो। यह तो स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके चिदानन्दमयस्वरूपभूत

• ये नन्दनन्दन बकैयाँ चलते हुए अपनी विविध क्रीडाओंसे माता यशोदाको आनन्दित करते **हैं तथा व्रज**वासियोंके अपूर्व सौभाग्यसे ही उनके नेत्रोंके सामने स्वयं **अवतारी ही स्फु**रित हुए हैं। विविध वात्सल्यसे युक्त बलरामजी सहित श्रीकृष्**णकी जय** हो।

रससागरका एक तरंग–विशेष था। चन्द्रकलाकी भाँति जिस अनुपातसे वात्सल्य–स्नेहवती माता यशोदा एवं अन्य व्रजसुन्दरियोंकी भावनाएँ बढ़ रही थीं, उसी अनुपातसे उस अचिन्त्य–अनन्त चिन्मय–रस–सार–सुधा समुद्रमें सरल वक्र और तीक्ष्ण तरंगे उठ रही थीं। बालकृष्णके घुटरूँ चलनेका समाचार विद्युतकी तरह समस्त गोष्ठमें फैल चुका था। यूथ–की–यूथ भाग्यवती व्रज–वनिताएँ प्रतिदिन नन्दद्वारपर एकत्र हो जातीं तथा उस अनुपम लीलारस–सुधाका अतृप्त पान करके बलिहार जातीं। सबका अलग–अलग हृदय था, सबकी अपनी–अपनी भावनाएँ थीं, सभी अपनी भावनाके अनुरूप लीलाका रस लेती थीं। रस लेती–लेती रसके तीव्र स्रोतमें वे बह जातीं, न जाने किन–किन मधुमय अभिलाषाओंको अन्तस्तलमें छिपाये बहतीं। इन सबका प्रतिबिम्ब श्यामसुन्दरके हृदयपर पड़ता एवं सबकी रुचिके अनुकूल सर्वसुखदायिनी अत्यन्त मनोहारिणी लीलाका प्रकाश होता। श्यामसुन्दरमें कितना ज्ञान हुआ है, इसका रस लेनेवालीके लिये वैसी लीला होती। गोपी पूछती—नीलमणि ! ब्रेरा मुख कहाँ है ? उत्तरमें नीलमणि मनोहर मुखपर अपनी अँगुली रख देते। आँख कहाँ है ? नीलमणि काजल लगे हुए नयनकमलोंको दोनों कर–कमलोंकी नन्हीं–नन्हीं अँगुलियोंसे मूँदकर गोपीकी ओर मुँह करके बैठ जाते। अच्छा लल्ला ! नाक क्या वस्तु है ? नन्दनन्दन प्राणायामकी मुद्रामें नाकका स्पर्श करते।

वाह वाह ! मेरे प्राण–धन ! अच्छा इस बार कान और चोटी तो मुझे दिखा दे। श्रीकृष्ण चटपट कानोंको छूकर दोनों हाथोंसे शिखाके स्थानको दबाकर सिर हिलाने लगते। गोपी आनन्दमें डूब जाती—

क्वननं क्व नयनं क्व नासिका
क्व श्रुतिः क्व च शिखेति ·केलितः।
तत्र तत्र निहितांगुलीदलो
वल्लवीकुलमनन्दयत्प्रभुः ।।

कोई गोपी देखना चाहती यशोदानन्दनमें खड़े होनेकी शक्ति आयी है या नहीं। उसके लिये व्रजेन्द्रनन्दन धीरे–धीरे उठ खड़े होते। चार–पाँच पग चलकर गिर पड़ते। किसी व्रजवनिताके मनमें आता, 'यह सलोना साँवरा बोल सकता है या नहीं ? उसके मनोरथकी पूर्तिके लिये दोनों भाई परस्पर अस्फुटस्वरमें कुछ बोल जाते; गोपीका हृदय आनन्दसे उछलने लगता। इस तरह लीलामयके लीलारसप्रवाहसे समस्त व्रज प्लावित हो

गया। फिर भी व्रजवनिताओंकी आँखें तृप्त नहीं होतीं। उत्तरोत्तर मधुरातिमध
ुर लीला देखनेकी चाह बढ़ती ही जाती। अतः एक ही साथ सबको वात्सल्य–रस–सिन्धुमें डुबो देनेके उद्देश्यसे एक अत्यन्त मधुर बाललीलाका आस्वादन करनेकी इच्छा श्यामसुन्दरके मनमें जाग्रत हुई। इच्छाकी देर थी, अचिन्त्यलीलामहाशक्तिने तत्क्षण व्रजराजनन्दनको उसी साजसे सजा दिया और लीला प्रारम्भ हो गयी।

व्रजराज गोशालामें बछड़ोंकी सँभाल करने गये हैं और व्रजरानी अपने प्राणधन ललनके लिये भोजन बनानेमें संलग्न हैं। राम–श्याम दोनों भाई आँगनमें खेल रहे हैं। अबतक दोनों भाई मैया एवं बाबाकी गोदमें चढ़कर ही द्वारदेश एवं गोशाला आदिमें जाते थे। आज स्वतन्त्ररूपसे दोनों भाई तोरणद्वारकी ओर चल पड़े। कभी खड़े होकर कुछ डग चलते, कभी घुटनोंके बल। इस तरह बाहर चले आये। आम्रकी शीतल छायामें कुछ गोवत्स विश्राम कर रहे थे। धीरे–धीरे उनके पास जा पहुँचे। बछडेकी सुकोमल पूँछको देखकर आश्चर्यचकित–से होकर विचारने लगे, यह क्या है ? फिर दोनों भाइयोंने अपने नेत्रकमलको किञ्चित् नचाकर मानो कुछ परामर्श–सा किया और ध
ीरेसे एक ही साथ पूँछको दोनों हाथोंसे मुट्ठी बाँधकर पकड़ लिया। अचानक पूँछ खिंच जानेसे बछड़ा उठ खड़ा हुआ तथा भागने लगा। अचिन्त्यलीलामहाशक्तिने इसी क्षण श्यामसुन्दरकी स्वाभविक अनन्त असीम सर्वज्ञतापर बाललीलोचित मुग्धताकी यवनिका गिरा दी। दोनों भाई बछड़ेसे खिंचे जाते हुए भयभीत हो उठे। जिसके अनन्तानन्त ज्ञानभण्डारके एक क्षुद्रतम कण–ज्ञानसे समस्त विश्वमें कर्तव्याकर्तव्य–ज्ञानका सञ्चार होता है, वे भगवान् श्रीकृष्ण यह ज्ञान भूल गये कि पूँछ छोड़ देनेसे ही बछड़ेका सम्बन्ध
ा छूट जायगा, बल्कि उन्होंने तो अपनी रक्षाके लिये और भी अधिक शक्ति लगाकर पूँछको जकड़ लिया तथा मा–मा ! बाबा–बाबा ! पुकारकर रोने लगे ! उसी क्षण समस्त व्रजवनिताओंकी हृदय–वीणापर मा–मा, बाबा–बाबाकी करुणामिश्रित स्वरलहरी झंकृत हो उठी, क्योंकि उनके हृत्तन्तु सर्वथा श्याममय होकर निरन्तर श्यामसुन्दरसे ही जुड़े रहते थे। अतः जो जहाँ जिस अवस्थामें थी, चल पड़ी। इतनी शीघ्र कैसे आ पहुँची, यह किसीने नहीं जाना, पर सभी आ पहुँची। सबने देखा, भयभीत गोवत्स धीरे–धीरे भाग रहा है तथा उसकी पूँछ पकड़े नीलमणि एवं दाऊ मा–मा, बाबा–बाबाकी पुकार करते हुए खिंचे चले जा रहे हैं। अचिन्त्यलीला–शक्तिके महान् प्रभावसे कुछ क्षण सभी

किंकर्तव्यविमूढ़–सी हो गयीं। इसी समय उपनन्द–पत्नीने शीघ्रतासे बछड़ेके आगे जाकर उसे थाम लिया। इतनेमें नन्दरानी एवं नन्दराय भी आ पहुँचे। 'बेटा नीलमणि ! दाऊ ! पूँछ छोड़ दे, पूँछ छोड़ दे' कहते हुए दोनोंने हाथोंसे पकड़कर पूँछ छुड़ा दी। नन्दरानीने नीलमणि दोनोंको अपनी गोदमें ले लिया, दोनोंका मुख चूमने लगीं। इधर व्रजसुन्दरियोंमें हँसीका स्रोत उमड़ पड़ा, बाललीलाविहारीकी इस अद्भुत अभूतपूर्व ललित लीलाको देखकर सभी हँसते–हँसते लोट–पोट हो गयीं। एक ग्वालिन बोली––'नीलमणि ! अरे दाऊ ! तुम दोनों भला इस बछड़ेसे भी दुर्बल हो ! अरे, पूँछ पकड़कर बछड़ेको रोक लेते या पूँछ पकड़े–पकड़े सारे व्रजमें घूम आते, यह बछड़ा तुम्हें व्रजमें घुमा लाता। हमलोग अपने–अपने घरही पर तुम्हें देखकर निहाल होतीं, बछड़े भी निहाल होते।' यों कहते–कहते ग्वालिनकी आँखोंमें प्रेमके आँसू छलछल करने लगे।

श्यामसुन्दर हँसने लगे, मानो संकेतसे कह रहे हैं––'एवमस्तु।' इसके पश्चात् भक्तवाञ्छाकल्पतरु व्रजराजनन्दनने बछड़ोंको अपने करस्पर्शका योगीन्द्रमुनीन्द्र–दुर्लभ आनन्द देते हुए इस परम सुन्दर लीलाका अनेकों बार प्रकाश किया।

दोनों भाई बछड़ोंकी पूँछ पकड़ लेते; बछड़ा भागता, कुछ दूर तो पीछे–पीछे खिंचते हुए चले जाते; फिर पूँछ छूट जाती तो किसी दूसरेकी पकड़ लेते; दूसरेकी छूटनेपर तीसरेकी। कभी एक ही साथ तीन–चार बछड़ोंकी पूँछ पकड़ते; बछड़े कूदते और श्यामसुन्दर हँसने लगते। कितने ही बछड़े स्वाभाविक प्यारवश श्यामसुन्दरकी इच्छानुसार उन्हें खींच ले जाते। आगे–आगे करस्पर्शके आनन्दसे पुलकित होता हुआ बछड़ा और पीछे–पीछे पूँछमें टँगे हुए व्रजनयनानन्द पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण एवं दाऊजी। व्रजदेवियाँ इस परम मनोहर लीलाको देखकर आनन्दसे हँसते–हँसते आत्मविस्मृत हो जातीं। उनका गृह, गृह–कार्य, सब कुछ छूट जाता––

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः।।

(श्रीमद्भा० १०। ८। २४)

(२)

दही बिलोती हुई एक व्रजसुन्दरी धीमे–धीमे गा रही है––

बलकृष्णौ बलवलितविलासौ

खेलत इह सखि ! सखिकृतहासौ ।। ध्रु० ।।
तर्णकपुच्छधृतिव्यापृतिनौ प्रणयकलितकलिकलने कृतिनौ ।।
(श्रीगोपालचम्पूः)

'सखि ! देख, दाऊको साथ लिये बालकृष्ण खेल रहा है। कुछ सखा भी साथ हैं, सभी उसकी मधुमयी लीला देख–देखकर हँस रहे हैं। अहा ! देख बहन ! उसी दिनकी तरह आज भी दोनों पुनः बछड़ेकी पूँछ पकड़े हैं। सचमुच बहन ! ये दोनों अब बड़े चञ्चल हो गये हैं, लोगोंको खिझाना सीख गये हैं। आह ! उस दिन मैयासे कलह करते हुए तुमने इन्हें देखा नहीं ? ओह ! इनकी प्रेम–कलह अद्भुत ही है, इस कलामें ये दोनों ही बड़े प्रवीण हो गये हैं।'

व्रजसुन्दरियाँ अन्य समस्त कर्म, समस्त उपासनाएँ भूल गयीं। उनके लिये तो अब सम्पूर्ण उपासनाओंका सारसर्वस्व एक यशोदानन्दन ही बन गये हैं। सारा दिन, सारी रात उनकी आँखोंके सामने बाललीला–रसमत्त परमानन्दकन्द नन्दनन्दन नयनाभिराम नित्य नयी छटामयी छबि ही नाचती रहती है। दिनका अधिकांश भाग वे नन्दद्वारके समीप खड़ी रहकर बिता देतीं। गुरुजनोंकी बारंबारकी प्रेरणासे घर लौटतीं, पर मन तो नन्दनन्दनके पास ही रह जाता। अन्यमनस्क ही रहकर गृहकार्यमें लगतीं किन्तु ठीकसे कर नहीं पातीं। दूध दुहने बैठतीं तो आँखोंके सामने गायोंके थनकी जगह नन्दनन्दन दीखते; धानका छिलका उतारने बैठतीं तो ऊखलमें, मूसलमें, यहाँतक कि धानके कणोंमें श्यामसुन्दर दीखते; दही बिलोतीं तो दीखता मनमोहन नीलमणि मथानीको पकड़े खड़े हैं, घर लीपने बैठतीं तो हाथ चलता नहीं; क्योंकि उन्हें सर्वत्र व्रजेन्द्रनन्दन नाचते–थिरकते दीखते; उनके छोटे बालक रोने लगते, गोपियाँ लोरी देनेका विचार करतीं, पर आँखोंसे बच्चा नहीं दीखता, यशोदानन्दन दीखते; वस्त्र धोने बैठतीं तो जलमें, जलपात्रमें, वस्त्रके धागोंमें, मानो श्यामसुन्दर समाये हों––यह दीखने लगता और वे चकित–सी, मुग्ध–सी होकर बैठी रह जातीं; झाड़ू देने जातीं तो दीखता, मैं तो नन्दरायजीकी गोशालामें बैठी हूँ, गो–रजमें लिपटे नन्दनन्दन सामने खेल रहे हैं; बस फिर, झाड़ू हाथमें ही रह जाता। इस प्रकार वे अधिकांश समय भावाविष्ट रहतीं। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे जब आवेश कुछ शिथिल होता, तो किसी प्रकार गृहकार्यका समाधान कर पातीं।

पर उस समय भी उनका मन तो रसराजशिरोमणि यशोदानन्दनके लीलारस–सुधा–सागरमें ही डूबा रहता तथा वाणी निरन्तर उन्हींका ललित लीलागान करती रहती; ऐसा प्रतीत होता कि मानो उनके अन्तर्हृदयका सरस रस–स्रोत ही सुरीले शब्द बनकर झर रहा हो—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेंखेंखनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्योधन्याव्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः।।

(श्रीमद्भा० १० । ४४ । १५)

हरिलीला गावत गोपीजन अति आनँद भरि निसिदिन जाई।
बालचरित्र बिचित्र मनोहर कमलनैन ब्रजजन सुखदाई।।
दोहन मथन खँडन गृहलेपन मंडन सुत–पति–सेवा।
चारि जाम अवकास नहीं पल सुमिरत कृष्ण देवदेवा।।
भवन भवन प्रति दीप बिराजत कर कंकन पग नूपुर बाजे।
परमानंद घोष क्रौतूहल निरखि भाँति सुरपति जिय लाजे।।

आज वह व्रजसुन्दरी भी इसी तरह विशेषरूपसे भावाविष्ट होकर गा रही है। उसके मानस–नेत्रोंके सामने कभी गोवत्सपुच्छधारी श्यामसुन्दरकी, और कभी माताके साथ कमनीय कलहमें संलग्न यशोदानन्दनकी छबि आ रही है। गोपी भावनाके स्रोतमें डूब रही है और इधर उसके प्राणधन श्यामसुन्दर सचमुच ही वत्सपुच्छधारणकी लीलामें मत्त हैं—

खेलत मदनसुंदर अंग।
जुबति जन मन निरखि उपजत बिबिध भाँति अनंग।।
पकरि बछरा पूँछ ऐंचत अपनि दिसि बरजोर।
कबहुँ बच्छ लै भजत हरि कों जुवति जन की ओर।।
देखि परबस भए प्रीतम भयो मन आनंद।
मनहिं आकुल भई व्याकुल गई लाज अमंद।।
कोऊ देखत गहत कोऊ हँसत छाड़त गेह।
करत भायो अपने मन को प्रगट करि निज नेह।।
अति अलौकिक बाललीला क्योंहुँ जानि न जाय।
मुग्धता सों महारस सुख देत रसिक मिलाय।।

यह नियम है कि मिथ्या प्रापञ्चिक मानसिक कल्पनाएँ भी यदि प्राणशक्तिका पर्याप्त बल पा लें तो मूर्तिमती एवं सत्य बनकर प्रत्यक्ष दीखने लग

जाती हैं। फिर गोपीकी कल्पना तो सत्यके भी सत्य परमपरात्पर पुरुषोत्तम साक्षात् भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन परमानन्दघन श्रीकृष्णके सम्बन्धकी है ! तथा श्रीकृष्णमय बने हुए प्राणोंके बलपर श्रीकृष्णको गोपीकी ओर खींच लानेके लिये दौड़ रही है। अतः विलम्ब ही क्या था, श्यामसुन्दर मधुरातिमधुर आकर्षणसे युक्त उस भावनाके सूत्रमें बँधे हुए, खिंचे हुए–से ग्वालिनके घर आ पहुँचे। ग्वालिनने देखा—श्यामसुन्दर खड़े हैं, पर अकेले हैं। वास्तवमें श्यामसुन्दर अकेले ही आये थे; दादा दाऊ एवं साथियोंसे परामर्श करके सबको द्वारपर ही छोड़ दिया था, अकेले भीतर घुसे थे। अस्तु,

ग्वालिनके आनन्दका पार नहीं। उसने सोचा, स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ ? निर्णय करनके उद्देश्यसे उसने बाहरकी ओर झरोखोंसे झाँका, कुछ सखाओंके साथ दाऊ अतिशय शान्त मुद्रामें छिपे–से खड़े हैं; स्पष्ट था अपने अनुजके किसी संकेतकी प्रतीक्षामें खड़े हैं। ग्वालिन समझ गयी—स्वप्न नहीं, सत्य है; किसी मधुर गुप्त अभिसन्धिसे मेरे प्राणधन मेरे घर आये हैं। श्यामसुन्दरकी भोली चितवनकी ओर ग्वालिन देखने लगी। अधिक देरतक धैर्य न रख सकी, 'उसी क्षण' दौड़ पड़ी और गोद उठाकर हृदयसे लगा लिया—

बालदसा गौपाल की सब काहू को भावै।
जाके भवन में जात हैं सो लै गोद खिलावै।।
स्यामसुँदर मुख निरखि कै अबला सचु पावै।
लाल लाल कहि ग्वालिनी हँसि कठ लगावै।।

श्यामसुन्दरका स्पर्श–सुख पाकर ग्वालिनी मानो समाधिस्थ–सी हो गयी, सारी सुध–बुध खो बैठी। गोदमें बैठे हुए अन्तर्यामीने ग्वालिनके अन्तरमें झाँककर देखा। अन्तर्हृदयके तार झन–झन कर रहे हैं——

प्रर्णयकलितकलिकलने कृतिनौ।

राम–श्याम प्रणय–कलहमें बड़े ही चतुर हैं, बडे ही चतुर हैं। उस झनकारकी ओटमें एक लालसा छिपी है——कभी श्यामसुन्दर मुझे खिझाते, मैं रोष करती, ये झगड़ते; ऐसे प्रणय–कलहका सौभाग्य मुझे भी मिलता।

नीलमणि ग्वालिनका यही मनोरथ तो पूर्ण करने आये थे। वे चुपचाप गोदसे उठ खड़े हुए। ग्वालिन प्रस्तर मूर्तिकी तरह निश्चल बैठी थी। श्यामसुन्दर अपने सुकोमलतम करपल्लवोंसे धीरे–धीरे ताली बजाने लगे। ताली बजी कि गोपमण्डलीके सहित दाऊ भीतर आ गये। नीलमणिने

माखनगृहकी ओर संकेत कर दिया। वे सब चुपचाप बिना किसी शब्दके भीतर जा पहुँचे। इधर स्वयं नीलमणि गोशालाकी तरफ चल पड़े। गोशालामें बहुत–से बछड़े बँधे थे। गायें रँभा रही थीं। आज अभीतक दुही नहीं गयी थीं। दुहता कौन ? ग्वालिन तो आधी रातसे भावाविष्ट थी; तबसे दधि–भाण्डमें मथानी डालकर बिलो रही थी, दो–चार बार मथानी घुमाती, फिर ठहरकर गीत गाती, फिर कुछ देर मथती, फिर गाने लगती; उसे यह ज्ञान ही नहीं था कि कब प्रभात हुआ।

श्यामसुन्दरको देखकर बछड़े अपने सिर हिलाने लगे, गायें हाम्बाराव करने लगीं। श्यामसुन्दरने एक बार चञ्चल दृष्टिसे सब तरफ देखा कि कोई देख तो नहीं रहा है। फिर एक बछड़ेको खोल दिया। बछड़ा जाकर माँका दूध पीने लगा। उसके पश्चात् एक–एक करके वहाँ जितने बछड़े थे सबको उन्मुक्त कर दिया; सभी अपनी–अपनी माके थनोंसे हुमक–हुमक कर दूध पीने लगे। यशोदानन्दनके मनोहर मुखारविन्दपर एक अनिर्वचनीय उल्लास छा गया। अपने इस कौतुकको देखकर वे आनन्दमें भर गये और गाय तथा बछड़ोंकी दशा भी आज विचित्र ही है। गायोंने दूध पीते हुए बछड़ोंको चाटनेकी बात तो दूर, देखना तक छोड़ दिया। वे एकटक श्यामसुन्दरकी ओर देख रही हैं। बछड़े भी कुछ क्षण तो थनमें मुँह लगाकर दूध पीते, पर फिर पीना छोड़कर श्यामसुन्दरकी ओर देखने लग जाते। श्यामसुन्दर उन्हें पुचकारकर अपने नन्हें–नन्हें हाथोंको उठाकर शैशवोचित सरलतावश संकेत करते कि 'रे वत्सो ! पी लो, पी लो, ग्वालिनीके आनेके पहले–पहले ही सारा दूध आज पी डालो।' सचमुच आज श्रीकृष्णकी अचिन्त्यलीला महाशक्तिकी प्रेरणासे ही बछड़े दूध पीते रहे, अन्यथा सभी दूध ा पीना छोड़कर श्रीकृष्णको ही देखते रह जाते।

परमानन्दसुन्दर यशोदानन्दन एक गायके कुछ और निकट जाकर खड़े हो गये। गायने अपनी गर्दन बढ़ायी। यशोदानन्दन एक बार कुछ भयभीत–से हो गये, पर गायकी अतिशय शान्तमुद्रा देखकर उन्हें साहस हो आया। लगे गायकी गर्दनको सहलाने। गायने गर्दन फैला दी। यशोदानन्दनने देखा––गाय बड़ी सूधी है, मारेगी नहीं। यह सोचकर वे धीरेसे उसके थनके पास बठ गये। बछड़ा पहलेसे ही थन छोड़कर, अलग हटकर श्यामसुन्दरकी ओर देखने लगा था। श्यामसुन्दरने थनको दबाकर दूधकी ध

ार निकालनी चाही। धार निकली तथा उससे श्यामसुन्दरका बायाँ कंधा भींग गया। श्यामसुन्दरके आनन्दकी सीमा न थी। दूसरी बार दबाया। इस बार भी धार निकली। श्यामसुन्दरने चाहा था कि मुँहमें ही गिरे, पर धारने चिबुकका ही अभिषेक किया। तीसरी बारकी चेष्टामें यशोदानन्दन सफल हुए; दूधकी उज्ज्वल धार मुँहमें गिरी। दूधका घूँट पीकर हर्षोत्फुल्ल नेत्रोंसे नन्दनन्दनने मुँह पीछे फिराकर देखा तो दीखा—दाऊ एक स्तम्भकी ओटमें छिपे संकेत कर रहे हैं कि 'कन्हैया ! जल्दी भाग जा।' उनसे कुछ ही दूरपर ग्वालिन दिव्य प्रेमसागरमें डूबती–उतराती खड़ी–खड़ी यशोदानन्दनकी ओर देख रही है। उसकी आँखोंसे दर–दर प्रेमाश्रु बहकर उसके वक्षःस्थलको भिगो रहे हैं।

यशोदानन्दन उठकर भागे; पर ग्वालिनी पथ रोके खड़ी थी। बहुत चेष्टा करनेपर भी आखिर, श्यामसुन्दर ग्वालिनीके द्वारा पकड़ ही लिये गये। ग्वालिनीके अन्तर्हृदयमें तो आनन्दकी बाढ़ आ रही थी, पर बाहरसे वह गम्भीर होकर बोली—'अरे नटखट ! यह तुमने क्या किया, सारे बछड़ोंको खोलकर सारा दूध पिला दिया। और दाऊ !' कहकर ग्वालिनी लपकी तथा बड़ी तेजीसे उसने दाऊको भी पकड़ लिया। वे पास ही खड़े थे, अनुजके पकड़े जानेसे स्नेहपरवश होकर पास चले आये थे कि देखें ग्वालिनी क्या करती है—उन्हें कल्पना भी नहीं थी कि यह मुझे भी पकड़ लेगी। वे तो समझे हुए थे कि हमलोगोंके माखन खानेकी बात अभी ग्वालिनी जानती ही नहीं। जो हो, ग्वालिनी दोनों हाथ पकड़े हुए द्वारपर चली आयी और सब साथी भाग निकले।

अन्यान्य व्रजसुन्दरियाँ यह अनुपम दृश्य देखनेके लिये एकत्र हो गयीं। ग्वालिनी बायें हाथसे यशोदानन्दनको एवं दाहिनेसे दाऊको पकड़े खड़ी है। श्यामसुन्दर तरह–तरहकी बातें बना रहे हैं। पहले तो अपनेको निर्दोष सिद्ध करने लगे, फिर छोड़ देनेके लिये कातर प्रार्थना की। पर जब ग्वालिनने न छोड़ा तो उसीपर सारा दोष मढ़कर उससे झगड़ा करने लगे। कहने लगे—'इसीने तो मुझे बुलाया था; मैं जब आया तो मुझे गोदमें लेकर सो गयी; इसे सोयी देख मैं इसकी गोशालामें खेलने चला गया। बछड़े दूध ा पी गये तो मैं क्या करता।' ग्वालिनी छोटे–से यशोदानन्दनमें इतनी बुद्धि देखकर चकित रह गयी। अन्तर्हृदयका प्रेमसागर उमड़ पड़ा; ग्वालिनीके

सारे अंग शिथिल हो गये; हाथ ढीले पड़ने लगे, पर श्यामसुन्दर उसकी प्रेमभरी मुट्ठीसे बिना उसकी इच्छाके निकल नहीं सकते थे। ग्वालिनीने यशोदानन्दनके मुखारविन्दकी ओर देखा, उसपर प्रस्वेद–कण छा रहे हैं। प्रस्वेद–कणोंपर दृष्टि जाते ही ग्वालिनीने हाथ छोड़ दिया। श्यामसुन्दर एवं दाऊ भाग निकले। ग्वालिनी बावली–सी होकर भीतर चली गयी। लगातार छः पहर बीत गये, ग्वालिनी देख रही है——गायोंके थनसे दूधकी धार निकल रही है और यशोदानन्दन पी रहे हैं।

प्रतिदिनका अभ्यास है कि उषःकालसे कुछ पहले ही वे उठ पड़ती हैं; अपने कोटि–कोटि–प्राणोपम नयनमनोऽभिराम नित्यनवसुन्दर नीलमणिकी ललित लीलाएँ गाती हुई दही मथती हैं। अभ्यासवस ठीक उसी समय उसे बाह्यज्ञान हुआ; नयन–मन–चोर नीलमणिको देखनेके लिये उसके प्राण व्याकुल हो गये। पर अभी तो रात थी। प्रभातमें तीन घड़ीका विलम्ब था। तीन घड़ियाँ तीन कल्प–सी बीतीं। आखिर प्रभात हुआ। पर इस समय जानेपर नन्दरानी पूछेंगी, क्यों आयी है, तो क्या उत्तर दूँगी ? समाधान न पाकर ग्वालिनीके प्राण छटपटा उठे। उसकी व्याकुलतासे द्रवित होकर अन्तर्यामीने तुरंत उपाय बता दिया——'उलाहनेके बहाने चली जा।' फिर देर क्या थी; ग्वालिनी चल पड़ी।

विद्युत्–वेगसे नन्दरानीके घर जा पहुँची। नन्दरानीने पूछा—इतने सबरे कैसे आयी, बहन ? ग्वालिनी उत्तर देने जा रही थी कि यशोदानन्दन शय्यासे उठकर आँखें मलते हुए वहीं चले आये। आज यह पहला ही अवसर है कि यशोदानन्दन अपने–आप निद्रा त्यागकर शय्यासे उठकर बाहर आये हैं। ग्वालिनीकी दृष्टि श्यामसुन्दरके विधि–हर–मुनि–मोहन वदनारविन्दपर पड़ी। फिर क्या था—

भूली री उराहने को दैबौ।
परि गए दृष्टि स्यामघन सुंदर चकित भई चितैबो।।
चित्र लिखी–सी ठाढ़ी ग्वालिन को समुझै समुझैबो।
चत्रभुज प्रभु गिरिधर मुख निरखत कठिन भयो घर जैबो।।

कुछ देर निश्चल खड़ी रहकर विक्षिप्त–सी गाती हुई ग्वालिनी पीछेको ओर लौट पड़ी। श्यामसुन्दरके मनोहर मुखारविन्दपर मधुर मन्द मुस्कान है और मैयाके मुखपर अत्यन्त आश्चर्य ! ग्वालिनी गाती जा रही है—

तव सूनुर्मुहुरनयं कुरुते।
अकुरुत किं वा व्यञ्जितमुरु ते।।
मुञ्चति वत्सान् भ्रामं भ्रामम्।
साचिव्यं वः कुरुते कामम्।।
असमयमोचनसुखनिधाम् ।
कः किं कुरुते न यदि निदानम्।।
विना निदानं कुरुते स्वामिनी।
क्रोशं न किमिव कुरुषे भामिनि !।।

(श्रीगोपालचम्पूः)

'अरे नन्दरानी ! तुम्हारा यह लाडला बार–बार अनीति करता है। इसने क्या किया है ? यह तुम्हें अच्छी तरह मालूम है। यह चलता–फिरता बछड़ोंको खोल देता है और मैं समझती हूँ कि तुमलोगोंकी सलाहसे ही सब कुछ करता है। यदि तुम्हारा संकेत न हो तो और असमयमें ही बछड़ोंको खोल देनेका अप्रिय कार्य कौन कर सकता है ? यदि कहो कि यह तुम्हारी सलाहसे ऐसा नहीं करता तो फिर तुम इसे डाँटती क्यों नहीं।'

(३)

दिन कुछ चढ़ चुका है। यशोदानन्दन व्रजवनिताओंके आँगनमें खेलते हुए घूम रहे हैं—

कण्ठे रुरोर्नखमनुत्तमहेमनद्धं श्रोणौ महार्हमणिकिंकिंणिदास बिभ्रत।
मन्दं पुराद्बहिरुपेत्य करोति खेला माभीरनीरजदृशां भवनांगनेषु।।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

गलेमें उत्कृष्ट सोनेसे मँढ़ा हुआ व्याघ्रनख है, कटिदेशमें अतिशय मूल्यवान् मणियोंसे युक्त करधनी पहने हैं। चुपचाप धीरेसे अपने घरसे बाहर आकर यशोदानन्दन व्रजसुन्दरियोंके भवनोंमें जाकर उनके आँगनोंमें खेलते हैं।

खेलते–खेलते अपनी गोशालामें चले गये। वहाँ जाकर—

धेनु दुहत देखत हरि ग्वाल।
आपुन बैठि गए तिन के ढिग, सिखवौ मोहि कहत गोपाल।।
कालि देहौं गोदोहन सिखवै, आज दुहीं सब गाय।
भोर दुहौ जिन नंद दुहाई उन सों कहत सुनाय सुनाय।।

बड़ो भयो अब दुहत रहौंगो आप आपनी धेनु निबेर।
सूरदास प्रभु कहत सीख दै मोहि लीजिए टेर।।

——अतिशय मनोयोगसे गायोंका दुहा जाना देखने लगे। व्रजनरेश नन्दराय पास ही दोहनीके दूधकी सँभाल कर रहे हैं। चञ्चल नन्दनन्दन पिताकी दृष्टि बचाकर गोशालामें दूर जा निकले। एक बूढ़ा ग्वाला मन्द–मन्द स्वरमें श्यामसुन्दरकी लीला गाता हुआ गाय दुह रहा है। श्यामसुन्दरको देखते ही गाय जोरसे रँभा उठी। ग्वालेने दृष्टि फिराकर देखा। देखते ही उसकी पलकें पड़नी बंद हो गयीं। गोपका रोम–रोम आनन्दसे नाच उठा। यह गोप व्रजनरेश नन्दरायजीको अतिशय प्रिय था; क्योंकि यह उनका बालसखा था। किसी दैवी प्रेरणासे इसने ब्याह नहीं किया था, आजीवन एकाकी नन्दरायजीके पास रहा। नन्दरायजी इसे मित्र ही नहीं, बड़े भाईके रूपमें देखते थे। श्यामसुन्दरके जन्म–दिनके समयसे यह गोप अर्द्धविक्षिप्त–सा रहता; अवश्य ही गायोंकी सेवा जैसे करता था, वैसे ही करता रहा। आज मानो उसके समस्त जीवनकी तपस्याका फल देनेके लिये नन्दनन्दन एकान्तमें उसके सामने चले आये।

नन्दनन्दन उसके पास बैठ गये। बायें हाथसे उसके दाहिने कंधेको तथा दाहिने हाथसे उसके चिबुकको स्पर्श करके बोले——'ताऊ, मुझे भी दुहना सिखा दो !' इस मधुर कण्ठध्वनिमें न जाने क्या जादू भरा है, वृद्ध गोप रो पड़ा। गोपके हाथसे दोहनी नीचे गिर पड़ी तथा नन्दनन्दनको छातीसे चिपटाकर वह बेसुध हो गया। बाह्यदृष्टिमें तो एक–दो क्षण ही बीते, पर वस्तुतः गोपकी दृष्टिमें अनन्त कल्पोंतक वह नन्दनन्दनको हृदयसे लगाये अनिर्वचनीय परमानन्दका रस लेता रहा। इधर नन्दनन्दन अपनी छोटी–छोटी अँगुलियोंसे उसकी आँखें पोंछ रहे हैं तथा कह रहे हैं——'क्यों ताऊ ! मुझे नहीं सिखा दोगे ?'

गोपकी भावसमाधि शिथिल हुई, पर आज तो सभी गायें दुही जा चुकी हैं। गोप बोला——'मेरे लाल ! कल सिखा दूँगा।' नन्दनन्दनका मुखारविन्द परमोल्लाससे जगमगा उठा। बोले——'ताऊ ! बाबाकी सौंह है; कल अवश्य सिखला देना, भला! मेरे आनेतक कम–से–कम एक गाय बिना दुहे हुए अवश्य रखना।' गोप एकटक अपने प्राणधनकी ओर देख रहा था। यशोदानन्दन फिर बोले——'ताऊ ! अब तो मैं सयाना हो गया, अपनी गायें अपने–आप दुह लूँगा।' गोप प्रस्तरमूर्तिकी तरह निश्चल था। नन्दनन्दन फिर बोले——'अच्छा

ताऊ ! आज संध्याको सिखा दो तो कैसा रहे ?' वृद्ध गोपने कुछ कहना चाहा, पर शब्द कण्ठसे बाहर नहीं निकले। व्रजराजनन्दन चटपट बोल उठे—'नहीं, ताऊ, सांयकाल तो मैया आने नहीं देगी; कल ही सिखा देना, कल तुम गोशाला दुहने जब आओ तो मुझे पुकार लेना।' यह कहकर यशोदानन्दन कुछ सोचने-से लगे। फिर बोले—'नहीं, पुकारनेकी आवश्यकता नहीं, मैं अपने-आप ही आ जाऊँगा; पर तुम भूलना मत, ताऊ !' वृद्ध गोपने कठिनतासे पुचकारका एक शब्द करके यह सूचित कर दिया कि 'मेरे लाल, ऐसा ही करूँगा।' नन्दनन्दन उल्लसित होकर बाबाके पास लौट गये।

दूसरे दिन जितना शीघ्र हो सकता था, यशोदानन्दन गोपके पास पहुँचे। उनकी आँखोंमें उत्कण्ठा भरी थी। आज दाऊ भी साथ हैं। श्यामसुन्दर कुछ परामर्श करके उन्हें साथ ले आये हैं। आते ही गोपकी दोहनी उन्होंने थाम ली तथा अतिशय उत्सुक होकर बोले—'चलो ताऊ, गाय कहाँ है ? सिखा दो।' अग्रज दाऊ भी प्रार्थनामिश्रित स्वरमें बोले—'हाँ-हाँ, ताऊ, इसे आज अवश्य सिखा दो।'

वृद्ध गोपने श्यामसुन्दरका मुख चूमकर उनके हाथोंमें एक छोटी-सी दोहनी दे दी। श्यामसुन्दर दुहनेकी मुद्रामें गायेके थनके पास जा बैठे। गोपने श्यामसुन्दरकी अँगुलियोंको अपनी अँगुलियोंमें पकड़कर थनको दबाना सिखाया। ठीक उसके कथनानुसार वे दबाने लगे। दूधकी धारा गिरने लगी, वह दोहनीपर न गिरकर कभी श्यामसुन्दरके पेटपर और कभी पृथ्वीपर गिरती। श्यामसुन्दर दोहनीको कभी धरतीपर रख देते, कभी घुटनोंमें दबा लेते। इस क्रियामें एक-दो धारें दोहनीमें, एक-दो श्यामसुन्दरके श्रीअंगपर और एक-दो धरतीपर गिरतीं। फिर भी कुछ दूध दोहनीमें एकत्र हो गया। हर्षोत्फुल्ल मुखसे दोहनी लेकर वे उठ खड़े हुए तथा नाच-नाचकर दाऊको दिखाया कि 'देखो, मैं दुहना सीख गया।' दाऊ एवं वृद्ध गोप दोनों ही यशोदानन्दनके हर्षोत्फुल्ल मुखको देख-देखकर मुग्ध हो गये। इस तरह गो-दोहनकी आधी शिक्षा समाप्त हुई।

तीसरे दिन प्रातःकाल उठते ही श्यामसुन्दर माताका आँचल पकड़कर प्रार्थना करने लगे—

दे मैया री दोहनी, दुहि लाऊँ गैया।
माखन खाय बल भयो, तोहि नंद दुहैया।।
सेंदुर काजरि धूमरी धौरि मेरी गैया।

दुहि लाऊँ तुरतहि तब, मोहि कर दे घैया।।
ग्वालन के सँग दुहत हौं, बूझौ बल भैया।
सूर निरखि जननी हँसी, तब लेत बलैया।।

नन्दरानी समझाने लगीं, पर श्यामसुन्दरने एक भी नहीं सुनी। किसी तरह मनुहार कर–करके माताने माखन खिलाया, श्रृंगार किया तथा गोदोहनकी बात भुला देनेकी चेष्टा की। माके अनुराग भरे हृदयमें यह भय था कि मेरा नीलमणि अभी निरा अबोध शिशु है, कहीं दुहते समय कोई गाय लात न मार दे। पर आज तो हठीले मोहन मचले हुए हैं। नन्दरानी अन्तमें गोदमें लेकर, कोटि–कोटि प्राणोंका प्यार देकर बोली––'मेरे प्राणधन नीलमणि ! पहले अच्छी तरह बाबाके पास जाकर दुहना सीख ले, तब मैं दोहनी दूँगी और तू दूध दुह लाना।' माकी बात सुनकर तत्क्षण नन्दनन्दन बाबाके पास दौड़ गये। उनकी धोती पकड़कर बार–बार हठ करने लगे––

बाबाजू ! मोहि दुहन सिखावो।
गाय एक सूधी–सी मिलवो, हौंहुँ दुहौं बलदाऊ दुहाओ।।

व्रजराज अपने हठीले लालकी मुखभंगिमा देखकर मुग्ध हो गये। गोदमें लेकर शुभ मुहूर्तमें सिखा देनेकी बात कहने लगे, पर व्रजदुलारे आज किसीकी बातपर माननेवाले न थे। पास ही उपनन्द खड़े थे। उनके परामर्शसे यह निश्चित हुआ कि नारायणका स्मरण करके नीलमणिकी साध पूरी कर दी जाय। फिर तो श्यामसुन्दरके उल्लासका कहना ही क्या। वे उसी क्षण बाबाकी गोदसे कूदकर मैयाकी गोदमें जा पहुँचे––

तनक कनक की दोहनी दे री मैया।
तात दुहन सिखवन कह्यौ मोहि धौरी गैया।।

श्यामसुन्दरके मनोहर मुखारविन्दपर प्रस्वेद–कण मोतीकी तरह चमक रहे थे। माने उन्हें अञ्चलसे पोंछकर अपने नीलमणिको हृदयसे लगाया, छोटी–सी सुवर्णकी दोहनी हाथमें दे दी और स्वयं साथ चल पड़ी। नन्दरानीके पीछे–पीछे यूथ–यूथ व्रजवनिताएँ नीलमणिकी गोदोहन लीला देखनेको एकत्र हो गयीं। इष्टदेव नारायणका स्मरण करके व्रजराजने अपने प्राणाधार पुत्रका सिर सूँघा तथा गोदोहन शिक्षाका अभिनय सम्पन्न हुआ। गोपनन्दन गौ दुहने बैठे––

हरि बिसमासन बैठि के मृदु कर थन लीनो।

धार अटपटी देखि कै ब्रजपति हँसि दीनो।।
गृह गृह ते आयीं देखन सब ब्रजनारी।
सकुचत सब मन हरि लियो हँसि घोषबिहारी।।

ब्रजराजके आदेशसे उस दिन नन्दभवन सजाया गया। मंगलगान हुए, मंगलवाद्य बजे। ब्रजराजने ब्राह्मणोंको मुक्तहस्त होकर दान दिया——

द्विज बुलाय दछिना दई, बिधि मंगल गावै।
परमानँद प्रभु साँवरो सुख-सिंधु बढ़ावै।।

आगे चलकर यशोदानन्दन गोदोहन-कलामें अत्यन्त कुशल हो गये। सबसे आश्चर्य यह था कि जो गायें कठिनतासे दुहने देती थीं, वे श्यामसुन्दरके हाथका स्पर्श पाते ही सर्वथा स्थिर खड़ी रहतीं और अपेक्षाकृत बहुत अधिक दूध देतीं। अतः अपने प्राणधन नीलमणिको गौ दुहनेके लिये ब्रजवनिताएँ अपने-अपने घर ले जाने लगीं। अवश्य ही गोदोहन बहानामात्र ही था; इस मिससे वे अपने प्राणधनके दर्शनका परम सुख लेतीं। इस गोदोहनको निमित्त बनाकर चिदानन्दरस-घनविग्रह ब्रजराजनन्दनने अनेकों मधुमयी लीलाओंका प्रकाश किया। वह छबि अद्भुत ही होती, ब्रजांगनाएँ बछड़ोंके पास खड़ी रहकर निर्निमेष नयनोंसे दिव्य शोभा निहारतीं और लीलारसमत्त स्वयं भगवान् यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्र उनकी गायें दुहते। गोदोहनका पारिश्रमिक था श्यामसुन्दरपर बिक जाना——

जा दिन ते गैया दुहि दीनी।
ता दिन ते आप को आपुहि मानहुँ चितै ठगौरी लीनी।।
सहज स्याम कर धरी दोहनी, दूध लोभ मिस बिनती कीनी।
मृदु मुसकाय चितै कछु बोले, ग्वालिनि निरखि प्रेम रस भीनी।।
नितप्रति खिरक सवारें आवत, लोकलाज मनो धृत सो पीनी।
चत्रभुज प्रभु गिरधिर मनमोहन दरसन छल बल सुधि बुधि छीनी।।

चञ्चल यशोदानन्दनके बाललीला-रसका आस्वादन करते हुए सौभाग्यवती ब्रजवासियोंके दिन क्षणके समान बीत रहे थे। अब उलूखल-बन्धनकी परम मनोहारिणी लीलाके पश्चात् उपनन्दके परामर्शसे समस्त नन्दव्रज वृन्दावनमें चला आया। अतः वृन्दावनके अनुरूप ही श्यामसुन्दर नन्दनन्दनके लीलारससिन्धुमें तरंगें उठने लगीं और उससे वृन्दावन प्लावित हो उठा।

श्यामसुन्दर अब वंशी बजाना सीख गये हैं। कब, कैसे, किससे सीखा——यह किसीने नहीं जाना; पर वंशीकी ध्वनिसे समस्त व्रजवासी मोहित हो उठे। श्यामसुन्दर अपनी मैयाकी, बाबाकी गोदमें बैठे रहते। व्रजांगनाएँ आतीं और कहतीं——

हे कृष्ण ! मातृकुचचूचुकचूषणेऽपि
नालं यदेतदधरोष्ठपुटं तवासीत्।
तेनाद्य ते कतिपयेषु दिनेष्वकस्मात्
कस्माद् गुरोरधिगतः कलवेणुपाठः।।
(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

'प्यारे कन्हैया ! तुम्हारे ये कोमल अधर तो मातृ–स्तनपानमें भी समर्थ न थे, फिर भला इने–गिने दिनोंमें ही तुमने इतनी मधुर वंशी बजानेकी शिक्षा किस गुरुसे सीख ली।' इस प्रकार व्रजांगनाओंका आग्रह देखकर श्यामसुन्दर वंशी बजाते और वे मुग्ध हो जातीं।

श्यामसुन्दर दिनभर दो कार्योंमें व्यस्त रहते——एक, वंशी बजाना, और दूसरा, सखाओंके साथ विविध क्रीड़ा करना। अब विशेषतः गाय एवं गोवत्सोंके साथ ही क्रीड़ा होती थी। कभी दो, चार, छः गोवत्सोंको अथवा गायोंको पकड़ लेते; उनको अपने अधीन करके नचाते तथा स्वयं उनके साथ नाचते। कभी उनके सींगोंको पकड़कर खेलते। कभी गाड़ीमें जुते हुए बैलोंके सींगको पकड़कर उनसे विविध क्रीड़ा करते। नन्दरानी, नन्दराय स्नेहवश भयभीत हो जाते। बार–बार मना करते, पर श्रीकृष्ण एक नहीं सुनते। साथमें दाऊका प्रोत्साहन था। दोनों भाई परामर्श करके बहुत दूर निकल जाते। जननी व्याकुल होकर ढूढ़ने जाती तो दोनों भाई व्रजकी सीमाके बाहर वनके पास बछड़ा चराते हुए गोपशिशुओंके साथ खेलते मिलते। अपने कोटि–कोटि–प्राणप्रतिम नीलमणिको कण्ठसे लगाकर जननी इतनी दूर अकेले आनेके लिये मना करतीं। नीलमणि कहते——

मैया री ! मैं गाय चरावन जैहौं।
तूँ कहि महरि नंदबाबा सों, बड़ो भयो न डरैहों।।
श्रीदामा लै आदि सखा सब, अरु हलधर सँग लैहौं।
दह्यौ भात काँवरि भरि लैहौं, भूख लगै तब खैहौं।।
बंसीबट की सीतल छैयाँ खेलत में सुख पैहौं।

परमानंददास सँग खेलौं जाय जमुनतट न्हैहौं।।

लालकी बात सुनकर जननीका हृदय आनन्दसे उछलने लगा। एक दिन था, नन्दरानी अपने प्राणधनको दुलराती हुई नाना मनोरथ करती थीं––कब मेरा नीलमणि बकैयाँ चलेगा, कग डगमग करते हुए धरतीपर पैर रखेगा, कब मुझे माँ–माँ कहकर पुकारेगा, कब माखन माँगेगा, कब गाय दुहने बैठेगा और वह दिन कब होगा, जब मैं माथेपर तिलक करके अपने नीलमणिको गाय चराने वन भेजूँगी। नन्दरानीके ये सभी मनोरथ पूर्ण हुए। गाय चरानेका मनोरथ भी मानो नीलमणिकी इस बातसे ही पूर्ण हो गया। पर अभी नीलमणिके तो दूधके भी दाँत नहीं उतरे हैं, यह भला वनमें गोचारण करने कैसे जायगा––इस भावनासे मैया अपने लालको तरह–तरहसे समझाने लगी कि 'मेरे लाल ! अभी कुछ दिन बाद गाय चराने भेजूँगी।' नन्दराय भी समझाते, पर चञ्चल श्यामसुन्दर भाग ही जाते। इसीलिये इस भयसे कि खेलते–खेलते पता नहीं किसी दिन किधर निकले, नन्द–दम्पति परस्पर परामर्श करके यह निश्चय किया––

यदि गोसंगावस्थानं विना न स्थातुं पारयतस्तर्हि
व्रजसदेशदेशे वत्सानेव तावत्सञ्चारयतामिति।

(श्रीगोपालचम्पू:)

'सचमुच ये राम–कृष्ण दोनों अब बड़े चञ्चल हो गये हैं तथा विशेषतः इन्हें गायोंका संग बड़ा प्रिय है। यदि गायोंके संग बिना ये नहीं रह सकते तो अच्छा यह है कि व्रजके निकट रहकर ये छोटे बछड़ोंको चराया करें।'

उपनन्दने भी यही सम्मति दी। अतः ज्यौतिषियोंको बुलाकर पुण्यतिथि—पुण्यमुहूर्त निश्चय कर लिया गया। व्रजमें बात फैलते क्या देर लगती ? सुनते ही सबने निश्चय किया कि हम भी अपने–अपने बच्चोंको उसी दिनसे वत्सचारणके लिये भेजेंगे।

मंगलमय प्रभात हुआ। आज यशोदानन्दन वत्सचारण प्रारम्भ करेंगे। नन्दरानीके आनन्दका क्या कहना ? माताने तरह–तरहके वस्त्राभूषणोंसे अपने हाथों लालको सजाया, पर स्नेहभरे हृदयमें ही आशंका उठी—इसका सौन्दर्य तो पहलेसे ही भुवन–मन–मोहन है। मैंने इसको सजाकर और भी सुन्दर बना

दिया। कहीं नजर न लग जाय ! जननीने उसी क्षण लालके भालपर काजलकी टेढ़ी रेखा खींच दी। इष्टदेव नारायणको मनाया। ब्राह्मणोंको स्वर्ण–दान किया और श्यामसुन्दरके लिये सबसे आर्शीवाद लिये। बड़ी सुखी है नन्दरानी आज। पर जब श्यामसुन्दर चलनेको तैयार हुए, तब तो वात्सल्य–स्नेहने जननीके मनमें शंकाओंके पहाड़ खड़े कर दिये। वे डर गयीं—कहीं जंगलमें मेरे कन्हैयाका अनिष्ट न हो जाय। इसे कोई वन्य कीट–पतंग न काट ले। कहीं यह गिर न पड़े। नन्दरानीकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन्होंने दाऊको समीप बुलाकर उनके हाथमें कन्हैयाका हाथ पकड़ाकर कहा—'बेटा ! तुम बड़े हो, यह कन्हैया बड़ा चञ्चल है; अपने इस छोटे भाईकी सँभाल रखना, भला !'

बत्स चरावन जात कन्हैया।
उबटि अंग अन्हवाय लाल कों फूली फिरत मगन मन मैया।।
निज कर करि सिंगार बिबिध बिधि, काजल–रेख भाल पर दीन्हीं।
दीठि लागिबे के डर जसुमति इष्टदेव सौं बिनती कीन्हीं।।
बिप्र बुलाय दान करि सुबरन सबकी सुखद असीसें लीन्हीं।
कर पकराइ नयन भरि अँसुअन सकल सँभार दाउए दीन्हीं।।

नन्दरायजी निर्निमेष नयनोंसे अपने पुत्रका श्रृंगार और यशोदाकी प्रेमदशा देख रहे हैं। हृदयका आनन्दरस पानी बनकर आँखोंकी राह बाहर आना चाहता है; पर मंगल मुहूर्त्तकी स्मृति बाँध लगा देती है। मन–ही–मन नन्दराय आजके पुण्यप्रभातको धन्यवाद दे रहे हैं। सब ओर आनन्द छाया है।

आजु ब्रज छायो अति आनंद।
बत्स चरावन जात प्रथम दिन नंदसुवन सुखकंद।।

माताके वात्सल्यपूर्ण हाथोंसे सजकर नीलमणि आँगनमें खड़े हुए। नन्दरायने अपने पुत्रके हाथमें एक छोटी–सी लाल छड़ी पकड़ा दी (**'तनुतरां लोहितयष्टिकामेकां करे धारयित्वा'**—श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)। सब बालगोपाल समीप आकर खड़े हो गये।

सोहत लाल लकुट कर राती।
सूथन कटि चोलना अरुन रँग पीतांबर की गाती।
ऐसेहि गोप सबै बनि आए, जो सब स्याम सँगाती।।

नन्दरायकी आज्ञासे आज गोवत्सोंको भी श्रृंगार किया गया है। वे तोरणद्वारके बाहर सुन्दर सजे हुए सिर उठाये खड़े हैं, मानो नन्दनन्दनकी

प्रतीक्षा कर रहे हों। सचमुच नन्दनन्दनके आते ही वे सभी आनन्दमें भरकर कूदने लगे। नन्दनन्दन दौड़कर उनके पास जा पहुँचे। उनके बीच खड़े होनेपर पुनः शान्त हो गये। तदनन्तर यशोदानन्दनने सब गुरुजनोंको प्रणाम किया और वत्सचारणके लिये प्रस्थान किया––

चले हरि बत्स चरावन आज।
मुदित जसोमति करत आरती साजे सब सुभ साज।
मंगलगान करत ब्रजबनिता, मोतिन पूरे थाल।
हँसत हँसावत बत्स–बाल सँग चले जात गोपाल।।

आज नन्दद्वारसे लेकर वनतक समस्त गोपोंके गृह सजाये गये हैं। सबके द्वारपर मंगलकलश हैं। घर–घर मंगलगीत गाये जा रहे हैं। अपने गृहके सामने आनेपर सभी व्रजांगनाएँ नन्दनन्दनकी आरती उतार रही हैं। आगे–आगे गोवत्स चल रहे हैं तथा उनके पीछे ग्वालसखाओंके बीचमें कंधेपर छींका रक्खे हुए नन्दनन्दन हैं। उन गोवत्सोंपर, ग्वालसखाओं एवं नन्दनन्दन व्रजांगनाएँ पुष्प बरसा रही हैं और उन सबको अपनी प्यार भरी चितवनसे निहाल करते हुए नन्दनन्दन वनकी ओर चले जा रहे हैं––

गोविंद चलत देखियत नीके।
मध्य गुपाल–मंडली मोहन काँधन धरि लिये छीके।।
बछरा–बृंद घेरि आगें दै ब्रजजन सृंग बजाए।
मानहुँ कमल–सरोवर तजि कै मधुप उनीदि आए।।

परस्पर हँसते–खेलते एवं गोवत्सोंको उछलते–कुदाते सबने वनमें प्रवेश किया। तृण–लताकुरोंसे अत्यन्त शोभित हरित वनभूमिपर बछड़ोंको चरानेके लिये छोड़ दिया। एवं परस्पर खेलमें संलग्न हो गये। कुछ देर सखाओंके साथ खेलकर फिर नन्दनन्दनने गोवत्सोंसे खेलनेका विचार किया। श्यामसुन्दर अपने सुकोमलतम हाथोंसे हरी–हरी दूब तोड़ते तथा बछड़ोंके मुँहमें जाकर देते। बछड़ा अपना मुख श्यामसुन्दरके हाथोंपर रख देता तथा धीरे–धीरे दूब चरने लग जाता। उसे चरते देखकर सभी गोवत्स श्यामसुन्दरको चारों ओर घेरकर खड़े हो जाते और उनके हाथसे दूब चरनेकी चेष्टा करते। श्यामसुन्दर भी अतिशय प्यारसे क्रमशः सबके मुँहमें हरी–हरी दूब देते। ग्वालसखाओंकी मण्डली श्यामसुन्दरके हाथोंमें तोड़–तोड़कर दूब देती और वे उन्हें खिलाते जाते। उस दिन दोपहरतकका

समय श्यामसुन्दरने सखाओंके साथ दूब तोड़–तोड़कर बछड़ोंको खिलानेमें ही बिताया। जब बछड़े तृणसे तृप्त हो गये तो उन्हें जलाशयके समीप ले जाकर पानी पिलाने लगे। एक बछड़ेने जल–पान नहीं किया। बाललीला–रसमत्त श्यामसुन्दरने सोचा––अच्छा, अपने हाथोंसे इसे जल पिला दूँ; सम्भवतः यह जलाशयमें जानेसे डरता है। यह सोचकर करकमलोंकी छोटी–सी अञ्जलि बनायी तथा जलाशयमें जल भरकर बछड़ेके मुँहके पास ले गये। छोटी–सी अञ्जलि मुँहतक पहुँचते–पहुँचते खाली हो गयी। श्यामसुन्दर कुछ उदास–से हो गये। दो–चार बार ऐसा करनेपर भी जब सफल नहीं हुए तो अपना पीताम्बर भिगोया। श्यामसुन्दर बछड़ेके सामने अञ्जलि बाँधे रहे एवं दाऊ ऊपरसे भीगे पीताम्बरको निचोड़ने लगे। जल अञ्जलिमें गिरने लगा, पर बछड़ा जलकी धारासे चिहुँककर अलग कूद गया। नन्दनन्दन एवं सभी सखा हँस पड़े।

जलसे तृप्त हुए बछड़ोंको एक वृक्षकी शीतल छायामें बैठाया। फिर उनसे खेलने लगे। एक बछड़ेके पास गये; उसके सारे अंगोंको सहलाया; उसके गलेमें अपनी दोनों भुजाएँ डाल दीं; पश्चात् गोवत्सके कपोलपर अपना कपोल रक्खा। फिर कानके पास मुँह लगाकर बोले––'क्यों रे वत्स ! मातासे मिलना चाहता है ? अच्छी बात है, मिला दूँगा।' इस तरह उससे बहुत देरतक बातें करते रहे; बछड़ा श्रीकृष्णके करस्पर्श, कपोलस्पर्शका योगीन्द्र–मुनीन्द्र–दुर्लभ आनन्द पाकर निहाल हो रहा है एवं उसे सुखी देखकर श्रीकृष्ण भी सुखसागरमें निमग्न हो रहे हैं––

*** * * मातरं मिलितुमिच्छसि ? मेलयिष्यामीति तत्कर्णे मिथः कपोलमेलनपूर्वकवृथावर्णनेन च तमुपचर्य्य सुखमुपलब्धवान्।** (आनन्दचम्पू)

ऐसे ही अनेक कौतुकोंसे बछड़े एवं गोपबालकोंको सुखी कर जननीके द्वारा भेजी हुई छाकका सबने मिलकर भोजन किया। भोजनके बाद विश्राम, विश्रामके बाद वंशीवादन एवं नृत्य आदि हुए। पर अब दिन अधिक ढल चुका था। अतः यशोदानन्दन बछड़ोंको एकत्र कर व्रज लौटे। जननी–जनक एकान्त मनसे वनकी ओर नेत्र लगाये प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने हृदयधनको आते देखकर दोनों ही दौड़ पड़े। मार्गमें ही मिलन हुआ, यशोदाने अपने प्राणधनको हृदयसे लगा लिया; अपनी गोदमें नीलमणिको लिये घर पहुँची। बछड़ोंको नन्दरायजी स्वयं उनकी माताओंके पास पहुँचा

आये। वनके विविध दृश्योंका एवं अपने खेलोंका वर्णन राम–श्याम एवं सखा करने लगे। व्रजराज, व्रजरानी एवं व्रजांगनाएँ बड़े चावसे सुनने लगीं। यह प्रथम दिनका वत्सचारण हुआ।

(४)

अब दूसरे दिनसे राम–श्यामकी वत्स–चारण–लीला नियमितरूपसे प्रतिदिन ही होने लगी। पर जननीके आदेशसे वे दूर नहीं जाते थे—

अविदूरे व्रजभावः सह गोपालदारकैः।
चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ।।

(श्रीमद्भा० १०। ११। ३८)

इसी वत्सचारणको निमित्त बनाकर भगवान् व्रजराजनन्दनने वत्सासुरका उद्धार किया; बछड़ोंको जल पिलाने जाकर बकासुरको अपने परमधाममें पहुँचाया; वत्सचारणमें ही संलग्न रहकर अघासुर–मोक्षलीला संपन्न की; तथा श्यामसुन्दरकी परम मनोहारिणी ब्रह्म–मोहन–लीला भी इसी वत्सचारणके प्रसंगसे ही हुई। इस भुवन–पावनी लीला–मन्दाकिनीसे जगत्को पवित्र करनेके उद्देश्यसे ही मानो सर्व लोकैकपाल व्रजराजनन्दन अपने अग्रज दाऊके साथ वत्सपालका वेष स्वीकार कर वत्सचारण करते हुए वृन्दावनमें घूमते हैं।

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोककैपालकौ।
सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः।।

(श्रीमद्भा० १०। ११। ४५)

व्रजराजनन्दन अब वत्सपाल गोपाल बन गये हैं। पौगण्डमण्डित श्रीअंगोंसे एक अभिनव सौन्दर्य झरता रहता है; अग्रज राम एवं सखाओंके साथ गायें चराते हुए वृन्दावनमें घूमते रहते हैं; वृन्दावनकी भूमि उनके चारु चरणतलोंका स्पर्श पाकर कृतार्थ हो रही है—

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः।।

(श्रीमद्भा० १०। १५। १)

प्रतिदिन यशोदा एवं रोहिणी अपने वात्सल्यपूर्ण हृदयका समस्त प्यार लेकर राम–श्यामका श्रृंगार करतीं; नवनीत एवं विविध मिष्टान्नोंका कलेवा करातीं; कुछ छीकोंमें भर देतीं; तथा राम–श्याम गायोंको लेकर

वनमें चराने जाते। वनमें सखाओंके साथ विविध क्रीड़ा करते। कभी मदमत्त मधुकरोंका अनुकरण करते हुए गाते, कभी कलहंसोंका कमनीय कूजन सुनकर उसी तरहकी ध्वनि करते, कभी मयूरोंका मनोहर नृत्य देखकर उन्हींकी तरह नाचने लगते। इधर व्रजराजनन्दन तो इन विविध लीलाओंमें मस्त रहते, उधर गायें चरती हुई वनमें दूर चली जातीं। तब खेल छोड़कर श्यामसुन्दर अपने अग्रज एवं सखाओंको सूचना देते, कदम्बपर चढ़कर गायोंका नाम ले-लेकर पुकारते तथा पीताम्बर फहरा-फहराकर उन्हें अपनी ओर बुलाते—

टेरत ऊँची टेर गुपाल।
दूर जात गैया, भैया हो ! सब मिल घेरो ग्वाल।।
लै लै नाम धूमरी धौरी मुरली मधुर रसाल।
चढ़ि कदंब चहुँ दिसि तें हेरत अंबुज नयन बिसाल।।
सुनत सब्द सुरभी समुहानी उलट पिछोड़ी लाल।।

इस प्रकारकी अनेकों मनोहारिणी लीलाध्वनियोंसे श्रीगोवर्द्धनके समीपवर्ती वनप्रान्त, सरित, तड़ाग आदि सभी निनादित होते रहते। जिस समय मनमोहन श्यामसुन्दर अपनी बाँसुरीमें स्वर भरते, उस समय तो समस्त वृन्दावन ही एक अनिर्वचनीय रस-सुधा-धारासे प्लावित हो उठता, वनवासी चर-अचर प्राणी उसमें बह जाते।

दिनभर व्रजबालकोंको सुख देकर वनसे गोष्ठ लौटनेकी तैयारी होती। सभी ग्वाल अपनी-अपनी गायें इकट्ठी करते। श्यामसुन्दर भी दूर चरती हुई गायोंको बुलाते—

गोबिंद गिरि चढ़ि टेरत गाय।
गाँग बुलाई धूमरि धौरी, टेरत बेनु बजाय।।
स्रवन नाद सुनि मुख तृन धरि सब चितईं सीस उठाय।
प्रेम बिबस है हूँक मार चहुँ दिसि ते उलटीं धाय।।
चत्रभुज प्रभु पटपीत लिये कर आनँद उर न समाय।
पोंछत रेनु धेनु के मुख तें गिरि गोबर्द्धन राय।।

पिशंगि मणिकस्तनि प्रणतश्रृंगि पिंगेक्षणे
मृदंगमुखि धूमले शबलि हंसि वंशीप्रिये।
इति स्वसुरभीकुलं मुहुरुदीर्णहीहीध्वनि-

विर्दूरगतमाह्वयन् हरित हन्त चित्तं हरिः।।

(उज्ज्वलनीलमणि)

गायें एकत्र हो जाती तो उनसे अनेकों लाड़ लड़ाते। फिर सभी गोष्ठकी ओर गायें हाँककर चल पड़ते। उस समय श्यामसुन्दरकी शोभा देखते ही बनती। सुन्दर अलकावली गोधूलि–कणोंसे मण्डित रहती, उनमें मयूरपिच्छ एवं वनप्रसून बँधे रहते, चितवनमें असीम सौन्दर्य भरा होता, अधरोंपर मुधर मुसकान खेलती रहती, स्वयं बाँसुरी बजाते होते एवं सखा–मण्डली उनकी गुणावली गाती रहती। गायोंकी पंक्तियोंसे श्यामसुन्दर घिरे रहते।

यूथ–की–यूथ व्रजांगनाएँ अपने कोटि–कोटि–प्राणप्रतिम प्रियतमको देखनेके लिये एकत्र हो जातीं। उनकी आकुल दृष्टि गायोंके बीचसे उड़कर श्यामसुन्दरके पास जा पहुँचती। अश्रु–जल–पूरित नयनोंसे कोई व्रजांगना जब नहीं देख पाती, तब दूसरी संकेत करती।

वे देखो आवत हैं गिरिधारी।

कछुक गाय आगें अरु पाछें, सोभित संग सखा री।।

श्यामसुन्दरको देखकर समस्त दिनका उनके विरहानलमें जलता हुआ व्रजांगनाओंका संतप्त हृदय शीतल हो जाता।

यह लीलाक्रम प्रतिदिन चलता, पर प्रतिदिन ही एक नये रंगमें ढल जाता। उसीके साथ भूभार–हरणका कार्य भी आनुषंगिकरूपसे होता जाता। पहले कालिय–उद्धार हुआ। विषदूषित जल–पानसे मृत गौओं एवं ग्वाल–सखाओंको अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर व्रजराजनन्दनने जीवन–दान दिया। फिर कालिय–दमनके उद्देश्यसे स्वयं कालियह्रदमें कूद पड़े। लीला–रस–मत्त व्रजराज–नन्दनको न पहचानकर कालियने उन्हें अपने फणोंमें बाँध लिया। अपने प्राणधनकी यह आकस्मिक दशा देखकर सखा एवं गायें रो पड़ीं। इतना ही नहीं, समस्त व्रजमण्डल एकत्र होकर कालियह्रदमें कूदकर प्राण देनेको प्रस्तुत हो गया। श्रीकृष्णकी अनन्त कृपाशक्तिके लिये यह असह्य था। दृश्य बदला, और दूसरे ही क्षण कालियके फणको व्रजराजनन्दनने चूर–चूर कर डाला। नागपत्नियोंके अनुनय–विनयसे नागने जीवन–दान पाया तथा आज्ञा हुई—'नाग! यहाँसे चलो जाओ; यह नदी हमारी गायोंकी, हमारे जनोंकी क्रीडास्थली होगी।'

अग्रज बलरामके द्वारा धेनकासुर एवं प्रलम्बासुरका उद्धार हुआ।

दो बार कंसप्रेरित आसुरी माया श्यामसुन्दर एवं उनके प्रिय व्रजको भस्म करनेके उद्देश्यसे दावानलके रूपमें प्रकट हुई। स्वयं भगवान् श्यामसुन्दर उसी बालोचित लीला–रसका आस्वाद लेते–लेते उस लप–लप करती दावाग्निको पी गये। ऐसे अद्भुत कृत्योंके समय व्रजराजनन्दनके श्रीअंगोंमें तदनुरूप कार्यके लिये किसी विशाल विकाराल रूपका आविर्भाव होता रहा हो, ऐसी बात बिल्कुल नहीं थी। उनका तो सर्वदा वही मधुर मनोहर नव–जलधर–श्यामल अंग, अरुण अधर, कर–पल्लवोंमें वही हरिद्वेणु—सब कुछ ज्यों–का–त्यों बना रहता। ऐसी लीलाओंका समापन करके भी सन्ध्या–समय वे गायोंको बटोरकर, अपने वदनारविन्दपर उसी स्वभावसुलभ प्रसन्नता, उसी आनन्दमयी शान्तिको लिये, वेणुछिद्रोंसे मधुधाराकी वर्षा करते हुए व्रजमें लौटते—

गाः संनिवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः।
वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः।।

(श्रीमद्भा० १०। १६। १५)

इस तरह गो–चारण–लीलाका आनन्द लेते हुए व्रजराजनन्दनको अब दो वर्ष, दस महीनोंसे कुछ अधिक हो गये। पञ्चम वर्षकी कार्तिक शुक्ला अष्टमीको यह गो–चारण–लीला आरम्भ हुई थी। अब इस बार उनके अष्टम वर्षकी शरदऋतु आयी। सप्तम वर्षके प्रारम्भमें ही गो–चारण–परायण व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णके पौगण्डवयःश्रित श्यामल अंगोंके अन्तरालसे कैशोर मानो झाँक–सा रहा था तथा उन्हें देख–देखकर व्रज–युवतियोंके हृदयमें अनुरागका अंकुर उत्पन्न होने लगा था। इस अष्टम शरदने तो मानों स्पष्ट आह्वान किया एवं आमन्त्रण पाकर व्रजराजनन्दनके नव–नीरद श्रीअंगोंपर कैशोरने अपनी अनादिसिद्ध सत्ताकी घोषणा करना प्रारम्भ कर दिया—

वयसो विविधत्वेऽपि सर्वभक्तिसाश्रयः।
धर्मः कैशोर एवात्र नित्यनानाविलासवान्।।

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्ति भी आगेकी लीला प्रकाशन करनेको उद्यत थी; वयस्क व्रजदेवियोंको वात्सल्यरसकी आनन्दधारामें डुबोकर अब उसे माधुर्य–रसकी मन्दाकिनीसे व्रज–सुन्दरियोंको आप्लावित करना था। अतः लीलाशक्तिने भी व्रजराजनन्दनके श्रीअंगोंपर

उभरते हुए कैशोरका स्वागत ही किया। इसीलिये आज जब शारदीय श्रृंगारसे सजे हुए वृन्दावनमें गोचारण–लीला–रसमें निमग्न श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दनकी वंशी बजी––

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम्।
मधुपतिरगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्।।

(श्रीमद्भा० १०। २१। २)

'उस वनके सरोवर, नदियाँ और पर्वत––सब–के–सब सुन्दर–सुन्दर पुष्पोंसे परिपूर्ण हरी–हरी वृक्षपंक्तियोंसे शोभायमान हो रहे थे। मतवाले भौंरे स्थान–स्थानपर गुनगुना रहे थे और तरह–तरहके पक्षी झुंड–के–झुंड अलग–अलग कलरव कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ उसके भीतर घुसकर गौओंको चराते हुए अपनी बाँसुरीपर बड़ी ही मधुर तान छेड़ी।'

तब व्रजयुवतियाँ क्षणभरमें ही कुछ–से–कुछ हो गयीं। उनके हृदयका अनुराग–सिन्धु उमड़ पड़ा तथा उसकी उत्ताल तरंगोंमें उनके शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण––सभी बह चले। एक ही नहीं, सबकी यही दशा थी। सभी एक ही धारामें डूबती–उतराती अपने प्रियतम श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दनकी ओर बहती जा रही थी। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे एक गोपीका स्थूलशरीर दूसरीके स्थूलशरीरसे जा सटा, दूसरीका तीसरीके शरीरसे, तीसरीका चौथीसे; इस तरह रस–धारामें बहती हुई व्रजसुन्दरियोंकी एक गोष्ठी बन गयी। सामने स्वजनों एवं आर्यपथका विशाल पर्वत खड़ा था। प्रेम–रस–पीयूषकी प्रबल धाराके प्रचण्ड वेगसे उसकी भी जड़ हिल गयी। पर एक बार तो उसने उनके शरीरको रोक ही लिया। उनके शरीर उस पर्वतको अभी पार न कर सके। अवश्य ही यह प्रतिरोध भी पर्वतके टूटनेके लिये हुआ था। जो हो, उनका शरीर ही रुक सका; उनकी रसमय मन–प्राण–इन्द्रियाँ तो विरह–तापसे वाष्प बन उड़कर कभीकी श्यामसुन्दरके पास पहुँच गयीं और श्यामसुन्दरका मधुर स्पर्श पाकर निहाल होने लगीं। उनके शरीर व्रजमें थे। शेष सब कुछ था अपने जीवनधन श्यामसुन्दरके पास। लीलाशक्तिकी इच्छासे ही उनके स्थूलशरीर एवं व्रजराजनन्दनमें रमे हुए मन–प्राण आदिमें सूक्ष्म तन्तु(silver chord)का–सा सम्बन्ध अवशिष्ट था। इसीके सहारे मानो उनके मन–इन्द्रिय–प्राणोंकी अनुभूति इस स्थूलशरीरमें प्रतिध्वनित होने लगी।

एक व्रजयुवतीके मुखसे यह प्रतिध्वनि सुन पड़ी––'सखियों ! नेत्रोंका बस चरम फल यही है कि वनमें गायोंको ले जाते हुए श्यामसुन्दर व्रजराजनन्दन एवं गौरसुन्दर बलरामके मुखारविन्दका मधुपान कर लें।'

कोई प्रतिध्वनि ऐसी थी––'देख सखि ! वनमें गाय चराने आकर राम–श्याम कैसी क्रीड़ा कर रहे हैं। आम्र पल्लव, मयूर–पिच्छ, पुष्प–गच्छ एवं कमलोंकी मालासे श्रृंगार किये हुए दोनों कितना सुन्दर गा रहे हैं।' कुछ गोपियोंके मुखसे सुन पड़ा रहा था––'बहिनो ! देखो, गायोंको बुलानेके लिये हमारे हृदयधन वंशी बजा रहे हैं। ओह ! पता नहीं इस वंशीने कौन–सी कठोर तपस्या की है, जिसके फलस्वरूप यह निरंकुश होकर हमारे गोविन्दकी अधर–सुधाका पान कर रही है; यह अधर–सुधा तो हमलोगोंकी ही वस्तु थी।'

वीणाकी झनकारकी तरह कुछ प्रतिध्वनियाँ थीं––'सखियों ! वहाँ देखो, गायोंको चराते हुए व्रजराजनन्दन आगे बढ़ रहे हैं; उनके चरणोंके स्पर्शसे वृन्दावनकी भूमि निहाल हो रही है। पृथ्वीदेवीने वृन्दावनको अनन्त कालसे अपने हृदयपर धारण कर रक्खा है। आज वृन्दावनने भी उसका पूरा प्रतिदान दे दिया।

कुछके मुखोंमें ये प्रतिशब्द थे––'हरिनियो ! तुमलोग धन्य हो। अयाचित अनन्त असीम आनन्द तुम्हें प्राप्त हो गया। श्यामसुन्दर तो वनमें गाय चराने आये थे; पर इसी निमित्तसे तुमलोग अपने पतियोंके साथ रसभरी चितवनके पुष्पोंसे उनकी पूजा करके निहाल हो गयीं। हम अभागिनी इतने निकटसे प्रियतमको कहाँ देख पाती है !'

कुछ गोपियोंके कण्ठसे असीम सुन्दर ! स्वर्गीय संगीतको भी तुच्छ कर देनेवाली स्वर–लहरी ध्वनित हो रही थी––'बहिन ! इन गायोंको धन्य है। देखो, प्यारे श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी अधर–सुधा वंशीके छिद्रोंसे शब्द बनकर झर रही हैं, और ये घास चरना भूलकर अपने कर्ण–पुटोंसे उस पीयूषका पान कर रही हैं। आह ! इन बछड़ोंकी दशा तो देखो, मातृस्तनोंका दूध मुखमें ज्यों–का–त्यों लिये ये निस्तब्ध खड़े हैं। दूधको कण्ठके नीचे उतारना भूल गये हैं। क्यों न हो ! इन गायोंकी, बछड़ोंकी, आँखोंकी राह प्रियतम श्यामसुन्दर इनके हृदयमें जो जा पहुँचे हैं, उनके आलिंगनका सुख इन्हें प्राप्त हो रहा है। देखो, बहिन ! इनकी आँखोंमें आँसू छल–छल कर रहे हैं।

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयःकवला स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः।।
(श्रीमद्भा० १०। २१। १३)

(६)

आम्रकी सुशीतल छायामें स्फटिकनिर्मित वेदीपर पूर्वाभिमुख बैठे श्यामसुन्दर कुछ सोच रहे हैं। घुँघराली कुन्तलराशि कंधोंपर झूल रही है। कुछ क्षण वंशीके छिद्रोंका अंगुलियोंसे मृदु–मृदु स्पर्श करते हुए एक अभिनव–रागिनीका संचार कर रहे थे, जिसके मधुर संस्पर्शसे आम्रशाखा, आम्रपल्लवोंसे मधु झरने लगा था। पक्षी अपने कलरवको रोककर नीरव हो गये थे। आँखें बन्द किये वंशीनादका पीयूष पानकर रहे थे। पर हठात् व्रजराजनन्दन रुक–से गये थे, अन्यमनस्क–से होकर कुछ विचारने लगे। मानो अपने निराविल प्रेमानन्दके दानमें आत्मविस्मृत हुए व्रजराजनन्दनके सामने उनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिने भावी कार्यक्रमका चित्रपट ला रक्खा——

'देव ! उधर भी दृष्टि हो, कल होनेवाले इन्द्रबागकी तैयारी प्रारम्भ होने जा रही है। अब इन्द्रका गर्वहरण आवश्यक है। उनपर कृपा करनी ही है।' इसी विचारमें श्यामसुन्दर संलग्न हो गये। इधर सचमुच उसी समय नन्दरायकी आज्ञासे नगारे बज उठे तथा सबको इन्द्रयागके प्रबन्धके लिये आदेश सुना दिया गया।

श्यामसुन्दर उठ खड़े हुए। उनके अरुणिम अधरोंपर मन्द–मन्द मुसकान थी। एक बार गिरिराजकी ओर अपनी दृष्टि डालकर वे गोशालाकी ओर चल पड़े। नन्दरानी अपने लालको ढूँढ़ती फिर रही थीं, गोशालाकी ओर जाते हुए व्रजराजनन्दनको देखकर वात्सल्यभरे स्वरमें पुकारने लगीं——'मेरे नीलमणि ! ओ नीलमणि !'

नीलमणि रुक गये। माँने आकर उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया, फिर मुखचुम्बन किया और सिर सूँघने लगीं। कुछ क्षणों बाद गद्गद कण्ठसे बोलीं——'नीलमणि ! बेटा ! आज दीपावली है, मैं दीपोंको थालमें सजाने जा रही हूँ; तू बाबासे आज्ञा लेकर दीप जला दे।'

कहत यशोदा सुनि मनमोहन अपने तात कि अग्या लेहु।
बारौ दीपक बहुत लाड़िले करि उजियारो अपनो गेहु।।

पर नीलमणिके तो प्राण मानो गायोंमें बस रहे थे। नीलमणिने माके आँचलसे अपना मुख पोंछते हुए कहा——

हँस ब्रजनाथ कहत माता सों धौरी धेनु सिंगारौ जाय।
परमानंददासकौ ठाकुर जेहि भावत हैं निसिदिन गाय।।

आनन्दमें निमग्न मा तो दीप सजाने घरकी ओर, और प्रेमवितरणमें प्रमत्त व्रजराजनन्दन गाओंको सजाने खिरककी ओर चल पड़े। गायोंका श्रृंगार हुआ—

स्याम खरिक के द्वार करावत गायन कौ सिंगार।
नाना भाँति सींग मंडित किए ग्रीवा मैले हार।।
घंटा कंठ मोतिन की पटियाँ पीठिन को आछे औछार।
किंकिनि नूपुर चरन बिराजत बाजत बाजत चलत सुढार।।

सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहे थे। संध्याकालीन अरुण रश्मियोंसे गायोंके आभूषण चम–चम करने लगे; ब्रजेन्द्रनन्दन बालोचित प्रसन्नतासे भरते जा रहे थे। धौरी, धूमरी, कजरी, पीरी आदिकी शोभा ही मानो इस समय उनके हृदयकी सबसे प्यारी चीज थी। नन्दरानी कुछ देर दीपक सजातीं, तथा फिर दासीको सौंपकर अपने नीलमणिका गोश्रृंगार देखने खिरककी ओर आ जाती; फिर दीपक सजाने जातीं, फिर लौट आतीं। अन्य व्रजांगनाएँ अपने–अपने प्रासादके गवाक्षरन्ध्रोंसे नन्दनन्दनकी यह लीला देख रही हैं। उनके घरमें दीपावलीका उत्सव है, दीप सजाना परमावश्यक है; पर दीपककी थाली उनके हाथोंमें ही पड़ी रह गयी, प्रस्तरप्रतिमा–सी निश्चल खड़ी रहकर वे श्यामसुन्दरको देखती ही रह गयीं। कब सध्या हुई, यह भी कितनोंने नहीं जाना; उनके नेत्रोंके सामने तो श्यामसुन्दर गायोंका श्रृंगार ही कर रहे थे। अभी भी उजेला ही था। अस्तु,

संध्या होते ही दीपोंकी पंक्तियोंसे सारा व्रज जगमग हो उठा। व्रजांगनाओंने सुन्दर श्रृंगार किया, वे स्वर्ण–थालोंमें दीपक सजाकर नन्द गेहमें आयीं। ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण रससारस्वरूपा वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी भी सखियोंके साथ पधारीं—

गोपीजन जूथ सँग जोरी कुँअर किशोरि, साज सिंगार उर उदित प्रेमावली।
कर कनक थाल भर दीप संजोय सब चलीं गृहनंदके द्वार संझावली।।

नन्दरानीने वृषभानुनन्दिनीको हृदयसे लगा लिया। कपोलोंका चुम्बन करती हुई नन्दरानीने कहा—लाडिली ! विधाताने तुझको एवं मेरे नीलमणिको समान कौशलसे रचा है; तुझे देखते ही मुझे नीलमणिकी स्मृति हो आती है। सच, बेटी ! तेरा एवं नीलमणिका मुख सर्वथा एक जैसा है, तू तो मेरी ही

लाडिली है; नीलमणिकी तरह तुझे देखते ही मेरा हृदय शीतल हो जाता है।

न सुतासि कीर्तिदायाः किन्तु ममैवेति तथ्यमाख्यामि।
प्राणिमि वीक्ष्य मुखं ते कृष्णस्येवेति किं त्रपसे।।

(उज्ज्वलनीलमणि)

आज वृषभानुनन्दिनीके स्पर्शसे देखते–देखते मैया यशोदाकी एक विचित्र दशा हो गयी। उन्हें दीखता था, मानो लाडिलीके अणु–अणुमें मेरा नीलमणि भरा है, उन्हें अनुभूति हो रही थी कि नीलमणिको ही बाहुपाशमें लेकर बैठी हूँ। मैयाकी आँखोंमें अश्रुधारा बह चली, और उससे लाडिलीका सिर भीगने लगा। अभिनन्दपत्नीकी चेष्टासे कहीं जाकर मैयाको बाह्यज्ञान हुआ; मैया निर्णय कर सकीं कि यह कीर्तिदा रानीकी लाडिली राधा है, नीलमणि तो गोशालाकी ओर गया है।

मैयाने बहुत–से मेवे मँगवाये; लाडिलीका आँचल भरने लगीं। आँचल भर जानेपर बहुत–से मिष्टान्न मँगवाये; पासमें ही श्रीकृष्णका पीताम्बर पड़ा था। नीलमणिके लिये प्रतिदिन मैया नूतन पीताम्बर निकालती थीं, कभी–कभी एक ही दिनमें दो–तीन बार पीताम्बर बदला जाता था। नीलमणि दो घड़ी ओढ़कर फेंक देते थे। मैया नया निकालकर पुनः कंधोंपर डालती थी। आज कुछ ही देर पहले पीताम्बर कंधोंपरसे फेंककर नीलमणि भागे थे, मैयाने नया पीताम्बर दासीके हाथ ओढ़ाने भेजा था। वही पहला पीताम्बर वहाँ पड़ा था; मैयाने उसीमें विविध मिष्ठान्न बाँधकर लाडिलीकी अञ्जुलिमें रख दिया। फिर एक मणिजटित मुद्रिका मँगाकर कहा—'लाडिली ! मैंने अपने नीलमणिके लिये यह मुद्रिका बनवायी थी, आज मैंने उसे पहनाया था; पर सम्भवतः कुछ बड़ी बन गयी हैं, उसने कुछ ही देर बाद निकालकर फेंक दिया। तेरी अँगुली तो देखूँ बेटी ?' यह कहकर लाडिलीकी अनामिकामें मैयाने मुद्रिका डाल दी। मुद्रिका ठीक आ गयी, मानो लाडिलीके नापकी ही बनी हो। मैयाके आनन्दका पार नहीं; पर लाडिलीके सारे अंगोंमें कम्पन हो रहा है, प्रस्वेद–कण ललाट एवं कपोलोंपर झल–झल कर रहे हैं।

यशोदा मैया लाडिलीके दाहिने कंधेपर हाथ रक्खे, नीलमणिको ढूँढ़ने चलीं। नीलमणि खिरकके द्वारपर प्रज्वलित दीपोंकी पंक्ति सजा रहे

थे। गायें एवं बछड़े हुमड़–हुमड़कर द्वारके पास आ रहे थे; ग्वाले बहुत चेष्टा करते, पर वे गायें एक नहीं सुन रहीं हैं। वे तो अपने प्राणधन श्यामसुन्दरका दीपदान देखने आयी हैं और उनका आवाहन पाकर आयी हैं; भला, किसीके रोकनेसे वे कैसे रुकतीं। अतः द्वारके पास गायोंकी अपार भीड़ एकत्र हो गयी। आश्चर्य यह था कि भीतर इतनी उछल–कूद करनेपर भी द्वारके पास आयीं तो वे शान्त हो गयीं; दीप–पंक्तियोंको किसी गाय या बछड़ेने नष्ट नहीं किया।

मैयाने पुकारा––नीलमणि ! और नीलमणिने भी सिर घुमाकर देखा। नीलमणिके मुखारविन्दसे अनन्त असीम सौन्दर्य स्रोत झर रहा है। मैयाने एक बार नीलमणिकी ओर देखा, फिर लाडिलीकी ओर; फिर आँखें मूँद लीं। नीलमणिके नेत्र भी अपने–आप बंद हो गये; लाडिलीकी आँखें भी न जाने कब बंद हो गयी थीं। मैयाके पीछे–पीछे यूथ–की–यूथ व्रजांगनाएँ दौड़ी आयी हैं, सभी अपलक नेत्रोंसे यह सुन्दर दृश्य देख रही हैं। पर गायें जोर–जोरसे हम्बारव करने लगीं।

कुछ क्षण बाद मैया, लाडिली एवं व्रजांगनाओंको व्रजराजनन्दनने घूम–घूमकर गायोंका श्रृंगार दिखाया। व्रजांगनाएँ मन–ही–मन गायोंके भाग्यकी सराहना कर रही हैं। गायोंका श्रृंगार देखने कुछ देरके लिये स्वयं नन्दरायजी भी आये। पर नीलमणिकी मंगलकामनासे ही आज वे इन्द्रयागकी व्यवस्थामें संलग्न हैं; इसलिये कुछ क्षण ही ठहरकर, नीलमणिको हृदयसे लगाकर, सिर सूँघकर लौट गये। व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दर अपने पिताको लौटते देखकर कुछ सोचते हुए–से मुसकराने लगे।

अतिशय उमंगसे व्रजगोपोंने दीपावलीका उत्सव मनाया। आज समस्त व्रजमें जागरण है, सर्वत्र बाजे बज रहे हैं। पर व्रजरानी अपने नीलमणिको दुग्धधौत उज्ज्वल सुकोमलतम शय्यापर लिटाकर सुलानेकी चेष्टा कर रही हैं। नीलमणि आज ७ वर्ष २ महीने ७ दिनके थे, पर वात्सल्यरससाररूपा व्रजरानीके लिये दुधमुँहे शिशु–जैसे ही थे। प्रतिदिनकी तरह मैया आज भी कहानी सुनाकर, गीत गाकर, थपकी देकर सुलानेका प्रयास कर रही हैं; पर श्यामसुन्दरकी आँखोंमें आज नींद नहीं। रात्रि डेढ़ पहरसे अधिक बीत चुकी है। नन्दभवनके तोरणद्वारके पास वन्दिजन गा रहे हैं––

जयति व्रजपुर सकल खोरि गोकुल अखिल

तरनितनया निकट दिब्य दीपावली।
जयति नवकुंजबर द्रुम लता पत्र प्रति
मानो फूलीं नवल कनक चंपावली।।
जयति गोबिंद गोबृंद चित्रिच करे,
मुदित उमड़ी फिरै ग्वाल–गोपावली।
जयति ब्रज ईस के चरित लख थकित सिव,
मोहे बिधि, लज्जित सुरलोक–भूपावली।।

जब रात्रि एक पहर अवशिष्ट रही, तब कहीं व्रजराजनन्दन सोये। फिर भी बीच–बीचमें चौंक–से पड़ते थे, मानो कुछ स्वप्न देख रहे हों। नन्दरानी चिन्तित थीं, कहीं मेरे नीलमणिको किसीकी नजर तो नहीं लग गयी। मैया दृष्टिदोषनिवारणके उद्देश्यसे धौरी गायको लानेके लिये कहने गयीं। व्रजराजनन्दन स्वप्नावेशमें बोल रहे थे—'लाडिली ! मेरी धौरीका श्रृंगार देखो।' उसी समय धौरी शयनागारमें पहुँची। माताने धौरीकी पूँछका अपने नीलमणिके अंगोंसे स्पर्श कराया, फिर उसे अपने लालके चारों ओर तीन बार घुमाया। धौरी प्रेममें विह्वल–सी हुई स्तब्ध–शान्त खड़ी रहकर यशोदाके नीलमणिकी शोभा निहार रही है और श्यामसुन्दर स्वप्नमें ही कह रहे हैं—'अहा ! आज मेरी धौरी कितनी सुन्दर दीखती है।'

(७)

कार्तिक शुक्ला प्रतिप्रदाका प्रभात है। स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिने आज वृन्दावनके रंगमञ्चको एक नये साजसे सजा दिया तथा सर्वथा अभूतपूर्व दृश्य प्रारम्भ हो हुआ। शारदीय मन्द -समीरके झोंकोंसे तरुकिसलय कम्पित हो रहे हैं, तरुशाखाओंपर बैठे हुए पक्षियोंके मधुर कलरवसे वन निनादित हो रहा है। मानो वनकी अधिष्ठात्री वृन्दादेवी किसलय–संचालन तथा पक्षीकलरवके मिससे नृत्य करती हुई गा रही हैं, नये दृश्यका मंगलाचरण कर रही हैं। अचानक पट–परिवर्तन हुआ और दृश्य सामने आ गया।

स्तूपाकार यज्ञ–सम्भारके निकट खेलते हुए राम–श्याम दोनों आ पहुँचे। चपल नन्दनन्दन एवं बलरामने कुछ वस्तुएँ उठाकर देखना चाहा कि ये क्या हैं। पर जननीने हाथ बढ़ाकर दोनोंको पकड़ लिया और बोलीं—'मेरे लाल ! आज यज्ञ है, यह देवान्न है। तेरे बाबा एवं ब्राह्मण इस

अन्नसे यज्ञ करेंगे। तू खेलकर आ रहा है, तुझे इनका स्पर्श नहीं करना चाहिये।' व्रजराजनन्दन स्थिर खड़े होकर आश्चर्यचकित नयनोंसे द्रव्यसंभारकी ओर देखने लगे। पर अब व्रजराजके लिये द्रव्यसम्भारमें मनोयोग देना कठिन हो गया। प्राणोंमें एक विद्युत–सी दौड़ उठी——एक बार अपने लालको हृदय लगाकर उसे प्यार कर लूँ, आह कैसी भोली चितवनसे यह मेरी ओर देख रहा है !

नन्दराय मानो खिंचे हुए–से द्रव्यस्तूपोंके बीचसे निकल आये। निकट आकर राम–श्यामको गोद लेकर उन्होंने छातीसे लगा लिया। नन्दरायके बाहुपाशोंमें बँधे दोनों भाइयोंके नेत्र खिल उठे। एक क्षणके लिये बंकिम दृष्टिसे परस्पर दोनों भाइयोंने एक दूसरेको देखा, मानो कुछ संकेत–सा कर रहे हों। फिर दूसरे ही क्षण अनन्त मधुधाराकी वर्षा–सी करते हुए व्रजराजनन्दनने पूछा——'बाबा ! आज क्या है, किसका यज्ञ है, यज्ञ कैसे होता है, उसका क्या फल होता है ? तुम्हें तो किसी बातकी त्रुटि नहीं, तुम यज्ञ किसलिये करते हो ?' एक साथ ही नन्दके प्राणधनने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी——

कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः।
किं फलं कस्य चोदृशः केन वा साध्यते मखः।।

(श्रीमद्भा० १०। २४। ३)

नन्दरायने मन–ही–मन एक बार इन्द्रको नमस्कार किया। फिर, 'मेरे लाल ! यह वर्षाधिदेव भगवान् इन्द्रका यज्ञ है।' यह कहकर वे अपने प्राणधनको यज्ञकी कर्तव्यता बताने लगे। व्रजराजनन्दन दोनों हाथोंसे अपने बाबाके बायें कंधेको पकड़े हुए गोदमें चढ़े–चढ़े ही सुन रहे थे। नन्दारायने बात समाप्त ही की थी कि चटपट व्रजराजनन्दन बोल उठे——'बाबा ! रात मैंने एक स्वप्न देखा है——

आज एक सपनें कोउ आयो। संख चक्र भुज चारि बनायो।।
मोसों यह कहि कहि समुझायो। यह पूजा किन्ह तुम्हहि सिखायो।।
सूर स्याम कहि प्रगट सुनायो। गिरि गोबर्द्धन देव बतायो।।

* * *

यह तब कहन लगे दिवराई। इंद्रहि पूजे कौन बड़ाई।।
कोटि इंद्र हम छन में मारैं। छन ही में पुनि कोटि सँवारैं।।

जाके पूजें फल तुम पावहु। ता देवहि तुम भोग लगावहु।।
तुम आगे वह भोजन खैहै। मुख माँगे फल तुमको दैहै।।

व्रजराजनन्दका स्वप्न सुनकर सभी गोप चकित हो उठे। सभी अपना–अपना अनुमान लगाने लगे। हठात् श्यामसुन्दरका मुख एक अनिर्वचनीय तेजसे उद्दीप्त हो उठा, उनके मुखसे अनर्गल शास्त्र–वचन निकलने लगे; सबका सारांश था—इन्द्रयागके स्थानपर गो–यज्ञ, ब्राह्मण–यज्ञ, गोवर्द्धन–यज्ञ करो ! नीलमणिको इस प्रकार परम विद्वान्‌की तरह तर्कसमन्वित युक्तियोंसे इन्द्रयागका खण्डन करते देखकर सब–के–सब आश्चर्यमें पड़ गये। सन्नन्दने अनुभव किया—'एक नील तेजःपुञ्ज यशोदाके नीलमणिके चारों ओर छिटका हुआ है।' अतः परस्परके परामर्शसे यह निष्कर्ष निकला कि साक्षात् आदिपुरुष नारायणने ही नीलमणिके मुखसे ऐसी आज्ञा दी है। जिस नारायणने अबतक व्रजके प्राणधन नीलमणिकी अनेक विपत्तियोंसे रक्षा की, उनकी आज्ञा ही सर्वमान्य है।' इसी निश्चयके अनुसार उसी क्षण इन्द्रयागका प्रयत्न गोवर्द्धनयागके रूपमें परिणत हो गया। गिरिराजके चरणतलमें समस्त व्रज एकत्र होने लगा। दो घड़ियोंमें ही पर्वतराजका चरणप्रान्त अनन्त गो–गोप एवं गोपांगनाओंसे परिपूर्ण हो गया।

यथासमय स्वस्त्ययनपूर्वक गिरिराजकी विधिवत् पूजा आरम्भ हुई। अन्न, व्यञ्जन आदि स्तूपाकार सजा दिये गये। व्रजराजनन्दनके परामर्शसे सभी गोप एकचित्त होकर प्रत्यक्ष प्रकट होनेकी आशासे गिरिराजकी उपासनामें—

बिनती करत सकल अहीर।
कलस भरि भरि ग्वाल लै लै सिखर डारत छीर।।
चल्यो बहि चहुँ पास ते पय सुरसरी जल ढारि।
बसन भूषन लै चढ़ाए भीर अति नर–नारि।।
मूँदि लोचन भोग अरप्यो प्रेम सों रुचि भारि।
सबनि देख्यो प्रकट मूरति सहस भुजा पसारि।।
रुचि सहित गिरि सबनि आगे करनि लै लै खाय।
नंदसुत महिमा अगोचर सूर क्यों कर गाय।।

गिरिराजने सचमुच सबके भोगको प्रत्यक्ष प्रकट होकर स्वीकार किया, सबका मनोरथ पूर्ण किया। मेघगम्भीर शब्दोंमें नन्दराय और नन्दरानीसे गिरिराजने

वर माँगनेका आदेश दिया। श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए नन्दरायने कहा—

कहत नंद सब तुमही दीनो, माँगत हौं हरि की कुसलाई।

और नन्दरानी बोलीं—

सदा तुम्हारी सेवा करिहौं, और देव नहीं करौं पुजाई।
सूर स्यामको नीके राखौ कहति महरि ये हलधर भाई।।

गिरिराज 'एवमस्तु' कहकर बोले—

और कछू माँगहु नँद मोसों।
जो चाहौ सो देहुँ तुरत ही कहत सबै गोपन सों।।
बल मोहन दोऊ सुत तेरे कुसल सदा ये रैहें।
बाढ़ैं सुरभी बच्छ घनेरै चर तृन बहुत अघैहें।।
इन के कहें करी मम पूजा; अब तुम सब घर जाहु।
भोग प्रसाद लेहु कछु मेरो, गोप सबै मिलि खाहु।।

श्रीगोवर्द्धनका प्रत्यक्ष दर्शन गोपोंके लिये असाधारण बात हुई; सबको दृढ़ विश्वास हो गया कि वास्तवमें श्रीआदिपुरुष नारायणकी इच्छा व्रजराजनन्दनमें अभिव्यक्त हुई थी। लीलाशक्तिकी इच्छासे गोप यह तो नहीं समझ पाये कि यशोदाके नीलमणि ही स्वयं आदिपुरुष पुरुषोत्तम भगवान् हैं। इस ज्ञानकी आवश्यकता भी नहीं थी; क्योंकि वैसा होनेपर तो मधुर लीलारस–सिन्धुमें निमग्न व्रजगोपोंकी रसानुभूति विच्छिन्न हो जाती। जो हो, अब गोवर्द्धनयागके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्रिय गायोंका सत्कार आरम्भ हुआ—

ततश्च सर्वोऽपि विस्रब्धः परमप्रेमभाजनगोसभाजनमारब्धवान्।

(श्रीगोपालचम्पू)

गायोंका श्रृंगार तो सात पहर पूर्वसे होने लगा था—विशेषतः व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दरकी गायोंकी वेश–भूषा तो आज देखने ही योग्य थी। सबके सींग सोनेसे मढ़ दिये गये थे; इन स्वर्णिम श्रृंगोंसे उनका सौन्दर्य शतगुणित हो गया था; उज्ज्वल रजतपत्रोंसे मढ़े हुए खुर चमक रहे थे; प्रत्येकके गलेमें मणियुक्तानिर्मित हार लटक रहे थे; सबकौ किंकिणी पहना दी गयी थी; वे घूम रही थीं तथा किंकिणीका झन–झन शब्द गिरिराजके वन–प्रान्तमें गूँज रहा था—

स्वर्णनिर्मितविषाणरूपा रूप्यसंवृतखुरा धृतहाराः।

किंकिणीप्रकरझंकृतियुक्ता नैचिकीनिचितयो रुचिमाञ्चन्।।

(श्रीगोपालचम्पू)

इन गायोंकी भी पूजा की गयी। सुकोमल तृणांकुर एवं विविध पक्वान्न भोजनके लिये दिये गये; इनके बछड़े आज इनके पास ही छोड़ दिये गये। उनके आनन्दकी सीमा न थी। भोजन करती हुई ये गायें स्नेहवश क्षण–क्षणमें श्रीकृष्णकी ओर सिर उठा–उठाकर देख लेती थीं। श्रीकृष्ण दीख जाते तो पुनः चरने लग जातीं। पर यदि नहीं दीखते तो ग्रास लेना स्थगित कर देतीं। जैसे किसी प्रियवियोगमें उपरामता आती है, भोगोंकी ओर दृष्टि नहीं जाती, वैसे ही श्रीकृष्ण ज्यों ही आँखोंसे ओझल हुए कि ये गायें भोजन आदि सब छोड़कर व्याकुल हो जातीं तथा हम्बारवके रूपमें आर्तनाद करने लगतीं––

लब्धार्चाश्चारुवेषैः शबलितवपुषः प्राप्तभोगावलीका
वत्सैः पृक्ताः प्रमोदं पृथुतरमभजन् धेनवः सत्यमेव।
किन्तु श्रीकृष्णदृष्टिप्रमदवलयिता यर्हि तर्ह्येव नो चेत
केचिद्यद्वद्व्रजन्ते मधुरविधुरतः संस्कृतं षाडवादि।।

(श्रीगोपालचम्पू)

कुछ गोपोंकी गायोंने उनके हाथसे चारा–दाना नहीं लिया, तब वे व्रजराजनन्दनके पास दौड़े आये और बोले––बेटा नीलमणि ! इस चारेको तनिक तू अपने हाथसे छू दे, तेरे हस्तकमलोंकी सुगन्धका संधान पाकर वे गायें अतिशय प्रीतियुक्त होकर चारा खाने लग जाती हैं–––

गोपा ऊचुः कृष्ण गोग्रासमेतं हस्ताम्भोजस्पृष्टमीषत्कुरुष्व।
तत्सौगन्ध्यप्राप्तसंधानमेनं गावः सुष्ठुप्रीतितः स्वादयन्ते।।

(श्रीगोपालचम्पू)

इस प्रकार गायोंकी तृप्ति सम्पादन करनेके बाद गायोंका कौतुक आरम्भ हुआ। अनादि परम्परासे नन्दव्रजमें यह गो–सम्भ्रमका कौतुक होता आया है। इस वर्ष भी आरम्भ हुआ। व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दर एवं अग्रज बलरामका संकेत पाकर उनके सखा गायोंको विविध चेष्टाओंसे बिझुका देते और गायें पूँछ उठाकर कूदती–फाँदती हुई नृत्य करने लगतीं––

कूकें देत जात कानन पर ऊँची टेरन नाम सुनावत।
सुंदर पीत पिछोरी ले ले मुख पर फेर सबन बिझुकावत।।

काहू कौ बछरा काहू को ले ले आगे आन दिखावत।
पूँछ उठाय सूधि है भाजत आप हँसत और सबन हँसावत।।
फिर चुचुकार सूधि कर भाजत बछरन अपने हाथ मिसावत।
श्रीबिट्ठल गिरधिर बलदाऊ इहि बिधि अपनी गाय खिलावत।।

एक ओर राजा वृषभानु गायोंको खेला रहे थे, दूसरी ओर अन्य गोपोंकी मण्डली थी; बीचमें थे यशोदाके नीलमणि। उमंगमें भरकर अब नीलमणि स्वयं गायोंको बिझुका रहे थे—

आप गुपाल कूक मारत हैं गोसुत कों भर कोरी।
धों धों करत लकुट कर लीने मुख पर फेर पिछोरी।।

धौरी प्रतीक्षामें थी कि कब मेरे प्राणधन श्यामसुन्दर आकर मुझे खेलाते हैं; इतनेमें श्यामसुन्दर आ गये, धौरीकी उत्कण्ठाका क्या कहना—

खेलन कों धौरी अकुलानी।
ठाढ़ मेल सनमुख आतुर है नंदनँदन की सुन मृदु बानी।।

धौरी आनन्दातिरेकसे नाच उठी—

बड़रे गोप चकित भए देखत ऐसी कबहुँ न सुनी कहानी।
नाचत गाय भई नौतम ब्रज बरसों बरस कुसल यह जानी।।

धौरीको खेलत देखकर मानो धूमरिको ईर्ष्या हुई; उसने निश्चय कर लिया कि प्रथम स्थान आजके खेलमें मेरा होगा। हुंकार करती हुई श्यामसुन्दरके सामने आयी; मानो प्रणयरोषसे भरकर श्यामसुन्दरको उपालम्भ दे रही थी कि आज मेरी पुचकारमें इतना विलम्ब क्यों। व्रजराज-नन्दन हँस पड़े; धूमरिको खेलाने लगे। सचमुच धूमरिने सबको मात कर दिया—

सब गायन में धूमरि खेली।
स्रवन पूँछ उचकाय सूधि है ग्वाल भगावत फिरत अकेली।।

धूमरिको सँभालना कठिन हो गया। किसीका साहस नहीं था कि धूमरिको स्पर्श करे। अतः व्रजराजनन्दन हँसते हुए आगे बढ़े—

पकरि लई गोपाल आप ही कंठ बनावत सेली।
चुंबत मुख आँको भर भेटी टेर कहत लाओ गुर भेली।।

इस खेलमें आज सबने यह एक आश्चर्य अनुभव किया कि गायोंके समक्षसे जब श्रीकृष्ण हट जाते थे, तभी गायोंको अपने बछड़ोंकी स्मृति होती थी और बछड़ोंको दूर हटानेपर वे व्यग्र होतीं। अन्यथा श्रीकृष्णके सामने

रहनेपर तो वे मानो सर्वथा श्रीकृष्णमय ही हो जातीं, उन्हें और कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। यह उनकी प्रत्येक चेष्टासे स्पष्ट हो रहा था—

यदा मुदा याति हरिः परोक्षतां गवां तदा ता निजवत्सकृष्टितः।
व्यग्रीभवन्ति स्म यदा समक्षतां यात्येष यान्ति स्म तदा तदात्मताम्।।

(श्रीगोपालचम्पू)

समय अधिक हो गया था। गायें खेलमें उन्मत्त हो गयी थीं। नन्दकी आज्ञासे गोपोंने उन्हें एकत्र करनेकी अथक चेष्टा की, पर सब व्यर्थ। व्रजराज चिन्तित हो उठे। यशोदाके नीलमणिने पिताके चिन्तित मुखकी ओर देखा; फिर होठोंपर मुरली रखकर उसमें सुर भरने लगे। एक क्षणमें गोवर्द्धनका समस्त वनप्रान्तर मुरलीरवसे झंकृत हो उठा। व्रजांगनाओंके नेत्र बंद हो गये, सभी बाह्यज्ञानशून्य हो गयीं तथा अपार गोराशि जहाँ जैसे थी, स्थिर शान्त खड़ी हो गयीं—

गोवर्द्धनाचलमहस्य युतादियूथगोरोधनाय पशुपा न हि तत्र शेकुः।
फूत्कारकेलिकलया मुरली मुरारेरासीदलं यदसकौ गुणकोटिकल्पा।।

(श्रीगोपालचम्पू)

गोप इस बार जब गायोंको पकड़ने चले, तब प्रतीत हुआ मानो गायोंके मनमें मनःप्राण किसी दूसरे राज्यमें हैं, उनके शरीरको कोई कहीं भी खींच ले जाय। गोपोंने बिना परिश्रम गायोंको एकत्र कर लिया।

इसके बाद ब्राह्मणभोजन आदि अन्य समारोह सम्पन्न करके व्रजराजने गोवर्द्धनकी परिक्रमाका आदेश दिया। आगे–आगे गोपपंक्ति, उनके पीछे राम–श्याम, फिर ब्राह्मण, फिर नन्द–यशोदा आदि, उनके पीछे परिजन, फिर अन्य गुरुजनपत्नियाँ, फिर व्रजांगनाओंका यूथ, व्रजांगनाओंकी पीछे दासियाँ, उनके पीछे व्रजके अन्य प्रमुख व्यक्ति तथा अन्तमें अपार जनता—इस क्रमसे गिरिराजकी परिक्रमा प्रारम्भ हुई। व्रजांगनाओंके नेत्रोंमें तो प्रियतम श्यामसुन्दर छाये हुए थे। उन्हें पथ नहीं दीख रहा है, पथके स्थानपर प्राणधन श्यामसुन्दरकी लीला दीख रही है; उन्हींमें तन्मय हुई लीला गाती हुई वे चल रही हैं। परिक्रमा आरम्भ होकर समाप्त भी हो गयी, सभी व्रजकी ओर लौट रहे हैं; पर व्रजांगनाएँ उसी तरह स्वर–मे–स्वर मिलाकर लीला गाती हुई चल रही हैं—

गिरिपूजेयं विहिता केन ? अरचि शक्रपदमभयं येन।।

गिरिपूजेयं विहिता केन ? पूतनिका सा निहिता येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? तृणावर्ततनुदलनं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? यमलार्जुनतरुमुदकलि येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? वत्सवकासुरहननं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? व्योमाघासुरमरणं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? कालियदमनं कलितं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? खरप्रलम्बकशमनं येन।।
गिरिपूजेयं विहिता केन ? दवयुग्मं परिपीतं येन।।

(श्रीगोपालचम्पू)

'यह गोवर्द्धन–पूजा किसने की ? जिसने इन्द्रलोकको भयशून्य बनाया, जिसने उस पूतनाका वध किया, तृणावर्तका मर्दन किया, जोड़वाँ अर्जुनके वृक्षोंको जड़से उखाड़ दिया, व्योमासुर और अघासुरका वध किया, कालियनागका दमन किया, धेनकासुर एवं प्रलम्बासुरका विनाश किया और दो बार दावाग्निका पान किया, उसीने यह पूजा की है।'

(८)

अञ्जलि बाँधे देवराज खड़े हैं। कमलयोनि भी गम्भीर चिन्तामें निमग्न हैं। देवराजके मुखपर अतिशय क्लान्ति है। सारा गर्व चूर–चूर हो गया है। सोचा था––समस्त व्रजको क्षणभरमें बहा दूँगा, व्रजका चिह्नतक अवशिष्ट नहीं रहेगा; इस मर्त्य श्रीकृष्णके साथ नन्द, नन्दका परिवार, नन्दके अगणित बन्धु–बान्धव, असीम गोराशि––सभी जलके अतलतलमें सदाके लिये विलीन हो जायँगे। मेरे स्थानपर अपनी पूजा करानेवाला यह गोवर्द्धनपवर्त भी चूर्ण–विचूर्ण होकर अनन्त जलराशिके प्रवाहमें कहाँ–से–कहाँ बह जायगा। जगत् देखेगा, मेरी अवज्ञाका क्या परिणाम होता है। पर सुरराजका यह गर्व धूलिमें मिल गया। सांवर्तक मेघ श्रीहत होकर व्रजसे लौटे।

शुक्ला तृतीयाको वर्षा आरम्भ हुई थी। पहले सांवर्तकने भी सोचा था––सागरको उत्ताल तरंगोंकी–सी जलराशिमें बस, व्रज समाप्त होने जा रहा है। व्रजवासियोंके करुण नादका यह अन्तिम क्षण है। पर देखते–ही–देखते श्याम तमालकी–सी अंगकान्तिका एक बालक आया, मानो'खेलने जा रहा हो। इस तरहसे उसने सहज ही हाथ बढ़ाया और दूसरे ही क्षण विशाल गोवर्द्धनपर्वत भूमिसे विच्छिन्न होकर आकाशमें जा उठा। सांवर्तकोंने झाँककर देखा, उसके नीचे वही तमाल–श्यामल बालक खड़ा–खड़ा हँस रहा है।

उसकी एक भुजा ऊपरको उठी है, तथा उसकी कनिष्ठिकापर पर्वतराज छत्राकपुष्पकी तरह टिका है। बालक पुकार रहा है—'ओ बाबा, री मैया, री ग्वालिनो, यहाँ, इसके भीतर आओ; यह देखो, गिरिराज हमारे हाथके ऊपर उठ गये हैं। सभी इनके नीचे चले आओ। सभी गायोंको हाँक लाओ, डरो मत; गिरिराजने तुम्हारी रक्षाके लिये ही भूमिगर्त बना डाला है। जितने दिन वर्षा हो, इसमें सुखसे रहो। मेरे हाथसे पर्वतके गिरानेकी किञ्चत् भी आशंका मत करो।' बालकका आवाहन पाकर देखते–ही–देखते समस्त व्रजवासी, समस्त गोराशि, सम्पूर्ण व्रज ही उस गिरिगर्तमें जा घुसा; बाहर केवल निर्जन वनमात्र बच रहा, जिसपर मूसलाधार वृष्टि हो रही है। सांवर्तगण चाहते थे कि एक बार झाँककर देखें, गिरिगर्तके अन्तर्देशकी अवस्थाका परिचय प्राप्त करें। पर उनकी आँखोंके सामने एक अँधेरा–सा छा गया। उनके अंगोंसे अनवरत–संचारित विद्युत–रश्मि भी उन्हें प्रकाश न दे सकी। वे अब भी कुछ नहीं देख सके। हाँ, गिरिगर्तमें प्रविष्ट होते समय व्रजवासियोंका आनन्दकोलाहल उन्हें स्पष्ट सुन पड़ रहा था; व्रजवासी झाँककर भीतर देखते थे तथा आनन्दमें भरकर अपने साथियोंको उस विशाल गर्तका अनुभव सुनाते थे। वह ध्वनि उनके कानोंमें पड़ रही थी।

सुविन्यस्तनिः श्रेणिलब्धप्रवेशं मणिश्रेणिविद्योतमानप्रदेशम्।
गृहस्येव रत्नांगभित्तिप्रकारं तदूर्ध्व च तत्तुल्यशोभाप्रचारम्।।
सुखस्पर्शमण्याचितक्षोणिभागं समस्तावकाशादिसंधाविभागम्।
यथापेक्षविभ्राजितस्वच्छनीरं सुखाकारिघर्म्माञ्जिनीचैःसमीरम्।।
करे स्वस्य वामे तु वामे वसन्तं गिरि लीलयाऽऽस्पृश्य सन्तं हसन्तम्।
तदीयान्तरुद्यन्महाकुट्टिमस्थं हरिं हारिरूपादिभिः प्रागवस्थम्।।
दधद्वेणुमानम्रहस्तप्रधानं कदाचिन्मुदा सख्युरंसे दधानम्।।

(श्रीगोपालचम्पू)

'अहा ! गिरिराजके अन्तर्देशमें जानेके लिये सुन्दर सीढ़ियाँ निर्मित हैं, समस्त अन्तर्देशे मणिसमूहोंसें जगमग–जगमग कर रहा है; सुन्दर गृहके रत्नमय आँगन, भित्ति आदिके समान ही गिरिराजके आवासके रत्नमय आँगन एवं भित्तिकी रचना है; गृहके ऊर्ध्वभाग छत–प्रकोष्ठ आदि भी वैसी ही शोभाका प्रदर्शन कर रहे हैं; इसका तलदेश सुकोमल मणि संयुक्त है; सबको स्थान देनेके योग्य यथोचित विभाग बने हुए हैं; जितनी आवश्यकता

हो, उतनी मात्रामें यहाँ चम–चम करता हुआ स्वच्छ जल बह रहा है; सुखकर तनुतापहारी मन्द समीर प्रवाहित हो रहा है। ऐसे आवासवाले गिरिराजको व्रजराजनन्दन लीलासे अपने बायें हाथपर लिये, उसे किञ्चित्मात्र ही स्पर्श करते हुए, हँसते हुए अन्तर्देशकी एक विशाल वेदीपर खड़े हैं; उनका मनोहर रूप, परिधान आदि सब कुछ ज्यों–का–त्यों वैसा ही है; वयस भी वही है; उनका दक्षिण हस्तकमल नीचेकी ओर लटक रहा है, उसमें वे वंशी धारण किये हुए हैं; कभी प्रसन्न होकर दाहिने हाथको सखाके कंधेपर रख देते हैं।'

इसे सुनकर ही सांवर्तक मेघोंका सारा उत्साह टूट चुका था। पर उन्हें तो अपने स्वामीका आदेश पालन करना था; अतः वे अपनी सारी शक्ति लगाकर सात दिनोंतक अनवरत जलधारा बरसाते ही रहे। प्रतिक्षण उनकी शक्ति क्षीण हो रही थी; नवमीकी रात्रि आते–आते वे सर्वथा सामर्थ्यहीन हो गये, व्रजके क्षुद्र अंशका भी वे नाश नहीं कर सके। ऐरावतपर आसीन सुरराजका मुख म्लान हो गया। शक्ति समाप्त हो चुकी थी; मेघोंको निवारण करते हुए स्वर्ग लौट आये; किसीको मुख दिखानेकी इच्छा न होती थी। पर एक बड़ा लाभ हुआ––देवराजको। मदका आवरण हटते ही व्रजराजनन्दनका स्वरूप उनके हृदयके दर्पणमें चमक उठा––आह ! जिसे मैं 'मर्त्य कृष्ण' कह रहा था, वह ईश्वरोंका भी परम महेश्वर है; उसकी इच्छासे ही मैं सुरराज बना हुआ हूँ, वह चाहे तो मैं इसी क्षण नरक–कीट बन जाऊँ और नरक–कीट मेरे आसनको सुशोभित करे। सुरराज पश्चातापकी ज्वालामें जलने लगे। सुरगुरु बृहस्पतिका आश्रय लिया। बृहस्पतिके परामर्शसे वे पितामह ब्रह्माके पास आये। उनसे समस्त अपराध निवेदन कर इसका निदान पानेकी आशासे अञ्जलि बाँधे खड़े रहे।

कमलयोनिने सोच–विचारके उपरान्त परामर्श दिया––

गवां कण्डूयनं कुर्याद् गोग्रासं गोप्रदक्षिणाम्।
नित्यं गोषु प्रसन्नासु गोपालोऽपि प्रसीदतीति......।।
क्षमापनाय कातरस्त्वं तज्जातिमातरं सुरभीमेव भजस्व।

(श्रीगोपालचम्पू)

गोपालके भक्त गौतम आदि ऋषियोंके ये वचन हैं––'गायोंको खाज आनेपर उनकी खाज करनी चाहिये, गोग्रासका दान करना चाहिये,

गोप्रदक्षिणा करनी चाहिये। जिनपर गायें सदा प्रसन्न रहती हैं, उनपर गोपाल भी प्रसन्न होते हैं। सुरराज ! अपराध क्षमा करानेके लिये तुम व्याकुल हो; तुम्हारे लिये यही पथ है कि तुम गोजातिकी माता सुरभिका आश्रय ग्रहण करो।'

श्रीकृष्णकी अवज्ञा करनेवाले सुरराजको देखकर सुरभि खिन्न हो उठी। पर बारंबार अनुनय–विनय करनेपर ब्रह्माकी अनुमतिसे इन्द्रके साथ चल पड़ी। उस दिन कार्तिक शुक्ला एकादशी थी। पुण्य वृन्दावनकी भूमिपर आकर इन्द्रको साथ लिये सुरभि उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगी।

व्रजराजनन्दन वनमें गाय चराने आये। पुरन्दरके अन्तर्हृदयकी व्याकुलता व्रजराजनन्दनके रसमय निर्मल हृदयमें प्रतिबिम्बित हो गयी थी। उन्हें एकान्त अवसर देनेके लिये ही उन्होंने आज अग्रजको साथ नहीं लिया, सखाओंको भी किसी प्रसंगसे अलग भेज दिया। एकाकी गोवर्द्धनकी रत्नशिलापर विराजमान हैं। सुरराज आकर चरणोंमें दण्डवत् गिर पड़े। नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बह चली, वाणीसे अपने–आप स्तुति निकल पड़ी। स्तुति करते–करते व्रजेन्द्रनन्दनके हस्तारविन्दका मधुरातिमधुर स्पर्श प्राप्त हुआ; देवराज निहाल हो गये, निर्भय हो गये। सुरभि अन्तरिक्षमें छिपी हुई देख रही थी, ठीक उसी समय आ पहुँची। सुरभि प्रणाम करने जा रही थी; पर उसके पूर्व ही व्रजराजनन्दन अञ्जलि बाँधे हुए उठ खड़े हुए तथा बोले 'मा ! कैसे आयी ?' सुरभि बोली——

एते मदन्वया धन्या गोत्वं त्वां सेवितुं गताः।
अहं तु नेदृक्पुण्या यद्गोचरत्वं च नागता।।

(श्रीगोपालचम्पू)

'व्रजराजनन्दन ! ये मेरे वंशज धन्य हैं, जो तुम्हारी सेवाके लिये गौ बन गये। पर मैं ऐसी पुण्यवती नहीं थी, क्योंकि गौ होकर भी तुम्हारे नयनोंके सामने नहीं आयी।'

——कहते–कहते सुरभिके हृदयमें व्रजराजनन्दनका अनन्त असीम ऐश्वर्य जाग उठा, सुरभि स्तुति करने लगी——

'श्रीकृष्ण ! इन्द्रके कोपसे हमलोग सचमुच नष्ट ही हो चले थे, पर तुम लोकनाथने हमारी रक्षा की। तुम्हीं हमारे परमदेव हो; आजसे तुम्हीं गोवंश, ब्राह्मण एवं देवोंके अभ्युदयके लिये हमारे इन्द्र बनो——

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत।।
त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः।।

(श्रीमद्भा० १०। २७। १९–२०)

उत्तरोत्तर भावसे आविष्ट होकर सुरभिने फिर कहा—व्रजमहेन्द्रकुलचन्द्र ! तुम्हारे चरणस्पर्शसे यहाँके तीर्थ सार्थक हो गये। तुम्हारे दुग्धपानसे यहाँकी धन्य हो गयीं; पर स्वर्गीय गंगाका स्रोत एवं दूधसे भरे मेरे थन, दोनों व्यर्थ ही रहे। मेरे आराध्यदेव ! उनकी सार्थकताके लिये ही मेरे मनमें स्वर्मन्दाकिनीकी धारासे एवं अपने थनकी दुग्धधारासे तुम्हारे अभिषेककी लालसा जाग उठी है; आज्ञा दे दो, हमारे इन्द्र !'

व्रजराजनन्दनके अधरोंपर एक पवित्र मनोहर मुसकान खेलने लगी; यह मुसकान ही संकेत था—'यथेष्टमनुष्ठीयताम्', जैसी इच्छा हो वैसे करो। दूसरे ही क्षण देववाद्य बज उठे; गन्धर्व, अप्सरा, सुरांगनाएँ गान करती हुई नृत्य करने लगीं; ऋषि स्तोत्रपाठ करने लगे; ब्रह्मा–रुद्रकी जय–जय ध्वनिसे आकाश प्रकम्पित होने लगा; एक ओर उत्फुल्ल ऐरावत स्वर्मन्दाकिनी–जलसे पूरित घट अनवरत अपनी सूँड़ोंमें उठा–उठाकर देवराजके हाथोंमें देने लगा; दूसरी ओर सुरभि अपने थनोंसे दूध बरसाने लगी; जलधारा एवं दुग्धधारा एक ही साथ झर–झर करती हुई व्रजराजनन्दनपर गिरने लगी, उनका अभिषेक होने लगा।

अभिषेकके अनन्तर व्रजराजनन्दन 'गोविन्द' नामसे अभिहित हुए। आकाशसे देवताओंने पुष्प–वृष्टि की। अन्तमें पुष्पाञ्जलिके रूपमें इन्द्र, ब्रह्मा आदिने छत्र, चामर, विविध अलंकार, लीलाकमल आदि समर्पण किये। व्रजराजनन्दनके मुखपर वही मुसकान थी। हाँ, उनके सखा दूरसे देख रहे थे, आश्चर्यमें भरकर सोच रहे थे—यह क्या कौतुक है !

इन्द्रादि देवताओंने परिक्रमा कर विदा ली। सखा आये; देवार्पित छत्र, चामर, आभूषणोंसे खेलने लगे। परस्पर सबने श्रृंगार किया। संध्या होनेको आ रही थी; अतः सभी गायें बटोरकर घरकी ओर चल पड़े। श्रीदामा पूछ रहा था—दादा ! वे चार मुख, पाँच मुख, सहस्र आँखोंवाले कौन थे ? व्रजराजनन्दन हँसते जा रहे थे।

आकाशमें नृत्य, वाद्य, गीत सुनकर नन्द–यशोदा आदि सभी चकित हो गये थे। नन्दरानीने व्रजराजको अपने नीलमणिके पास भेजा; यशोदाके वात्सल्यपूर्ण हृदयमें क्षण–क्षणमें यह भय जाग उठता था—पता नहीं नीलमणिपर कोई विपत्ति तो नहीं आ रही है।

व्रजराजने आकर श्यामसुन्दरको हृदयसे लगा लिया। पूछा—बेटा ! आज आकाशमें बाजे क्यों बज रहे थे, कोई नयी बात हुई क्या ? श्यामसुन्दर मुसकुराकर चुप हो गये। नन्दरायने श्रीदामासे पूछा—'तू बता, बेटा ! आज क्या हुआ है ?' पर श्रीदामाने कहा—'बाबा, मैं गायें बटोरने दूर चला गया था, फिर पीछे आकर देखा तो ———।' बीचमें ही मधुमंगल बोल पड़ा—'व्रजराज ! आज बड़ा कौतुक हुआ। एक गाय आयी, मनुष्यकी तरह बहुत देरतक कन्हैयासे बात करती रही; एक हजार आँखोंवाला एक आदमी आया, उसने कन्हैयाको दण्डवत् प्रणाम किया; एक बहुत ही बड़ा उजला हाथी था, वह बार–बार घड़ोंमें जल भर–भरकर सूँड़से उसको दे रहा था, एक पाँच मुखोंका और एक चार मुखोंका—दो पुरुष और आये, वे कन्हैयाकी स्तुति गा रहे थे तथा सब मिलकर तुम्हारे नीलमणिपर जलकी धारा गिरा रहे थे—

गौरेका गिरमातनोदथ पुमानन्यःसहस्रेक्षणोऽनंसीत्
कोऽपि करी सितः स्वरुदकान्याहृत्य शश्वद्ददौ।
कौचित् पञ्चचतुर्मुखांगवलितौ स्तोत्रप्रथाञ्चक्रतु
स्ते चान्ये च महामहेन सिषिचुर्गोपेश ! पुत्रं तव।।

(श्रीगोपालचम्पू)

व्रजनरेश आश्चर्यमें डूबे हुए मधुमंगलकी बात सुन रहे हैं। मन–ही–मन सोच रहे हैं—मेरे नीलमणि मेरे कुलदेव नारायणकी अपार कृपा है; वे नारायण ही समय–समयपर मेरे लालमें आविष्ट हो जाते हैं, देवताओंने उन्हींकी अभ्यर्थना की होगी। सोचते हुए नन्दराय नीलमणिके मधुर–मनोहर मुखकी ओर देखने लगे। नीलमणिने अमृतमय कण्ठसे कहा—'बाबा, घर चलो, मैया चिन्ता करती होगी।' इन शब्दोंमें एक विलक्षण मोहिनी शक्ति थी, व्रजराज देवताओंकी बात सर्वथा भूल गये। वात्सल्य–रस–सागरमें डूबते–उतराते हुए नीलमणिका हाथ पकड़े व्रजकी ओर चल पड़े; अपार गोराशि व्रजराजनन्दनको चारों ओरसे घेरे चल रही

थी। व्रजके वन्दिजन गा रहे थे—

आगे गाय पीछे गाय, इत गाय उत गाय,
गोबिंद कों गायन में बसिबोई भावै।
गायन के संग धावै, गायन में सचु पावै,
गायन की खुररेनु अंग लपटावै।।
गायन सों ब्रज छायो, बैकुंठ बिसरायो,
गायन के हेत कर गिरि लै उठावै।
छीतस्वामी गिरधारी बिट्ठलेसबपुधारी
ग्वारिया को भै घरें गायन में आवै।।

(६)

जनसाधारणकी दृष्टिमें व्रज अब सूना हो गया। व्रजराजनन्दन मथुरा चले गये। अपने पीछे वे ग्यारह वर्षकी बड़ी ही मधुर सुधामयी स्मृति छोड़ गये हैं। यह स्मृति व्रजवासियोंके हृत्पटपर अंकित है, जिसमें उलझे हुए उनके प्राण निकल नहीं पा रहे हैं, अन्यथा उड़कर प्राणाधार व्रजराजनन्दनके पास कभीके चले गये होते !

उन व्रजवासियोंके नेत्र श्रीकृष्णलीलामय हो चुके हैं। निरन्तर उनकी आँखोंके सामने एक लीलाचक्र घूमता रहता है। वे अनुभव करते रहते हैं,—'नन्दप्रांगणमें हरिद्रामिश्रित दधिका प्रवाह बह रहा है; यशोदाकी गोदमें एक महामरकत द्युति मनोहर शिशु है। शिशु तो निष्प्राण पूतनाके वक्षःस्थलपर खेल रहा है। यशोदा अपने प्राणधन नीलमणिको पालने झुला रही हैं। गोपशिशु कोलाहल कर रहे हैं। नीलमणिने अपने नन्हे-नन्हे चरणोंको उछाला। उसीसे विशाल शकट उलट गया है। हमने आँखोंसे यह स्वयं देखा है। तृणावर्तके अंग चूर्ण-विचूर्ण होकर शिलापर पड़े हैं। नीलमणि उसपर पड़ा हुआ किलक रहा है। नीलमणि चलना सीख गया। अरे ! यह तो गोवत्सोंसे तनिक भी नहीं डरता। आज दिनभर उनकी पूँछें पकड़े घूमता रहा है। यशोदाका चञ्चल नीलमणि छिपकर नवनीत खाने आया है। स्वयं खाकर बंदरोंको वितरण कर रहा है। यह देखो, दुहनेके पहले ही बछड़ोंको खोलकर उसने सारा दूध पिला दिया। श्रीदाम मैयासे यह रहा है—मैया ! नीलमणिने मिट्टी खायी है। मैया भाँड़ फोड़नेके अपराधमें नीलमणिको ऊखलसे बाँध रही है। हमलोग सभी वृन्दावन चल रहे हैं।

नीलमणि भी छकड़ेपर चढ़ी हुई यशोदा मैयाकी गोदमें बैठा चल रहा है। इन बछड़ोंको चरानेके लिये आज नीलमणि सज–धजकर वन जा रहा है। व्रजांगनाएँ पूछ रही हैं——बेटा सुबल ! बता तो, नीलमणिने वत्सासुरको कैसे उठाकर पटका। मेरे नीलमणि ! बकासुरको चीर डालते हुए तुझे भय नहीं लगा ? भला, इन सुकोमल हाथोंसे तूने व्योमासुरका कचूमर कैसे निकाला ? यशोदा कह रही हैं——'अघासुरसे रक्षा नारायणने ही की, भला उसके मुखमें जाकर नीलमणि जीवित निकल आवे, यह कभी सम्भव था ?' नीलमणि कलियके फनपर थिरक–थिरककर नाच रहा है। आकाशमें बाजे बज रहे हैं, देवता फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं। गोचारण करते हुए नीलमणि वनमें विविध खेल खेल रहा है। मधुमंगल कह रहा है——'री गोपियो ! सुनो, कन्हैयाके साथ हम सब तालफल खाने बैठे ही थे कि धेनकासुर आया। दाऊ दादाने उसे पतंगकी तरह उछाला और आकाशमें घुमाकर मार डाला।' श्रीदाम कह रहा है——'गोपियों ! सुनो, हमारी गायें अलग चर रही थीं, कन्हैया खेलमें हारकर मुझे पीठपर उठाये चल रहा था, इतनेमें बालक बना हुआ प्रलम्बासुर दाऊ दादाको ले भागा। दाऊ दादाने एक मुक्कीकी चोटसे ही उसे मार डाला।' गोपशिशु मैया यशोदासे कह रहे हैं——'मैया ! उसी रातकी तरह फिर आज वनमें दावानल जल उठा था। कन्हैयाके कहनेसे हमलोगोंने आँखें मूँद लीं। बस, पता नहीं उसी क्षण अग्नि कहाँ चली गयी। ओह ! अनवरत मूसलाधार वृष्टि हो रही है। सात दिन हो गये, मेरे नीलमणिके हाथपर गिरिराज टिके हुए हैं। नीलमणि, नीलमणि ! तेरे हाथोंमें पीड़ा तो नहीं हो रही है ? नन्दराय वरुणलोकसे लौटकर कह रहे हैं——'सचमुच मेरे नीलमणिमें साक्षात् नारायण आविष्ट होकर हमलोगोंकी रक्षा करते हैं, आवेशके समय ही मेरा नन्हा–सा नीलमणि अलौकिक–असम्भव कार्य कर देता है। आवेशके समय देवता मेरे नीलमणिमें साक्षात् परमपुरुषको देखकर उसकी अर्चना करते हैं।' गोपशिशु कह रहे हैं——'मैया ! तुम्हारी छाक तो आज पहुँची नहीं, हमलोग भी जल्दीमें आज कुछ भी कलेवा साथ नहीं ले गये थे। गाय चराते–चराते भूखसे व्याकुल हो गये। ब्राह्मणोंके पास कुछ माँगने गये। उन्होंने कुछ भी न दिया। फिर द्विजपत्नियोंसे जाकर कहा, कन्हैयाका नाम सुनते ही वे सब बावरी–सी हो गयीं। अपने घरसे मिष्ठानकी थालियाँ भर–भरकर दौड़ पड़ीं। सबने जाकर कन्हैयाको घेर

लिया। बहुत देरतक कन्हैयासे कुछ कह–कहकर सब रोती रहीं; फिर लौट आयीं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनको बाह्यज्ञान नहीं है। हमलोगोंने भर पेट खाया; फिर जाकर देखा, तो वे समाधिस्थ–सी बैठी थीं, और ब्राह्मण सभी पश्चात्ताप करते हुए दुःखसे जलते हुए रो रहे थे—'हाय ! हाय !! व्रजेन्द्रनन्दनके लिये हमारे सूखे हृदयोंमें जरा भी प्यार नहीं। ये स्त्रियाँ ही धन्य हैं। हमारे इस जीवनको धिक्कार है। इसमें तो आग लग जानी चाहिये।' सर्पग्रस्त नन्दकी रक्षा करके नीलमणि हँस रहा है। विद्याध ार उसकी प्रदक्षिणा कर रहा है; अरिष्टासुरके संहारसे प्रसन्न होकर देवता नीलमणिपर पुष्प बरसा रहे हैं। नन्दरानी नीलमणिके सुकोमल हाथोंको हाथमें लेकर नारायणसे प्रार्थना कर रही हैं, देवाधिदेव ! मेरे नीलमणिके हाथ असुरके मुखमें जाकर भी अक्षत रहे, यह तुम्हारी ही अनन्त कृपाका प्रताप है। नीलमणि सन्ध्या समय हाथमें दोहनी लेकर गोशालामें गाय दुहने जा रहा है, मथुराकी ओरसे रथपर चढ़ा हुआ कोई आया। नीलमणिके चरणोंमें जाकर लोटने लगा।'

इस प्रकार समस्त व्रजवासी अपने अन्तर्हृदयमें सुधामयी स्मृतिका विचित्र चित्रपट उलटते हुए लीला देखते रहते हैं। जिस समय बाह्यज्ञान होता, उस समय—'हाय, नीलमणि ! तुम कहाँ गये ! मेरे प्राणधन ! कब आओगे, कितने दिन मथुरा और रहोगे' कहकर आँसू बहाने लगते हैं !

व्रजयुवतियोंकी करुण दशाका तो कहना ही क्या। लीलाचक्र उनके सामने भी घूमता रहता है; पर वे तो अब विक्षिप्त–सी हो गयी हैं। इस मतिभ्रमका आरम्भ तो पहले ही हो चुका था। जिस दिन वंशीध्वनि कानोंमें आयी थी, उसी दिनसे वे अनुभव करती थी, मानो कभी वंशीरवका विश्राम हुआ ही नहीं। वे अधिकांश समय निश्चित भी नहीं कर पाती थीं कि किस स्थानपर स्थित होकर व्रजराजनन्दन वंशी बजा रहे हैं, निर्णय करनेके उद्देश्यसे जिधर दृष्टि ले जातीं, उधरहीसे स्वरलहरी गूँजती हुई सुनायी पड़ती। आम्र–कदम्बशाखाओंकी ओर देखतीं तो पहले दीखता— पक्षी निमीलित नयनोंसे वंशीध्वनि सुन रहे हैं; फिर दीखता, वृक्ष–शाखा, पत्र–पक्षी कुछ भी नहीं हैं, केवल व्रजराजनन्दन ही हैं। अरुणाभ अधरोष्ठोंपर वंशी नाच रही है और उससे उन्मादकारी मधु झर रहा है। सोचतीं—नेत्रोंका भ्रम है, श्यामसुन्दर तो वनमें गाय चराने गये हैं। अब यमुनाके तरंगोंकी ओर

देखने लग जाती; अनुभव होता––प्रवाह स्थिर––स्थगित है, तरल तरंगे घन हो गयी हैं। उनके अन्तरालसे ध्वनि आ रही है; पर दूसरे ही क्षण वही दृश्य सामने आता––यमुना, यमुनाकी तरंगोंके स्थानपर सर्वत्र व्रजराजनन्दन भरे हैं। वंशीमें सुरीला स्वर भर रहे हैं। व्रजांगनाएँ विचारमें पड़ जातीं—हमारी ऐसी दशा क्यों है, हम क्यों नहीं निर्णय कर पातीं कि हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर सचमुच कहाँ हैं, कहाँसे वंशी बजा रहे हैं। इसी चिन्तामें आकाशकी ओर देखने लगतीं––प्रतीत होता उधरसे ही वंशीध्वनि आ रही है, और भी एकाग्र होकर दृष्टि डालतीं तो दीखता––विमानोंकी पंक्तियाँ लगी हैं, उनमें सुरलताएँ बेसुध––मूर्च्छित–सी बैठी हैं। प्रेमावेशसे उनके वस्त्र स्खलित हो गये हैं। वे वंशीध्वनि ही सुन रही हैं; पर एक ही क्षण बाद आँखोंके सामनेसे विमान, सुरांगनाएँ सब कुछ अन्तर्हित होकर पुनः समस्त नील गगन वंशीधारी श्यामसुन्दरसे भर जाता; व्रजांगनाएँ कुछ भी निर्णय न कर पातीं। किसी अचिन्त्य प्रेरणासे व्रजराजनन्दनकी दैनन्दिनी लीलाका रस लेनेके लिये ही वे बीच–बीचमें प्रकृतिस्थ होती थीं, अन्यथा निरन्तर वंशीरवके प्रवाहमें ही बहती रहती थीं, उन व्रजकुमारिकाओंकी भी यही दशा थी, कात्यायनी–उपासनाका फल ही उन्हें मिला था––वंशीरवके उद्गमका अन्वेषण करना; प्राणोंकी उत्कण्ठासे वे उद्गमस्थलको मन–ही–मन ढूँढ़ती रहती थीं। इसीलिये मानो इन व्रजांगनाओंका अथक परिश्रम देखकर ही कृपापरवश होकर दूसरे वर्ष शारदीय पूर्ण शशधरकी निर्मल ज्योत्स्नामें वंशीध्वनिने प्रत्येक गोपांगनाका पृथक्–पृथक् नाम ले–लेकर आवाहन किया। इतना ही नहीं, उसने सबको अपने–आप खींच ले जाकर प्रियतम श्यामसुन्दरसे मिला दिया। वह राकारजनी 'ब्राह्मरजनी' बन गयी और व्रजांगनाएँ चिदानन्दरसमयी रासलीलाके सुख–सुधा–समुद्रमें डूबकर कृतार्थ हो गयीं। दो वर्ष कुछ महीनोंतक व्रजांगनाएँ अतुलनीय परमानन्द–रसका उपभोग प्रतिदिन करती रहीं। उनका दिन तो श्रीकृष्णभावनाके स्रोतमें समाप्त होता था और रात्रि मिलनानन्द–सिन्धुमें व्यतीत होती थी। पर हठात् सब कुछ बदल गया। क्रूर अक्रूरके रथपर चढ़कर उनके प्राणाधार प्रियतम मथुरा चले गये। उनके साथ ही उनका भी सब कुछ चला गया। उनकी अन्य सारी स्मृति, सारा विवेक, सारा ज्ञान चला गया है। अब वे निरन्तर पूर्ण मतिभ्रमकी दशामें रह–रहकर रोती हुई पुकार उठती हैं––

अयि दीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदवलोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्।।

'मेरे स्वामिन्! तुम तो निष्ठुर नहीं हो, तुम्हारा हृदय तो अपार असीम करुणासे भरा है। किसीका भी दुःख तुम देख नहीं सकते। अब तो कंसका भी भय नहीं रहा। अब तो तुम्हीं मथुरेश हो। जो चाहो सो कर सकते हो; फिर मेरे पास क्यों नहीं आते? मेरे जीवनधन! मैं तुम्हें कब देखूँगी? तुम्हारे अदर्शनसे मेरा हृदय अतिशय कातर हो रहा है, भ्रमित हो रहा है। हाय! मैं क्या करूँ?'

व्रजांगनाओंके शरीर क्षीण हो गये हैं, वह ताम्बूल–राग–रञ्जित अधरपुट अब नहीं है, अंगोंपर आभूषण भी नहीं हैं, किसी मलिन वस्त्रसे अपने अंगोंको आच्छादित रखकर प्रियतम श्रीकृष्णका नाम रटती रहती हैं। नेत्रोंसे अविरल अश्रुप्रवाह बहता रहता है।

इन्हींकी तरह यशोदाजी भी विक्षिप्त हैं। प्रातःकाल जिस क्षण नीलमणि विदा हुए, ठीक उसी क्षणपर वे प्रतिदिन तोरणद्वारपर आकर बैठ जाती हैं और पुकारने लगती हैं—

जसोदा बार बार यों भाषै।
है ब्रज में कोउ हितू हमारो, चलत गोपालहि राखै।।
कहा काज मेरे छगन मगन कों, नृप मधुपुरी बुलायो।
सुफलक सुत मेरे प्रान हनन को, कालरूप है आयो।।
बरु ये गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदि लै मेलो।
इतनो ही सुख कमलनयन मेरी, अँखियन आगे खेलो।।
बासर बदन बिलोकत जीवौं, निसि निज अंकम लाऊँ।
तेहि बिछुरत जो जीवौं कर्मबस, तौ हँसि काहि बुलाऊँ।।
कमलनैन गुन टेरत टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहाँ लगि प्रगट जनाऊँ, दुखित नंदकी रानी।।

दासियाँ प्रबोध देती हैं, पर नन्दरानी इस राज्यमें हों तब तो प्रबोध सुनें, वे तो मन–ही–मन अपने नीलमणिको ढूँढ़ती हुई न जाने कहाँ–से–कहाँ घूमती रहती हैं। कभी–कभी कुछ बाह्यज्ञानकी दशामें मथुराके राज्यपथपर जा बैठती हैं, जो मिलता है उसीसे नीलमणिको संदेश देती हैं। नीलमणिको संदेश देकर फिर देवकीजीको संदेश देती हैं—

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तुम्हारे सुत की, मया करत नित रहियो।।
जदपि टेव तुम जानत उन की, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे सुत कों माखन रोटी भावै।।
तेल उबटनो अरु तातो जल देखते ही भजि जावै।
जोइ जोइ माँगत, सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि करि न्हावै।।
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढ्यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सकोच।।

दासियाँ पकड़ लाती हैं, नन्दरानी दधि–भांडके पास जाकर बैठ जातीं और रोने लगती हैं––

मेरे कुँअर कान्ह बिन सब कछु वैसेहि धर्‌यो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै।।
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै।।
जो ब्रज में आनंद हुतो सो, मुनि मनसहु न गहै।
सूरदास स्वामी बिन गोकुल, कौड़ी हू न लहै।।

यह दशा तो विवेकयुक्त मानव–प्राणियोंकी है। व्रजेन्द्रनन्दनकी गायोंकी दशा भी कम हृदयविदारक नहीं है। उनके शरीर सूख गये हैं, तृण चरना उन्होंने छोड़ दिया है, उनके थनोंसे दूध झरना बन्द हो गया है। निरन्तर मथुराकी ओर ताकती हुई वे अतिशय खिन्न मन भटकती रहती हैं—

धेनु नहीं पय स्त्रवत उदित मुख चरत नहीं तृन कंद।

धौरी, धूमरीके गोवत्सोंने तो दूध ही पीना छोड़ दिया है। श्रीकृष्णका नाम सुनते ही वे चौंक उठते हैं, चारों ओर दृष्टि घुमा–घुमाकर देखने लगते हैं।

इस तरह अपने विरहमें जलते हुए व्रजकी दशाका प्रतिरूप व्रजराजनन्दनके हृदयपर पड़ रहा है; वे भी तदनुरूप भावोंसे भावित होकर एकान्तमें रो पड़ते हैं। सान्त्वना देने योग्य एकमात्र अग्रज बलराम ही हैं, जो एकान्तमें अनुजके आँसू पोंछा करते हैं। सान्दीपनिकी पाठशालामें व्रजराजनंदनका दिन तो पाठग्रहण, गुरुसेवामें व्यतीत होता है पर रात व्यतीत होती है व्रजकी मधुर मनोहर स्मृतिमें। दिनमें भी गुरुदेवकी गायोंको चारा डालते समय उनकी आँखें छलछल करने लगतीं तथा पासमें कोई न होता तो उनके कण्ठोंमें बाँह डाल वे रोने लग जाते, मानो हृदयमें बसी हुई धौरी–धूमरीकी करुण आँखोंसे

निकला हुआ अश्रु निर्झर ही श्यामसुन्दरके आँखोंसे निर्गत हो रहा है। जो हो, चौंसठ दिनका पाठ पूराकर व्रजराजनन्दन पितृगृहमें लौट आये हैं, रोहिणी मातासे एकान्तमें जाकर व्रजकी बातें पूछते हैं। रोहिणी मैया कुछ ही दिनों पहले व्रजसे लौटी हैं; रोहिणीने जो कुछ कहा, उसे सुनकर व्रजराजनन्दनका धैर्य जाता रहा। व्रज जाना तो सम्भव था नहीं, अतः अग्रजकी गोदमें सिर रखकर व्रजराजनन्दन सिसकियाँ भरने लगे। भला, जिनके संकल्पमात्रसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड क्षणभरमें सृष्ट होकर पुनः दूसरे ही क्षण विलीन हो जाते हैं, उने सर्वशक्तिमान् सर्वैश्वर्यनिकेतन स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दन श्यामसुन्दरके लिये तीन कोसकी दूरीपर स्थित वृन्दावन जाना सम्भव नहीं हो सका। धन्य है लीलाविहारीकी मधुर लीला ! अस्तु, अग्रजने ही सान्त्वना दी, फिर परामर्श दिया कि 'तुम उद्धवको भेज दो।' व्रजराजनन्दनकी लीलाशक्तिने ही उद्धवको चुना था, इसीलिये उनका नाम सुनते ही व्रजराजनन्दन उत्फुल्ल हो उठे। एकान्तमें सखाको सब समझाया, उनका श्रृंगार किया; यथायोग्य सबके लिये संदेश देने लगे, पत्र लिखने लगे। उस समय व्रजराजनन्दनकी आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी, कण्ठसे वे स्पष्ट बोल नहीं पा रहे थे पर उद्धव तो अपनेको आत्मानन्दकी अनुभूति करनेवाला पुरुष समझते थे, उन्हें आश्चर्य हो रहा था, साक्षात् भगवान् होकर व्रजराजनन्दनमें इतनी व्याकुलता क्यों ? यह संकल्प आया ही था कि व्रजराजनन्दनकी सर्वज्ञताशक्तिने लीलाशक्तिको संकेत कर दिया; अब व्रजराजनन्दनके उस प्रेमिल संदेशमें भी आत्मज्ञानका पुट लग गया, पत्रमें भी। ऐसे संदेशको लेकर उद्धवजी व्रज पहुँचे।

नन्ददम्पति बैठे थे। उद्धवको देख कुछ देर वे नीलमणिके मिलन–सा सुख अनुभव करने लगें। अतः नीलमणिके समान ही उद्धवकी आवभगत हुई; अब परम सुखका अनुभव करते हुए मैया–बाबाके प्रति उनके नीलमणिने जो संदेश दिया था, उद्धव वही कहने जा रहे हैं। उद्धव बोले—

नन्दरानी ! नन्दराय ! श्रीकृष्णने तुम्हारे लिये मुझसे कहा है—

ऊधौ इतनौ कहियो जाय।
हम आवेंगे दोऊ भैया, मैया जनि अकुलाय।।
याकौ बिलग बहुत हम मान्यो, जो कहि पठयौ धाय।
वह गुन हम कों कहा बिसरिहैं, बड़े किये पय प्याय।।
और जु मिलौ नंद बाबा सों, तौ कहियो समुझाय।
तौलौं दुखी होन नहीं पावैं धौरी धूमरि गाय।।

जद्यपि यहाँ अनेक भाँति सुख, तद्यपि रह्यो न जाय।
सूरदास देखौं ब्रजबासिन तबहिं हियौ हरषाय।।

संदेशके उत्तरमें बाबा-मैया केवल रो पड़े। नन्दरानीका रोना तो थमा ही नहीं; नन्दने किसी प्रकार आत्मसंवरण किया। अपने नीलमणिकी बात उद्धवको सुनाने लगे; पर कुछ ही सुना पाये थे कि प्रेमसे विह्वल हो गये, आगे बोल न सके। उद्धवने श्रीकृष्ण-तत्त्वका उपदेश किया, पर नन्ददम्पति तो रोते ही रहे। श्रीकृष्णकी चर्चा सुनकर धौरी, धूमरी श्रीकृष्णकी प्यारी गायें भी वहाँ आकर एकत्र हो गयीं, उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, पर वे बोलना नहीं जानती थीं। नन्द मानो उनकी सान्त्वनाके लिये ही आन्तर्यामीकी प्रेरणासे संदेश सुनकर भी पुनः उछलने लगे—

जानीमः प्रत्येकं गा मनुते स स्वतोऽप्यधिकाः।
निजकरकवलैः पुषितास्ताः किं चित्ते समाहरति ?

(श्रीगोपालचम्पूः)

'हम सभी जानते हैं मेरा नीलमणि गायोंको अपनेसे भी अधिक प्यार करता है, प्रत्येक गायके प्रति उसका अपने शरीरसे भी अधिक प्रेम है, गायोंको वह अपने हाथसे ग्रास देता था, उसके हाथके ग्राससे ही हमारी गायोंका पोषण होता था; मेरा नीलमणि इन गायोंको स्मरण करता है क्या ?'

उद्धवकी आँखोंमें इनकी बात सुनकर बरबस आँसू आने लगे। रातभर नीलमणिकी ही चर्चा होती रही। उद्धव प्रबोध करते रहे, पर नन्ददम्पतिकी अश्रुधाराका विराम नहीं ही हुआ।

दूसरे दिन उद्धव व्रजांगनाओंसे संदेश कहने गये। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे व्रजांगनाएँ आज किञ्चित् प्रकृतिस्थ हो गयी थीं। पर उपदेशके उपक्रमें 'श्याम' नाम सुनते ही वे प्रेमावेशमें बेसुध-सी हो गयीं—

सुनत स्याम कौ नाम बाम गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।।
पुलक रोम सब अँग भए, भरि आए जल नैन।
कंठ घुटे, गदगद गिरा, बोल्यो जात न बैन।।
बिबस्था प्रेम की।

श्यामसुन्दरका संवाद पाकर तो वे मूर्च्छित हो गयीं—

सुनि मोहन संदेस रूप सुमिरन है आयो।
पुलकित आनन कमल अंग आबेस जनायौ।।

बिहबल है धरनी परीं व्रज–बनिता मुरजाय।
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधौ बैन सुनाय।।
सुनौ व्रजनागरी।

आत्मानन्दानुभूतिका अभिमान—गर्व उद्धवके अन्तरालसे झाँक रहा था। व्रजराजनन्दनका आत्मज्ञान–सम्पुटित संदेश लेकर वही गर्व अब बाहर निकला। पूरी शक्ति लगाकर उसने व्रजसुन्दरियोंको समझाना चाहा; आत्मज्ञानकी सरिता बहा दी। पर वह सरिता, व्रजसुन्दरियोंके डुबोनेकी बात तो दूर रही उनके चरणोंको स्पर्शतक न कर सकी; वे इसके तटपर अलग खड़ी रहकर श्यामसुन्दरकी विरह–व्यथामें कराहती रहीं।

दिन एक पहर चढ़ आया। यही बेला थी जब कि कोटि–कोटि प्राण–प्रियतम श्यामसुन्दर गाय चराने वन जाया करते थे। गोपियोंके हृदयमें गोचारणपरायण नन्दनन्दनकी मधुर मनोहर छबि नाच उठी। कुछ ही दूरपर गायें सचमुच जोरसे डकार रही थीं, मानो श्यामसुन्दरको ढूँढ़ रही हों; उनके पास ग्वाले उदास मुँह खड़े थे, उन्हें शान्त करनेका प्रयास कर रहे थे। गोपियोंने एक बार दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा। उन्हें दीखता है, एक ओर हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर खड़े हैं, तथा दूसरी ओर उन्हें न देखकर गायें डकार रही हैं, ग्वाले भी रो रहे हैं। व्रजसुन्दरियोंके धैर्यका बाँध टूट गया। अपने दुःखसे नहीं, उन मूक गायोंके दुःखसे, ग्वालोंके दुःखसे। वे उस भावनाजात श्रीकृष्णविग्रहके सामने आकुल होकर पुकार उठीं—

अहो ! नाथ ! रमानाथ और जदुनाथ गुसाईं।
नंदनँदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाईं।।
काहे न फेरि कृपाल है गौ–ग्वारन सुख लेहु।
दुख–जलानिधि हम बूडहीं कर अवलंबन देहु।।
निठुर है कहा रहे ?।।

सबकी आँखोंके सामने एक–एक श्रीकृष्ण हैं, और उन्हें सुना–सुनाकर व्रजांगनाएँ अपना हृदय हलका कर रही हैं, पर हृदय हलका तो हुआ नहीं बल्कि भावके आदान–प्रदानसे आवेश शिथिल हो गया और यह स्मृति जाग उठी कि प्राणधन मथुरा गये हुए हैं। फिर क्या था, विरहसागर उमड़ा, सब एक साथ ही रो पड़ीं—

ता पाछे एक बारही रोई सकल ब्रजनारि।
हा करुनामय नाथ हो केसौ कृष्ण मुरारि !!

फटि हिय दृग चल्यौ।।

विरहसागर हृदयका बाँध तोड़कर आँखोंकी राह बह चला, व्रज–सुन्दरियाँ उसीमें डूब गयीं; प्रवाह वेगसे आगे बढ़ा, उद्धव भी उसमें बह चले।

उमग्यौ ज्यौं तहँ सलिलसिंधु लै तन की धारन।
भीजत अंबुज नीर कंचुकी भूषन हारन।।
ताही प्रेम प्रबाह में ऊधौ चले बहाय।
भलें ग्यान की मेड़ हौं ब्रजमें प्रगट्यौं आय।।
कूल के तृन भये।।

उद्धवका जीवन ही बदल गया। वे अब कुछ और ही हो गये हैं। अब उनका एक ही काम है——श्रीकृष्णलीला गा–गाकर व्रजवासियोंको सुख देना। मुखसे लीला गाते रहते और नेत्रोंसे जल बहता रहता। व्रजांगनाओंकी प्रेमदशा देखकर उद्धवको इच्छा हुई——'मैं यदि वृन्दावनके किसी गुल्म–लता–ओषधिके रूपमें परिणत हो जाता और गुल्म–लतादिरूपमें अंकुरित हुए मुझपर इन व्रजसुन्दरियोंकी चरणधूलि पड़ जाती तो मैं कृतार्थ हो जाता।' भावावेग न सँभलनेपर उद्धव उच्च कण्ठसे गाने लगे——

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।
(श्रीमद्भा० १०। ४७। ६१)

कै है रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं।।
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछु करौं उपाय।
मोहन होहिं प्रसन्न जो, यहि बर माँगौं जाय।।
कृपा करि देहिं जौ।।

अब उद्धवको कभी–कभी ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो श्यामसुन्दर तो यहीं हैं, मथुरा कभी गये ही नहीं। उनका हृदय उत्तरोत्तर प्रेमसे भरता जा रहा है। वे सर्वथा भूल–से गये हैं कि यहाँसे लौटकर सखा श्यामसुन्दरको भी यहाँका कुशल सुनाना है। कई दिन नहीं, कई महीने बीत गये तब कहीं स्मृति आयी और वे व्रजसे विदा हुए। विदा होते समय रोती हुई व्रजांगनाएँ मूक संदेश दे रही हैं, रोती हुई यशोदा नीलमणिके लिये नाना उपहार दे रही हैं। सबसे अन्तमें गायोंको रोती देखकर मैया नीलमणिको यह संदेश

देने लगीं—

ऊधौ इतनी कहियो जाय।
अति कृसगात भई हैं तुम बिनु बहुत दुखारी गाय।।
जल समूह बरसति अँखियन ते हूँकत लेतहि नाउँ।
जहाँ जहाँ गोदोहन करते ढूँढत सोइ सोइ ठाउँ।।
परति पछारि खाइ तेही छिन अति ब्याकुल है दीन।
मानहुँ सूर काढ़ि डारे हैं बारि मध्य ते मीन।।

उद्धवका रथ चल पड़ा। व्रजांगनाएँ मूर्च्छित हो गयीं। गायें डकारती हुई कुछ दूरतक दौड़कर गयीं, पर कृशशरीरसे थककर वे भी गिर पड़ीं; उद्धव सिसक–सिसककर रोते हुए जा रहे हैं।

व्रजराजनन्दनसे मिलनेपर भी उद्धवका रोना थमता नहीं है; रोते–रोते ही उद्धवने सबका संदेश श्यामसुन्दरको सुनाया; संदेशका उपसंहार था—

कहा लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम तुम बिन उन लोगनि, जैसे दिवस बिहात।।
गोपी ग्वार गाइ गोसुत वे, मलिन बदन कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमी हत, अंबुजगन बिनु पात।।
जो कहुँ आवत देखि दूरि तें, सब पूँछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरनन लपटात।।
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहि न खात।
सूरस्याम सदेसन के डर, पथिक न उहि मग जात।।

व्रजराजनन्दनके नयनोंसे भी अनवरत अश्रुधारा बहती जा रही है। उनके कपोल, वक्षःस्थल सभी भीग रहे हैं। उद्धवकी बात सुनकर बीच–बीचमें गद्गद कण्ठसे केवल इतना कह देते हैं—उद्धव ! व्रजको मैं एक क्षणके लिये भी भूल नहीं पाता—

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंससुताकी सुंदर कँगरी अरु कुंजनकी छाँहि।।
वे सुरभी, वे बच्छ, दोहनी, खरिक दुहावन जाँहि।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाँहि।।
यह मथुरा कंचनकी नगरी मनि मुकताहल जाँहि।
जबहि सुरति आवत वा सुख की जिय उमगत तनु नाहिं।।
अनगन भाँति करी वह लीला, जसुदा नंद निबाहिं।

सूरदास प्रभु रहे मौन है यह कहि कहि पछिताहिं।।

व्रजराजनन्दनने आँखें बन्द कर लीं। उद्धव मन–ही–मन सोचने लगे––'आह ! श्यामसुन्दर बड़े निष्ठुर हैं, अन्यथा इन गो–गोप–गोपियोंका करुणक्रन्दन सुनकर ये अभी मेरे साथ व्रज चल पड़ते।' सखाके मनमें यह विचार आते ही व्रजराजनन्दनकी आँखें खुल गयीं। इस बार उनके मुखपर एक मन्द मुसकान थी। यह मुसकान मानो अचिन्त्यलीला–महाशक्तिको कुछ संकेत करनेके लिये ही आयी थी। दूसरे ही क्षण, उद्धवकी आँखोंके सामनेसे मथुराका अस्तित्व विलीन हो गया। उद्धव देख रहे हैं––सामने मधुर वृन्दावन है, व्रजराजनन्दन गोचारणके लिये वृन्दावनसे निकले हैं; अद्भुत शोभा है––

भक्तिच्छेदाढ्यचर्चा मलयजघुसृणैर्धातुचित्राणि बिभ्रद्
भूयिष्ठं नव्यवासः शिखिदलमुकुटं मुद्रिकाः कुण्डले द्वे।
गुञ्जाहारं सुरत्नस्रजमपि तरलं कौस्तुभं वैजयन्तीं
केयूरे कंकणे श्रीयुतपदकटकौ नूपुरौ श्रृंखलां च।।
आत्मैकदृश्यगान्धर्वाप्रतिबिम्बकरम्बितैः।
दधद्वक्षस्ययं हारं गुम्फितं स्थूलमौक्तिकैः।।
श्रृंगं वामोदरपरिसरं तुन्दबन्धान्तरस्थं
दक्षे तद्वन्निहितमुरलीं रत्नचित्रां दधानः।
वामेनासौ सरलगुडीं पाणिना पीतवर्णां
लीलाम्भोजं कमलनयनः कम्पयन् दक्षिणेन।।
वंशीविषाणदलयष्टिधरैर्वयस्यैः
संवेष्टितः सदृशहासविलासवेषैः।
गन्तुं वनाय भवनाद्वनजेक्षणोऽयं
मुष्णन् मनो मृगदृशामथ निर्जगाम।।

(श्रीगोविन्दलीलामृतम्)

व्रजराजनन्दनके ललाटमें चन्दन–केसरकी खैर लगी है, कपोलोंपर धातुचित्रोंका श्रृंगार किया हुआ है, अतिशय सुन्दर बहुत–से वस्त्रोंसे सुसज्जित हैं, सिरपर मयूरपिच्छका मुकुट है, कानोंमें कुण्डल हैं, वक्षःस्थलपर गुञ्जाहार, सुनिर्मित रत्नमाला, वैजयन्ती एवं कौस्तुभ हैं। भुजाओंमें अंगद शोभा पा रहे हैं, दोनों हाथोंमें कंकण हैं, अंगुलीमें मुद्रिका हैं, दोनों चरणोंमें मनोहर कड़े, नुपूर, तथा कटिमें क्षुद्रघण्टिकाका धारण किये हुए हैं। मोतीके बड़े–बड़े

दानोंका बना हुआ एक हार वक्षःस्थलपर लटका रहा है, इस हारके प्रत्येक दानेमें श्रीराधाका प्रतिचित्र अंकित है, अवश्य ही इस चित्रको एकमात्र श्रीकृष्ण ही देख पाते हैं, और किसीके ध्यानमें यह चित्र नहीं आता। उदरकी बायीं ओर टेंटमें सींग खोंसा है, टेंटमें ही दाहिनी ओर रत्नजटित मुरली खोंसी हुई है, बायें हाथमें पीले रंगकी छड़ी है, दाहिने हाथसे लीलाकमल नचाते जा रहे हैं। उनके सभी सखा भी उन्हींके समान वंशी, श्रृंग, लकुटिया आदिसे सुशोभित हैं, उनके समान ही उनके मुखपर भी हास एवं कौतुकप्रियता है, वेष भी उन्हीं–जैसा है। इस प्रकार सज–धजकर व्रजांगनाओंका मन हरण करते हुए कमलनयन व्रजराजनन्दन वन जानेके लिये घरसे निकले हैं।

अपार गोराशि श्रीकृष्णको घेरे हुए चल रहीं हैं। अब वे व्रजकी समीपवर्ती भूमिमें निर्मित गोशालाके पास आ पहुँचे हैं, गोशालाकी शोभा देख–देखकर मुग्ध हो रहे हैं---

गोमयोत्पलिकाकूटैर्गिरिश्रृंगनिभैर्युतम्।
वसितावासमत्तानां षण्डानां संगरोद्धुरम्।।
कृष्णलीलां प्रगायद्भिर्विहसद्भिः परस्परम्।
गोमयावचयव्यग्रैर्गोपदासीशतैर्वृतम्।।
गोयानवत्सवारणव्यग्रगोपशतान्वितम्।
गोमयोत्पलिकाकृद्भिर्जरद्गोपीगणैर्युतम्।।
गवां स्थानीश्रेणीस्फुटितमभितोऽल्पावृतिचयो–
ल्लसद्वत्सावासस्फुरिततलवृक्षावलिचितम्।
करीषक्षोदस्योच्चयमृदुलभूमीतलमसौ
व्रजाभ्यर्णं पूर्णं व्रजधनजनैर्वीक्ष्य मुमुदे।।

(श्रीगोविन्दलीलामृतम्)

गोशालामें गिरिश्रृंगकी तरह ऊँचे–ऊँचे गोबर–कंडोंकी थाक लगी है; इधर–उधर ऋतुमती गायोंके पीछे मत्त साँडोंके टोल युद्धमें संलग्न हैं, शत–शत गोपदासियाँ गोमय–संकलनमें व्यस्त हैं, उनके मुखसे निरन्तर श्रीकृष्णलीलाका कलित गान हो रहा है, परस्पर एक दूसरेको हँसाती हुई आनन्दमें निमग्न होकर गोबर चुन रही हैं। गायोंको वनमें जाती देखकर उनके गोवत्स साथ जानेके लिये उछल–कूद रहे हैं, शत–शत गोप उन गोवत्सोंको रोकनेमें लगे हैं। वृद्ध

गोपियाँ गोबर पाथ रही हैं। गायोंके विश्रामके लिये सुन्दर आवास बने हैं; गोवत्सोंके लिये वृक्षोंके नीचे छोटी छतके गृह बने हैं। शुष्क गोमयचूर्णसे वहाँकी भूमि मृदुल बन गयी है। ऐसी धन–जनपूर्ण गोशालाको देखकर व्रजराजनन्दनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा।

उद्धव दिनभर लीला देखते रहे। अब व्रजराजनन्दनने कंधेपर हाथ रक्खा, तब भावसमाधि टूटी। देखा नन्दनन्दन मुसकुरा रहे हैं।

सन्ध्या हो चली है। अबतक उद्धवने भी भावसमाधिमें सन्धयातककी लीला ही देखी है। व्रजराजनन्दनका हाथ पकड़कर वे प्रासादकी ओर चल पड़े। आँखोंमें आवनी लीला भरी थी, वे अभी भी देख रहे हैं––

कमल मुख सोभित सुंदर बेनु।
मोहनलाल बजावत गावत आवत चारें धेनु।।

साथ ही अन्तर्हृदयमें मानों कोई कह रहा है––उद्धव ! इन व्रजांगनाओंसे, गोपोंसे, गायोंसे, वृन्दावनसे व्रजराजनन्दन कभी अलग नहीं होते; ये जहाँ हैं, वहाँ श्रीव्रजराजनन्दन भी हैं ही !!